



पुष्पात्मा मां धी शारदादेवी

नवमम युग ट्रस्ट पुस्तक

# पूर्व और पश्चिम व सन्त महिलाएँ

सारबाबेवी-जन्म-शताब्दी स्मृतिग्रन्थ

प्राकल्पन विजयलक्ष्मी पण्डित  
प्रस्तावना कैमल बाँकर  
धनुवारिका अकृता आष

सम्पादकीय मलाहकार  
स्वामी धनानन्द  
ऑन स्टीवर्ड-बैलेत



प्रकाशन विभाग  
मूचना और प्रसारण मन्त्रालय  
भारत सरकार

भाषाङ्क १८८४ (वृत्त १९६२)

*Published by arrangement with the  
Ramakrishna Vidya Centre, London*

मूल्य १ रुपये २३ तमे पैसे

WOMEN SAINTS OF EAST AND WEST

by

SWAMI GHANANANDA AND OTHERS

(Hindi)

निर्देशक, प्रकाशन विभाग, सुश्रमा धीर प्रसारण मन्त्रालय, दिल्ली-६  
द्वारा प्रकाशित तथा भारत-सरकार मुद्रणालय फरीदाबाद द्वारा मुद्रित

## प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री रामकृष्ण की बर्म-संगिनी धीर उनकी प्रथम धिय्या पवित्र जमनी धीमती धारदावेबी की पवित्र स्मृति के सम्बन्ध में उनकी प्रथम जन्म-घटाब्दी के प्रबन्ध पर प्रकाशित किया जा रहा है। उनका जन्म २२ दिसम्बर, १८७३ में हुषा बा धीर दिसम्बर १८३३ से दिसम्बर १९५४ तक उनकी जन्म-घटाब्दी रामकृष्ण-मठ के पूर्व धीर पश्चिम के समस्त क्षेत्रों में मनायी गयी। सन्ध क रामकृष्ण-वेदाङ्ग-क्षेत्र ने एक घटाब्दी-समिति का निर्माण किया जिसने इस प्रबन्ध को मनाने के लिए १ जनवरी १९५४ में एक जन-सभा धीर उठी बर्ष बून में घटाब्दी-समारोह का एक उपयुक्त उपसंहार है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न बेशों धीर बर्नों की महान् सन्त धीर रहस्यवादी महिलाओं पर लिखे गये निबन्धों का संकलन है, जिन्हें हमारे विशेष निमन्त्रण पर उत्साही धीर अडालु लेखकों द्वारा लिखा गया है। अपने अन्तक प्रयत्नों के उपरान्त भी हम सुदूरपूर्व के प्रमुख बर्नों की बीनी धीर आपानी सन्त महिलाओं पर निबन्ध प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके। अपने उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए हमने लेखकों से अनुरोध किया था कि जिन सन्त महिलाओं पर वे लिख रहे हैं वे उनके संपर्कों धीर जीवन की कठिनाइयों धार्मिक अनुशासन धीर उपसम्पत्तियों के सम्बन्ध में यथासम्भव विवरण देने का प्रयत्न करें ताकि पाठक उनके धार्मिक धारणों के प्रति अनुरक्त होकर उनकी धारणा की अन्वया की सतक वा सके।

इस ग्रन्थ की प्रस्ता पवित्र जमनी धारदावेबी का जीवन है जिन्होंने रामकृष्ण की ही भाँति हमें सिखाया है कि सनी बर्म परमात्मा को पाने का ही मार्ग विज्ञानाते हैं। उनके जीवन बर्म धीर उनकी धियाओं के सम्बन्ध में एक लेख धापको इस पुस्तक के शिष्ट बर्म की सन्त महिलाएँ वाले भाग के अन्तिम से पहले वाले अध्याय में मिलेगा।

इस ग्रन्थ में संकलित निबन्धों के लेखकों के प्रति हम धामाटी हैं जिन्होंने निस्वार्थ भाव से अपना कार्य किया है। हम उन सबके प्रति भी अपना धामाट प्रकट करते हैं जिन्होंने किसी भी रूप में इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना सहयोग दिया है। इस बर्म-कृति का सम्पादन करते हुए हम एक धार्मिक धाङ्कार का अनुभव कर रहे हैं।

हम श्रीमती विजयसहमी पश्चिम के हृदय से कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने व्यस्त राजकी जीवन धीर बायिलों के बीच भी इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखन की कृपा की है हम भी कृतज्ञ होकर के भी अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने अल्प समय में ही धीरघातिपी प्रपनी प्रस्तावना तैयार करके भेजी है । साथ ही हम अपने सम्पादक-मण्डल के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने निरन्तर प्रपनी सम्मति धीर सहयोग-बापु एवं सर्वह के सम्पादन को सफल बनाया है ।

रामकृष्ण-ब्रह्मन्त-सोम,

लखन ।

दिसम्बर १९३२

## प्राक्कथन

दीपावली के बीपक जिस प्रकार भारतीय मगन-मण्डल को धम्भकार से मुक्त कर प्रकाश से जगमगा देता है, उसी प्रकार पूर्व और पश्चिम की सन्त महिलामों की जीवनियाँ भी प्रायः भ्रमजाल धीर सम्यहों से नरे विश्व को धातोकित करती हैं। उनका सम्येष्ट सृष्टि क भाष्पारिक उदात्तकार के रूप में हमारी महाम् सम्पदा बन चुका है जो हमें मानव-मान के बीच समता के अभिन्विष्ट सुख परमात्मा में विश्वास धीर उसकी पूजा की उत्कण्ठा का स्मरण करवाता है। यह पूणत उचित है कि पवित्र जगती की जन्म-सताप्ती को मगाने के लिए

केवल महिला-सम्ये के उदाहरण ही चुने गये ह। प्रत्येक देश धीर इतिहास के प्रत्येक युग में स्त्री परिवार के विश्वासों की संरक्षिका रही है। प्राथमिक युग हमें प्राचीन मूख्यों स किशोरी ही दूर क्यों न से भाया हो पर एक धारदर्श भव भी जीवित है—बहु धारदर्श है एक ऐसी स्त्री का जो करोड़ों में से एक है धीर जो अपने ही सीमित क्षेत्र में अपने नामिक विश्वासों का उसी सरल धारदर्श रहित ढंग स निरप्रति पोषण करती है जिस ढंग से बहु अपने पति धीर सन्तान का सामन-पासन करती है। पुरुष धीर उसकी सन्तान के लिए बर्भ प्रायः गृहस्त्री की शान्त मार्ग-दर्शक मारी के रूप में ही प्रकट होता है।

पवित्र जगती स्वयं ऐसी ही स्त्री थीं धीर इसलिये उनके जीवन में एक धार्मिकीय प्रभाव-शक्ति थी। एक ठेठ भारतीय गाँव की अत्यन्त निम्न परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ। छोटी प्राम् में ही सन्त-प्रकृति रामकृष्ण से उनका विवाह हो गया धीर ने परमात्मा की खोज में गये हुए अपने पति को उनके मार्ग में हर प्रकार का सहयोग देती हुई अपनी निस्वार्थ सेवा-दायक एक धारदर्श पत्नी बनी। इस महाम् धर्मियाग में निमग्न रह कर भी वह नर-गृहस्त्री के साधारण धीर छोटे छोटे कार्यों को भी पूर्ण सक्ति के साथ करती रहीं। पति की सह्यामिनी बन कर उन्होंने भी धार्मिक उन्नति के लिए संघर्ष किया धीर सिद्धि प्राप्त की। फिर भी मौढिक जीवन ने जब उनसे जो भी माँग की उसकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। जिस प्रकार वे रामकृष्ण की हर सुख-सुविधा का प्यास रखती हुई उनकी सेवा करती थीं उसी प्रकार उन्होंने उनके शिष्यों की भी देखभाल की जो उनके साथ रहते थे। पति के भक्तों के साथ उनका व्यवहार ऐसा था मानो वे सब उनकी सन्तान

हों। इनका जीवन भारतीय नारी के जीवन का सार वा और इसी की पूर्णता का उन्हीं प्राथमिक महानता उपलब्ध की।

सारवादेवी की भाँति विभिन्न देशों और युगों की संत महिमाएँ परब्रह्म की उपासना की सामना में नारी प्रकृति के पूर्ण विकास का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस पुस्तक में नारी को उसकी अपार सामर्थ्य के साथ सेवा और भक्ति में व्युत्पन्न की सम्पूर्ण कोमलता के साथ उसके सौम्य मीरवमय रूप में बिसाया गया है। प्रस्तुत पुस्तक ईश्वरत्व की लोक की कथा कहती है परन्तु विभिन्न संतों के अनुभवों का स्रोत प्रस्तुत करते हुए यह पुस्तक मानव प्रकृति को उसके प्रत्युत्पन्न स्तर पर अपनी अर्द्धावधि प्रस्तुत करती है। यह प्रकृति ईश्वर की ही हुई संत नहीं है अपितु इसकी उपसंविष्ट मानवीय प्रयत्नों-द्वारा उपासना और समाधि तथा धारम-संयम और साधना के द्वारा हुई है। धारम-साक्षात्कार ही इन संतों की सिद्धि है जो समस्त धर्मों का लक्ष्य है और इनके जीवन यह सिद्ध करते हैं कि धारम-साक्षात्कार का मार्ग हमें धारम-मात्र से पुर से जाता है। यद्यपि यह विचित्र-सा लफटा है पर निज को अपने संबंधों और अपने दुःखों को दूसरों के संबंधों और दुःखों में जोकर ही इस धारम-साक्षात्कार की और बढ़ना धारम कर सकते हैं और इसी मार्ग से हम ईश्वर के निकट पहुँच पाते हैं। इन लिपियों में अपने उपदेश शब्दों में मही दिसे। उनके संवेस की धामा उनके घट्ट विश्वास के पक्षों पर उड़ती रहती है जो युग-युगी तक उनके अनुयायियों के लिए मान और स्वप्न की सृष्टि करती है।

पूर्व सिद्धि तो बहुत कम व्यक्ति प्राप्त कर पाते हैं पर सिद्धि के लिए सज्जन की धिखा ही से समी पा सकते हैं, जो उसके लिए प्रयत्नशील हों। यही संतों की धिमाओं का मूल्य है। कवि कबीर ने इसे इस प्रकार कहा है—

गुरु पौबिन्द दोऊ सङे काके लागू पाँय ।

बलिहारी गुरु आपनी जिन पौबिन्द दिखौ मिसाय ॥

जिन्होंने अपने जीवन-काल में भक्तों के पथ को धामोक्त किया है वह सारवा देवी धारमा की उभावधि चाहनेवाले सब लोगों की प्रेरणा बनी रहें और उनकी स्मृति में समर्पित यह पुस्तक उनके और इन पृष्ठों में बलिष्ठ समस्त महिमाओं के जीवन सिद्धान्तों को एक बार फिर संसार के सम्मुख रखने के उद्देश्य को पूर्ण करे।

—विजयलक्ष्मी पंडित

## प्रस्तावना

प्रस्तावना के आरम्भ में ही मैं अनुभव करता हूँ कि पूर्व और पश्चिम की सन्त महिमाओं से सम्बन्धित इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने के मैं कितना असमर्थ हूँ। मैं महिमा नहीं हूँ और सन्त होने से भी उठना ही बुरा है जितना कि महिमा होने से। मैं विद्वान् भी नहीं हूँ और अज्ञान-ज्ञान से भी निरान्त अपरिचित हूँ। इन सब कमियों के होते हुए भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे हृदय में भारत की प्राचीन सस्कृति के प्रति अगाध यत्ना है। सम्भवतः इसी कारण मुझे इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने का कार्य सौंपा गया है। मेरे मतानुसार भारतीय सस्कृति में मानवीय चिन्तन और भावना उच्चतम स्तर तक पहुँच चुकी है। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भारत की प्राचीन उपलब्धियाँ इतनी धीरवर्ण हैं कि मनु विश्वास है कि वर्तमान विश्व के चिन्तन के निर्माण और विश्व-शान्ति के विकास में उनका प्रमुख योगदान है। इस पुस्तक के पाठक मुझसे सहमत होंगे कि विश्व-शान्ति की स्थापना केवल एक राजनीतिक समस्या से बहुत अधिक बढ़ी है। विभिन्न देशों के बीच कोई भी समुद्रपार केवल बाह्य संघर्षों के माध्यम से चिरस्थायी नहीं हो सकती। विभिन्न राष्ट्रों के व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक आदान-प्रदान और समुप्य-समाज में बन्धन की भावना तभी पहरी हो सकती है जब हम विरय के समस्त महान् संघर्षों-आघातों को धोखा देने की विवशता के प्रमुख चिन्तन विवेकानन्द बहुत पहले ही कह गये हैं—“प्रत्येक को एक-दूसरे की धारणा में समा जाना चाहिए। फिर भी प्रत्येक का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विद्यमान रहे और अपने विकास के सिद्धान्त के समुप्य ही उठका विकास हो यह समस्त ब्रह्माण्ड धर्म और भेद का श्रीका-स्वस है।”

यद्यपि सन्त महिमाओं पर किसी गई इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने के समय हूँ अथवा नहीं पर मैंने यह कार्य अपना कर्तव्य और सीमाव्य समाज कर स्वीकार किया है। कोई भी पाठक धर्म में भेद और भेद में धर्म की भीड़ के अस्तित्व को समझे बिना पूर्व और पश्चिम की इन महान् सन्त महिमाओं के बीच धीर जनकी महिमाओं के इस पुस्तक में दिये गये मूर्त्यों को ग्रहण नहीं कर सकता। पश्चिम जगती थी आर्यादेवी ने जिनकी स्मृति में यह पुस्तक समर्पित है स्वयं



यद्यपि अपने शिष्यों के सम्मुख प्रत्यक्ष वेदान्त के तत्त्व-ज्ञान का प्रत्याख्यान नहीं किया तथापि वह ज्ञान उनकी समस्त शिष्याओं की पृष्ठभूमि में विद्यमान है। एक व्यावहारिक स्त्री होने के नाते — इस रूप में कि प्रत्येक स्त्री व्यावहारिक ही होती है — उन्होंने स्वयं अपने जीवन में ही मनुष्य-मात्र में समता और समस्त धर्मों में एकता की प्रवर्तना की है। रोम-ग्रस्त होकर जब वे मृत्यु के समीप पहुँच चुकी थीं उस समय उनकी एक शिष्या उन्हें देखने आयी। उन्होंने मन्द स्वर में उसका मार्म-दर्शन करते हुए उसे यह उपदेश दिया जिसकी उसे याददास्त थी। उन्होंने कहा—“अगर तूम मन की दान्ति चाहती हो तो दूसरों के दोष मत खोजो। स्वयं अपने दोष देखने का धम्यास डालो। समस्त संसार को अपना बनाना सीखो। कोई भी पराया नहीं है, मेरी बच्ची। यह समस्त संसार ही तुम्हारा अपना है।” इन वाक्यों में उन्होंने अपनी शिष्या को अनात्मत्व प्रकट करने के लिए जो हमें एक-दूसरे से बिसंग करता है साबधान करते हुए मनुष्य-मात्र की समता की शिक्षा की वह समता जिसमें ‘मेरा’ ‘तुम्हारा’ जैसे शब्दों और परामर्श के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

रामकृष्ण ने बड़ ही स्पष्ट शब्दों में हमें बताया है कि सभी धर्मों में मन्तव्य को प्राप्त करने के साधन समान ही हैं। संत होने का अर्थ है एक उच्चतर प्रवस्था और भिन्न चेतना की ओर एक ही संकल्प और इस मार्ग की विभिन्न सीढ़ियों का विस्तृत और सुरम्य बर्णन हमें संसार के बार्मिक साहित्य में मिलता है। यह सत्य है कि कुछ बार्मिक पुस्तकें मन्त-साधक बार्मिक मतवाला और तत्त्व-ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्तों से इतनी बेगिरी होती है कि उनमें से तत्त्व की प्राप्ति एक मत्पन्न कठिन कार्य हो जाता है तथापि तत्त्व उनमें होता ही है।

वेदान्त-दर्शन जो सब धर्मों का सार कहा जा सकता है, मूल रूप में तीन बलों पर आधारित है। पहली मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्ति ब्रह्म है। दूसरी मनुष्य का परम सत्त्व अपने भीतर की ज्योति को ही जवाना है। और तीसरी महान् भौतिक तथा बार्मिक मध्य सर्वत्र समान होने हैं यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है। इन तीन कार्यरूप सिद्धान्त-वाक्यों को आधार बना कर सायक तत्त्व-ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त स्वीकृत मत-मतान्तरों और वाद-विवाद के व्यक्तियों से मुक्त होकर सत्य और धर्म-माताकार की स्थापना में अपने धार्मिक पथ पर चल पड़ता है। इसमें कुछ भी धारण नहीं है कि पश्चिम के बहुत से मुक्त धार्मिक संप्रदायों तत्त्व-ज्ञान के पहचानी बाबेदारों और बार्मिक उपदेशकों से उत्र कर भारत के प्राचीन ज्ञान की पार शुक रहे हैं और वेदान्त ने मन्त किन्तु बम्भीर

ज्ञान से वह तरह पाते हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता है। इस अभियान में वे दस बात से धीरे भी उत्तेजना एवं सन्तोष प्राप्त करते हैं कि जैसा उन्हें अपेक्षित था विज्ञान धीरे धीरे के बीच एक बहुत बड़ी खाई है उसके विपरीत उन्हें भीतिक विज्ञान की कुछ प्रत्याभुतिक शक्तों के विचार बेवों में सहस्रो वर्ष पूर्व कहे गये मिलते हैं।

पूरे धीरे पश्चिम दोनों एक-दूसरे को बहुत-कुछ दे सकते हैं। एक नया धीरे अन्धकार संसार बनाने के लिए हम इस योगदान को जितना गिकट सा सके उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा। क्यों पूर्व विवेकानन्द ने इस स्थिति का इतना सही विश्लेषण किया था कि मैं फिर उन्हें उद्धृत करते हैं प्रसंगिक से संबंधित नहीं रह सकता। न मिलता है— यह बात नहीं कि हम भारतवासियों को पश्चिम से ही सब कुछ सीखना है न पश्चिम को ही हमसे सब कुछ सीखना है अपितु दोनों का ही अपना सब कुछ भावी सन्तानों को उस प्रादर्श संसार की रचना के लिए सीप देना होगा जो मुगों से हमारा स्वप्न है।” पूर्व धीरे पश्चिम दोनों का इस संसार के निर्माण के काम में अपना-अपना योगदान देना है धीरे यही कारण है कि मैं इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण समझता हूँ कि हम एक-दूसरे का अधिक से अधिक प्रबुद्धी तरह समझ सकें धीरे महत्त्वपूर्ण ही होगा कि पूर्व धीरे पश्चिम के सन्तानों पर यह छोटी-सी पत्तक पाठकों के हाथ में पहुँचे।

—कनय दाँवर



## विषय-सूची

—प्रकाशकीय व्यवस्था

प्रायःकाल

विजयसक्ती पंडित

प्रस्तावना

ईश्वर बॉकर

१५

३

५

७

भाग-१

### हिन्दू धर्म की सन्त महिमाएँ

परिच्छेद

१ हिन्दू लिखों की प्रायःकालिक परम्परा—परिच्छेदिक  
स्वामी बमानन्द

१७

२ धर्मोपदेश

टी० एच० शशिनाथीसिंहम्

२६

३ कारिकात्मक धर्मोपदेश

एच० शशिनाथसिंहम् पिसर्

३३

४ प्रायःकाल

स्वामी परमात्मानन्द

४२

५ धर्म मञ्जरी

टी० एन० श्रीकाठिया

५०

६ लक्ष्मणेश्वरी धर्मशास्त्र की लक्ष्मण जी की  
श्रीमती चन्द्रा कुमारी हाण्डू

६५

७ श्रीमती

श्रीमती लक्ष्मणेश्वरी मदान

७६

८ महाभारत की सन्त महिमाएँ

डी० जी० खेर

८५



## विषय-सूची

—प्रकाशकीय विवरण

प्राकल्पन

विषयसम्बन्धी पंडित

प्रस्तावना

ईश्वर बौद्ध

५८

१

२

७

भाग-१

हिन्दू धर्म की सन्त महिमाएँ

परिचय

१ हिन्दू विप्रों की धार्मिक परम्परा—परिचयात्मक  
स्वामी जनानन्द

१७

२ अर्थशास्त्र

टी एच अश्विनीधर

२१

३ कार्तिकात्मक परम्परा

एच० अश्विनीधर

३३

४ अष्टात्मक

स्वामी परमात्मानन्द

४२

५ अष्टमहादेवी

टी० एन० श्रीकांत

५०

६ लक्ष्मीदेवी अष्टमहादेवी की लाल शोबी  
श्रीमती अम्बा कुमारी हाण्डू

६२

७ श्रीमती

श्रीमती सावन्ती मदान

७१

८ महाराष्ट्र की सन्त महिमाएँ  
डी जी० शेर

७५

	पृष्ठ
६. यक्षिणा बाई पिरोत्र भ्रामस्यकर	६१
१० गीरीबाई श्रीमती छरोबिनी मेहता	१०१
११ केरम की कुछ सन्त महिलाएँ पी० सेक्षात्रि एवं महोपाध्याय के० एच० नीसाकास्ता मूनी	१०८
१२ तारिमोण्डा बेनकमाम्बा स्वामी शिरन्तनामन्द	११४
१३ श्री शारदा बेबी, पवित्र माता स्वामी बनानन्द	१२३
१४ श्री रामहृष्य के जीवन से सम्बद्ध कुछ पवित्र सन्त महिलाएँ स्वामी बनानन्द	१३६

भाग-२

बौद्ध तथा जैन धर्म की सन्त महिलाएँ

१५. बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में महिलाओं का उच्च स्थान : परिचयपरमक स्वामी बनानन्द	१७३
१६ बौद्ध तथा जैन सन्त महिलाएँ—१ बौद्ध सन्त महिलाएँ श्रीमती चन्द्रा कुमारी हाण्डू	१७६
२ जैन सन्त महिलाएँ स्वामी बनानन्द	१६९
१७ धर्मा की एक पवित्र महिला—मि-काओ-बु श्रीमती शिठ-जीन्द	१६७

भाग—३

ईसाई धर्म की सन्त महिलाएँ

१८. ईसाई धर्म की सन्त महिलाएँ—मि-काओ-बु जॉन श्रीनिफ	२५
--	----

१९. मंकरिना	
ए० एम० मारला	१५४
२०. किसानवारे की ब्रिबिट	११९
ई० पाघोसीन किवमसी	
२१. मीगरेवर्प की मीकपिरड	२०२
कृत आइबरिकम	
२२. मादिष की कूलिधम	२९०
जान भौनिक	
२३. तिपना की कौचरिग	२४०
शिइसभिया कामम	
२४. एबिला की डेरेसा	२६८
मार्लस सॉटन	
२५. साँ मेरी एम्बलीक	०६०
बाल्फरम कीष	
२६. मबर क्वेबिनी	२७४
स्टुमर्ट प्रेसम	
	१८६

भाग-४

२७. हुंनरीवा दोरड	
आइरक बँट	
२८. रबिया	२९९
दीमवी रोमा चौबरी	





भाग १

हिन्दू धर्म की सन्त महिलाएँ



## हिन्दू स्त्रियों की धार्मिक परम्परा

परिचयात्मक

१

प्राचीनी लोकक सुई आकोलियो के कथनानुसार वैदिक काल में भारत में स्त्रियों का इतना आदर था कि वे एक तरह से पूज्य समझी जाती थीं। आकाशियों ने बिस्मय प्रकट करत हुए लिखा है "यह एक सम्मता है जो निरपेक्ष ही हमारी सम्मता से कहीं पुरानी है और देखिए इसमें स्त्री को मुख्य के समकक्ष रखा गया है तथा परिवार और समाज में स्त्री और पुरुष का बराबरी का दर्जा दिया गया है।"

स्मृतिकार मनु ने 'विदिके शास्त्रेण जस्टिनिमन संहिता धीर प्रथम बारद्विज में प्रतिपादित मुसा-नियमावली से यही सम्बन्ध है जो पिता का पुत्र से होता है" वेद की शिक्षाओं को स्वीकार किया और स्त्री-पुरुष के लिए समान अधिकारों का विधान किया। मनुस्मृति में कहा गया है, 'इस भाग्यी जगत् के सृजन में पहले संसार के स्वामी आदिदेवता ने अपने को दो हिस्सों में बाँट लिया। एक हिस्सा पुरुष और दूसरा हिस्सा स्त्री कहाया।" आज भी हिन्दू धरती विमूर्ति के एक देवता का धर्मनाटीस्वर के रूप में पूजन करते हैं। यह धीर इसी तरह की धर्म कई बातों के कारण हिन्दू जन-मानस में स्त्री-मुख्य की मौलिक समानता का भाव बराबर बना रहा है। बस्तुतः इसी भावना के आधार पर हिन्दू धर्म और नीति तथा आधार-संहिता का बहु विप्लव भवन स्थापित किया गया जो समय के बहा ल जानेवाले प्रवाह के सामने ज्यों का त्यों खड़ा रह सका है। हिन्दुओं के धार्मिक नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी प्रतिमानों के अनुसार स्त्री-मुख्य को बराबर समझना और इसमें किसी भी तरह का पक्षपात न करना नितांत आवश्यक है। श्रुद्धे में स्पष्ट और निरिक्त रूप से कहा गया है कि "पति-वत्नी एक ही काया के दो बराबर-बराबर अंग हैं और हर दृष्टि से उनमें पूर्ण समानता है, इसलिए, धार्मिक और नैतिक सभी दृष्टियों में उन्हें समान रूप से हिस्सा देना चाहिए।"

१. परिच्छेद १-११-८। साथ ही देखें बहुवारण्यक उपनिषद् १-४-६

वैदिक काल में स्त्री-पुरुषों और बालक-बालिकाओं को शिक्षा और लोक-व्यवहार के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान किये जाते थे। सड़कों की तरह सड़कियों का भी उपनयन होता था और उन्हें गायत्री तथा ब्रह्मचर्य की शिक्षा भी जाती थी। संसार के और किसी धर्मग्रन्थ में स्त्रियों के लिए इतने अधिक और पुरुष के समकक्ष अधिकारों का विधान नहीं है, अतः कि हिन्दुओं के वेदों में।

२

उत्तर-वैदिक काल में भी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचलन था। स्त्रियों के लिए दो प्रकार की शिक्षा-पद्धति की व्यवस्था थी और इनके अनुसार शिक्षित स्त्रियों के दो वर्ग हुआ करते थे—सद्योद्वाहा—जो विवाह होने पर अपना शिक्षा-क्रम समाप्त कर देती थीं और ब्रह्मचारिणी—जो विवाह नहीं करती थीं और प्राचीन शिक्षा लेती रूढ़ी थीं। ब्रह्मचर्य के युग में वैदिक पुरुषों का यज्ञपूर्व स्मरण किया जाता था। उनकी सूची में तीन शाखाओं के नाम भी शामिल थे—‘वार्गी वाचकनवी बडवा प्रातिबेयी और सुतमा मीमेयी’।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस युग में वेदाध्ययन और अन्य उच्चतर शिक्षा क्रम पुरुषों की तरह स्त्रियों के लिए भी सुलभ थे। कई स्त्रियों ने वेदाध्ययन शिक्षण दर्शन तथा मीमांसा और शास्त्रार्थ के क्षेत्र में नाम कमाया। यही नहीं वैदिक काल में यज्ञ सामान्यतः स्त्री-पुरुष मिला कर किया करते थे।

पूर्व-वैदिक काल में बच्चों के शिक्षण का दायित्व ग्राम लीर पर पिता पर होता था। शास्त्र-उपनिषदों के काल में सड़कियों की शिक्षा-दीक्षा सामान्य रूप से परे में पिता माइयों और अन्य पुरुष सम्बन्धियों द्वारा सम्पन्न होती थी। लेकिन कुछ सड़कियाँ परिवार के बाहर के लोगों को भी गुरु बनाती थीं और कुछ विचारार्थ के लिए घर से बाहर ‘छात्रीशालाओं’ में भी रूढ़ी थीं। इस युग में भी स्त्रियों विद्वानों की गोष्ठियों में जाकर शास्त्रार्थ करने की पूर्वकालीन परम्परा का धाने बढ़ाती रहीं।

एही थी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने रामकृष्ण के मीमांसाशास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त की और दर्शनशास्त्र के अध्ययन को लोकप्रिय बनाने में योग दिया। इस प्रयोग में सुतमा वार्गी और बडवा के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ स्त्रियों ने सुती शास्त्राय जीवन और विवाह की सम्भावना को तिराजित देकर कष्टसाध्य तपस्विनी

जीवन व्यपनाया। बौद्ध धर्म के प्राविर्भाव से पहले भी भारतीय समाज में भिक्षुवियोग और संन्यासिनिर्मा हुआ करता था, यद्यपि उतनी बड़ी संख्या में नहीं। संन्यास की प्राप्ति के प्रति लोगों की श्रद्धा धीरे-धीरे बढ़ती गयी और ऐसी मायता हो गयी कि सामान्य गार्हस्थ्य जीवन और धार्मिक चिन्तन परस्पर-विरोधी होने के कारण एक साथ नहीं बिताये जा सकते।

प्राचीन भारत में समानता के आदर्श ब्रह्मचर्य में स्त्रियों के लिए आभाजन और धार्मिक ब्रह्मचर्य सम्भव हुआ। दुष्टम्ब है कि हिन्दू समाज में संन्यास का मार्ग अपनाने वाले स्त्रियों को प्राप्त करनेवालों में स्त्रियों और पुरुषों का अनुपात समान बराबर रहा है। हिन्दुओं के सामान्य जीवन के आदर्शवादी प्रतिमानों के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ। वेद की धार्मिक परम्परा के मानव्यवस्था-नामक में इतने गहरे पैठ चुके हैं कि हमारे यहां सामान्य और गार्हस्थ्य जीवन को कभी आत्म-सुष्टि प्रयत्न का साधन नहीं माना गया यद्यपि उसे धार्मिक धर्मव्यवस्था का ही एक सोपान समझा गया है। विवाह की श्रृंगारिक और भौतिकव्यवस्था हिन्दू धर्म को कभी मान्य नहीं हुई। प्रति-पत्नी व्यवस्था के सहयोगी समझे गये हैं और उन्हें मोक्ष-प्राप्ति के लिए एक दूसरे का अनुपूरक माना गया है। विवाह है कि सामान्य जीवन भोग-विनाश के नहीं संयम और अनुशासन के ब्रह्मचर्य में सम्भव हो।

परिवारों और ग्राम-समुदायों में पले हुए सभी व्यक्तियों को बहू-निष्ठा के संस्कार मिले क्योंकि उन्होंने स्वयं से यह देखा कि हिन्दू-समाज में छोटे-बड़े सभी वर्गों को धार्मिक विद्या देने का आग्रह है। अतः आश्चर्य नहीं कि इस विद्या और प्राचीन वेद में अंतर्गत ऐसे स्त्री-मुख्य हुए जो धार्मिक विकास के अन्तिम सोपान—नामप्रत्यय धाम—तक पहुँच सके और विद्या को प्राप्त हुए हैं।

ऋग्वेद में ऐसी अनेक स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने विरक्तम सत्य प्राप्त किया है। इन्हें उत्पत्ति का अन्वेषण, अनागत-वर्तनी ब्रह्मवादिनी जैसे विशेषणों से विभूषित किया गया है। अनेक ऋग्वेद में ही अनेक ऐसे प्रेरणा-दायी सूक्त हैं जिनकी रचयिता स्त्रियाँ बनी हैं। कुछ भिन्नकर इस वेद में सप्ताह ब्रह्मवादिनीयों का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम सर्ग के एक ही अन्वेषण सूक्त की रचयिता रोमया और एक ही अन्वेषण सूक्त की रचयिता सोपामुखा बनी हैं। इन विदुषियों के अन्वेषण की महारहस्य वास्तव में विस्तार है। बौध नामक ब्रह्मवादिनी ने जो अन्वेषण विद्या की सुपत्नी थी, अपने को परम ब्रह्म से एकतात् कर लिया और इस धार्मिक

अनुभव के ध्यानान्तरिक में बह उठी—“मैं परम सम्प्राप्ती हूँ—जो भी भोजन करता है मेरे माध्यम से करता है, जो भी बेसठा है, स्वास भेठा है सुनता है सब मेरे माध्यम से करता है। मैं ही अराधन का गुजन करनेवाली हूँ वायु की मांति समस्त जगत में प्रवाहित होती हूँ। इस पृथ्वी घोर उच्च स्वर्ग में भी परे हूँ मैं, ऐसी विद्याम है मेरी महानता।”<sup>1</sup>

बैदिक ज्ञान घोर दर्शन का उद्घाटन तथा निरूपण करनेवाली घोर भी कई स्त्रियाँ हुई हैं। उदाहरणार्थ विश्वनाथ सास्वती अपना जो घोर अदिधि। इन सबने संन्यास के उच्चतम धारण को अपनाया घोर सांसारिक ऐश्वर्य का सर्वथा त्याग किया। इन्होंने यज्ञपूर्वक सब कामिक कृत्य पूरे क्रिये सूक्तों की रचना घोर उनका पठन-पाठन किया जीवन घोर मृत्यु, धारणा घोर परमात्मा की सूक्ष्म अदिधि समस्याओं के बारे में विद्वानों से धारणार्थ किया घोर कई अक्षरों पर अपने समय के अद्वैत दार्शनिकों को आर-विचार में पराम्त कर दिया।

पूर्व-बैदिक काल में भी हिन्दू स्त्रियों की धार्मिक परम्परा काफी समृद्ध घोर सुदृढ़ हो चली थी। इसका एक उदाहरण हमें ब्रह्मविद्या मार्या के जीवन से मिलता है जो एक विदुषी महिला थी घोर जिसने महद्वि याज्ञवल्क्य को धार्मिक जनता के सामने दर्शन के सुदृढ़ अक्षरों के बारे में धारणार्थ करने की चुनौती दी थी।<sup>2</sup>

परम धारणा घोर मोक्ष प्राप्त करने की सास्वत समस्या पर अविवाहित ही नहीं विवाहित स्त्रियाँ भी अिन्तन-भजन किया करती थी। इसका उदाहरण याज्ञवल्क्य घोर उनकी पत्नी के उच्च समय के अक्षर<sup>3</sup> से मिलता है जब याज्ञवल्क्य अपनी सम्पत्ति में से मीत्रेयी का हिस्सा अिन्तन करके संन्यास ग्रहण करने जा रहा थे। मीत्रेयी ने उनसे कहा—“स्वामी! अक्षर अक्षर-माध्य से अिन्तन यह धारण अक्षर मी अक्षर होता तो क्या मैं अक्षर हा जाती?” याज्ञवल्क्य बोले—“नहीं तुम्हारा जीवन बीसा ही होता बीसा कि पनी भोगों का होता है। अक्षरता की तो धन के माध्यम से कोई सम्पत्ति ही नहीं है।” मीत्रेयी ने कहा—“तो फिर मैं उम अक्षर क्या करूँ जो मुझे अक्षरता प्राप्त नहीं कर सकता। स्वामी मुझे तो बह माय सुभाएँ अिन्तन मैं अक्षरता को प्राप्त कर सकूँ। याज्ञवल्क्य बोले—“तुम मुझे पहले भी अक्षर में अिन्तन रही हो। तुममें जो कुछ मुझे अिन्तन रहा है वह अक्षर

(1) अक्षर १०-१२३

(2) अक्षर अक्षर अक्षर ३-६

(3) अक्षर अक्षर अक्षर २-४-३

सवार से बड़ गया है। प्रिये यदि तुम वास्तव में मोक्ष के साधन जानना चाहती हो तो सुनो मैं उनकी विवेचना करता हूँ। तुम विवेचना के धर्म पर मनन करती जाओ। मीनेयी पति प्रिय होता है तो वास्तव में वह प्रेम पति के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। मीनेयी! पत्नी प्रिय होती है तो वास्तव में वह प्रेम पत्नी के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। मीनेयी पुत्र प्रिय होता है तो वास्तव में वह प्रेम पुत्र के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। मीनेयी धन-सम्पदा प्रिय होती है तो वास्तव में वह प्रेम धन-सम्पदा के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। यह पहले गुरुजनों और धर्म-ग्रन्थों से उसके स्वयं का ज्ञान प्राप्त करके फिर उसके नियम में चिन्तन-मगन करके और धर्म में समाधिस्थ होकर उसका ध्यान करके। जब धर्मों से सुनकर तथा स्वयं चिन्तन-मगन और ध्यान करके हम ध्यात्म ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो हमें धारमेवर का भी ज्ञान हो जाता है क्योंकि सभी कुछ हम में है हमसे धर्म या बाहर कुछ भी नहीं है।”

जब धार्मिक विचार-विमर्श हुआ करते थे तो बहुधा स्त्रियों को सम्बन्ध बनाया जाता था और वे अपने पण्डित्य और विप्लव निर्णय से सम्मान प्राप्त करती थीं। उत्तर-वैदिक काल में भी जब श्री शंकराचार्य ने विस्फोट कर्मकाण्ठी मण्डन मिथ से बेदाल-बर्छन के बारे में धार्वार्थ किया तो निर्णायक का पर मण्डन मिथ की पत्नी मारती को दिया गया जो बेदविद्या में पारंगत थी। सत्र दिन तक धार्वार्थ होता रहा और मारती ने मण्डन मिथ की पत्नी होते हुए भी विप्लव माय से निर्णय करते हुए शंकराचार्य को जिजयी बोधित किया। शंकराचार्य मारती की विद्वत्ता से अत्यन्त प्रभावित हुए और इस महत्त्वपूर्ण धार्वार्थ के बाद उन्होंने अपने धार्मिक नाम के प्राये 'मारती' का नाम जोड़ कर मण्डन मिथ की पत्नी के प्रति अपनी मन्दा व्यक्त की।

उत्तर-वैदिक काल में पितृ स्त्रियों की संख्या काफी बढ़ी थी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि ऐसी स्त्रियों का धार्वार्थ और गुरुओं की पत्नियों से विधेय करने के लिए उन्हें अलग-अलग संज्ञाएँ दी गयी थीं। गुरुपत्नियों उपाध्यायानी धार्वार्थिनी धादि कहलाती थीं और विदुषी स्त्री को उपाध्याया उपाध्यायी धार्वार्थि पण्डिता धादि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता था।

१

पुत्रों और रामायण-महामारत के काल में भी हम यह देखते हैं कि कई



स्त्रियों ने आध्यात्मवाद के क्षेत्र में महान् प्रगति की और वे योगिनियाँ बनीं । रामायण में सुमती और सखी नामक दो तपस्त्रियों का उल्लेख है । सखी महर्षि भार्गव की शिष्या थी और उसने अपना अद्भुत आध्यात्मिक विकास किया था । सखी ने जोर तपस्या की । वह बस्त्र बस्त्र पहनती थी और बटाजूट धारण किए रहती थी । महाभारत में योगिनी सुमया का उल्लेख है जो भिक्षुनी बनकर पर्यटन करती रही । सुमया महाराज जगन्म के दरबार में यही और वहाँ उसने योग-साधना से प्राप्त अपनी विलक्षण शक्ति और विस्मयजनक ज्ञान का परिचय दिया । तपस्त्रिणी शिवा ने भी वेदों के अध्ययन में अद्भुत प्रगति की और परम ज्ञान प्राप्त किया । शास्त्रिण्य की सुपुत्री ने भी ब्रह्मचर्य को आजीवन अपनाया और आध्यात्मिक मुक्ति पायी । विवाहित स्त्रियों-द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने के भी कठिन उदाहरण मिलते हैं यथा प्रभात की बर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी बनी जन्होंने परित्रमक भिक्षुनी का जीवन अपनाया और योग-साधना की ।

आज भी भारत में सिद्धि-प्राप्त कई योगिनियाँ हैं । इनमें से अनेक आध्यात्मिक बनी हैं और जन्होंने आध्यात्मिक मार्ग में स्त्री-मुक्तियों का चिन्तन किया है । श्री रामकृष्ण के गुरुओं में भी एक ऐसी योगिनी थी । रामकृष्ण की अनेक शिष्याएँ भी थीं जन्होंने भिक्षुणियों का जीवन अपनाया और निरन्तर वृत्तों की आध्यात्म-साधना का निर्योग किया ।

और भी बहुत सन्त के अन्तर्गत कई प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ और तपस्त्रिनियाँ हुयी हैं जिनकी अर्धा इस पुस्तक के अन्तर्गत में एक पूरे परिच्छेद में की जाएगी ।

स्मृति पुराण-भूय (१०० ई० पू० से ६०० ईस्वी तक) एक प्रकार से ह्यास और वर्जन का युग है । इसमें स्त्रियों के लिए धिया-बीसा सेने की सुविधाओं का सर्वथा अभाव था । अत्यायु में स्त्रियों का विवाह कर देने की प्रथा चल पड़ी थी और यह विवाह कर दिया गया था कि कोई भी स्त्री अविवाहित नहीं रह सकती । स्त्रियों के लिए पूर्ण मानसिक और आध्यात्मिक विकास के अवसर उपलब्ध नहीं थे । इस युग के प्रारम्भिक चरण में ही सङ्घर्षों का उपनयन संस्कार कराने का महत्त्व प्राप्त हो गया था और यह संस्कार केवल नाममात्र का किया जाता था । उपनयन के बाद सङ्घर्षों को बेवाम्यन नहीं करया जाता था । कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि सङ्घर्षों का उपनयन संस्कार अन्तर्गत बेवाम्यन-कारण के बिना ही सम्पन्न किया जाये । समाज के अग्रणी विधायकों ने अन्तर्गत यह अनुभव किया कि जब सङ्घर्षों के उपनयन का अन्त

शाशासनकृत महत्त्व सेप रह गया है तो क्यों न इस संस्कार को पूर्णतया समाप्त ही कर दिया जाये यथा याज्ञवल्क्य ने सङ्क्रियों के लिए उपनयन का विषेक किया है और बाद के स्मृतिकारों का भी वही विधान है ।

होने को तो स्मृति पुत्रान के युग में भी कुछ हिन्दू उपस्त्रियियाँ हुईं लेकिन सामिक शाशासिकाविलय में उन्हें कोई सम्मानित पद नहीं दिया गया । बालप्रस्त्री व्यक्ति संभाल लेते समय अपनी पत्नी को साथ लेकर जा सकता था और पति-पत्नी मिस कर तपस्त्रियाँ कर सकते थे । लेकिन इसके उपाहरण बहुत ही कम मिलते हैं । कालान्तर में यह विधान भी समाप्त कर दिया गया और शाशासनों ने कहा दिया कि सौहृयुव में स्त्रियों के लिए बालप्रस्त्र और संभाल प्रसम्भ तथा निषिद्ध हैं । बौद्ध भिक्षु-भिक्षुत्रियों के विहारों में भ्रष्टाचार के पनपने पर तो यह विधान और भी अनुस्त्रान्त्र समझा जाने लगा ।

४

सन् १०० ईस्वी से लेकर १८०० ईस्वी तक के काल में महात्त्रायों और पुत्रानों में प्रतिपाकित सामिक मात्त्रताओं का बोलबाला रहा । वेदों पुत्रानों और स्मृत्रियों में प्रयुक्त संस्कृत भाषा का प्रबलन धीरे-धीरे कम होता गया और स्त्रारहनी पठाम्नी के प्रारम्भ होते-होते ये सब शत्र्व जनसाधारण के लिए सुयम सुबोम नहीं रहे । वैदिक काल में स्त्रियों को जो सुत्रियाएँ और विद्वेषाधिकार प्राप्त थे वे सब समाप्त हो गए । यह वही युग है जिसमें मक्ति मार्ग का प्रादुर्भाव हुआ । स्त्रियों ने बहुत उत्साह और निष्ठा से साबता का यह नया मार्ग अपनाया । इस युग की लक्षमण सभी सन्त हिन्दू महिलाएँ किसी न किसी मक्ति-सम्प्रदाय की सहस्त्रा रहीं । सभी प्रान्तों में मक्ति-सम्प्रदायों का विकास हुआ और सभी प्रान्तों में अनेक महिलाएँ सन्त बनकर प्रसिद्ध हुईं । अतः, पूजा मजन कैर्त्तन सामिक शत्र्वों का पठन-पाठन और अन्य साम्प्रतिक शत्र्व इस महिलाओं के मित्य नियम बने । इस युग की कई प्रयुक्त महिला शत्र्वों की प्रस्तुत पुस्तक में शत्र्वों की गयी है ।

धायद कुछ लोगों को इस बात से शरश्चर्च हो कि भारत-वैसे विशाल देश में जहाँ इतनी बड़ी संख्या में सन्त महिलाएँ और उपस्त्रियियाँ हुईं हैं वहाँ भिक्षुत्रियों की कोई भी संस्त्रा नहीं बनी । ऐसी संस्त्रा न बन पाने के अनेक कारण थे । पहला तो यह कि हजारों देश सब राष्ट्रीय श्वास और सामाजिक उन्नत-युपल के और से मुक्त रहा का जो पूँ और मुक्तिमण राज से उन्नत शत्र्विशारा के

प्रभाव न पहुँचता। दूसरा कारण यह था कि हिन्दू धर्म में ऐसा कोई प्रकृत और प्रभावशाली व्यक्ति नहीं हुआ जो जनसाधारण और मनीषी सब पर समान रूप से छा जाता। श्री शंकराचार्य का व्यक्तित्व अथवा प्रभावशाली था पर उनकी विद्वत्ता और धार्मिक उत्कर्ष का प्रभाव बुद्धिजीवी और धर्म्यात्म-प्रवृत्त लोगों तक ही सीमित रहा। तीसरा कारण यह था कि इस युग की सभी सन्त महिमाएँ ही धार्मिक अथवा वैष्णव जिसमें राम और कृष्ण अथवा सूर्य-मन्त्र के सम्बन्ध भी शामिल हैं। मार्गों में से किसी न किसी को अपना चुनी थी। इस प्रकार उनका विभाजन हो गया था और एकीकरण करके तपस्विनियों की कोई संस्था बनाना असम्भव हो जाता था। चौथा कारण यह था कि परिवार और समाज में स्त्रियों का स्थान कुछ ऐसा था कि उन्हें धार्मिक दृष्टि से पूरी तरह पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्त्रियों को व्यापारों में सम्मिलित होने की वह स्वाधीनता प्राप्त नहीं थी जो मानसिक या धार्मिक सभी तरह के विकास के लिए परम आवश्यक है। पाँचवाँ कारण यह था कि विभिन्न प्रांतों की तपस्विनियों को न तो एक-दूसरे सम्मिलने के अवसर प्राप्त थे और न ही कोई ऐसी समाज मात्रा थी जिसके माध्यम से उनमें बौद्धिक संसर्ग और आदान-प्रदान हो पाता। इस प्रकार मुख्यतः इन कुछ कारणों से ही बौद्ध विद्युत्तियों की संस्था का भंग हो जाने के बाद भारत में हिन्दू विद्युत्तियों का ऐसा कोई प्रतिष्ठान नहीं बन पाया था अपने समय के धार्मिक आचार्यों से मान्यता पा सकता। उस युग में वैयक्तिक धार्मिकोत्कर्ष पर ही विशेष बल दिया गया और विविध कोई संस्था बनाना व्यर्थ समझा गया।

## २

धार्मिक भारत में महान् राष्ट्रीय पुनरुत्थान हुआ है। नव जाति के इस चरण का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्धशतक में माना जा सकता है। धार्मिक जीवन-दर्शन के प्रसार और धार्मिक शिक्षा के प्रचलन से सजी हुई विभिन्न हिन्दू संस्कृति और धार्मिक परम्परा को स्फूर्ति प्राप्त हुई। सामाजिक नवजागरण से सभी-मुख्य दोनों समाज रूप से लाभान्वित हुए। हिन्दू स्त्रियों की धार्मिक परम्परा ने जिसका अस्तित्व राम में बनी हुई चिनमाटी के समाज हो चुका था फिर जोर पकड़ा और कुछ ही पीढ़ियों बाद वह चिनमाटी एक अन्तर्गत बन गई। इसकी प्रेरणा नवजादुर्भूत हिन्दू धर्म से मिली। नयी चेतना के प्रवर्तकों ने संस्कृत-विद्या और प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान का फिर से प्रचार करने का मन किया। इस मजदूरी स्त्रियों को समाज में फिर ऊँचा सम्मान

प्राप्त कर सकने में सहायता मिली । धीमे ही स्त्रियों ने किसी सीमा तक सामाजिक स्वाधीनता प्राप्त कर ली । शिक्षा और नागरिक तथा सामाजिक व्यापारों में उन्हें पुरुषों के समान अवसर मिलने लगे ।

हिन्दू धर्म के महोत्थान के प्रभाव से जो धार्मिक आन्दोलन शुरू हुए, वे सब स्त्रियों के पुनरुद्धार में सहायक सिद्ध हुए । स्वामी विवेकानन्द और उनके सह-मठवासियों के प्रबुद्ध और प्रेरणादायी निर्देशन में रामकृष्ण-मिशन ने भी इस क्षेत्र में काफ़ी योग दिया । महात्मा गांधी के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन का भी विशेष प्रभाव पड़ा । जब भारत में स्त्रियों को पहले से अधिक सामाजिक अधिकार प्राप्त हुए और उनके लिए मानसिक तथा साम्प्रदायिक विकास की कहीं अधिक सुविधा है । स्त्रियों ने इस क्षेत्र में महान् प्रयत्न कर ली है । विशेष रूप से बंगाल महाराष्ट्र केरल तमिलनाडु आदि प्रदेशों में ।

महर्षि रामकृष्ण धारवादेवी स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण-आन्दोलन की धर्म विभूतियों के जीवन और शिक्षाओं के प्रभाव से कहीं पुराने आदर्श जीवन और संन्यास की ओर प्रवृत्त हुए, वहाँ स्त्रियों ने भी त्याग और अन्धकार का भार धरना पड़ा । महिला वर्ग पर रामकृष्ण-आन्दोलन का यह सुम प्रभाव दूर-दूर तक व्याप्त हुआ वहाँ तक कि पारनात्म देहों की भी कुछ स्त्रियों ने तपस्विणियों का जीवन धरना पड़ा और भारत में स्त्रियों के उद्धार के लिए काम किया । इस प्रसंग में सिस्टर मिनेविता सुभी मार्गरेट नोब्ल और सिस्टर क्रिस्टीन के नाम उल्लेखनीय हैं । रामकृष्ण-मिशन ने सांसारिक जिज्ञासा का त्याग करके मानवता की सेवा में सर्वस्व हाथाने का जो आह्वान किया है वह देश के कोने-कोने तक पहुँचा है और विभिन्न प्रदेशों-की सैकड़ों स्त्रियों ने रामकृष्ण-आन्दोलन में सम्मिलित होकर सर्व-सेवा और आत्म-चिन्तन का बंध में लिया । हम यह आशा कर सकते हैं कि रामकृष्ण-मिशन की धार्मिक निष्पक्षता और कर्मठ सदस्याएँ अपनी बँती ही कोई त्रिभुजी-संस्था बना लेंगी जैसी सचमुच डाई हबार्ड बर्ष पहले भवनाथ बुद्ध की अनुमति और प्रेरणा से बनी थी । माता श्री धारवादेवी और उनकी सहयोगिणियाँ जो सब की सब भी रामकृष्ण की सिष्याएँ हैं अनन्यकारित रूप से और बिना किसी संबन्ध की सहायता से इस दिशा में कुछ प्राथमिक पग बढ़ा चुकी हैं । इन मनन्विणियों के जीवन और चिन्तन से शिक्षणी हो पीढ़ियों की स्त्रियों को प्रभावकारी साम्प्रदायिक प्रेरणा मिलती है । हमारी यही कामना है कि माया धार्मिकी पीढ़ियों की स्त्रियों को भी यह प्रेरणा मिलती रहे और वे अपने जीवन को सुनमय और सन्पन्न बना सकें ।

अभ्वयार

अभ्वयार की पचना प्राचीन भारत के प्रमुख साहित्यिकों में होती है। वह सभियों पूर्व की उन सप्त महिमाओं में से है जिनको घाज भी अज्ञापूर्वक स्मरण किया जाता है।

कई लोग यह नहीं जानते कि तमिल बहुत ही प्राचीन ब्रह्मसूत्रात्मक संसार की प्राचीनतम भाषा है। इस भाषा का इतिहास पार हजार वर्ष से भी अधिक पुराना है। तमिल भाषा का कुछ ऐसा प्राचीन साहित्य भी उपलब्ध है जिसका रचना-काल ईसा से हजार-पांच सौ वर्ष-पूर्व माना गया है। गहन गम्भीरता विविधता और रोचकता की दृष्टि से तमिल के इस प्राचीन साहित्य की किसी भी देश के अधिक से अधिक विकसित आधुनिक साहित्य से तुलना की जा सकती है। ईसा से हजार-पांच सौ वर्ष-पूर्व के तमिल साहित्य का इतना समृद्ध होना प्रमाणित करता है कि तमिल भाषा का इतिहास निरन्तर ही इससे भी अधिक पुराना है। कुछ सभियों के विकास के बाद ही भाषा इतनी समृद्ध हो सकी होगी। कहा जाता है कि तमिल-भाषियों का प्रदेश दक्षिण भारत की वर्तमान सीमाओं के भागों में फैला हुआ था। तमिल का जो प्राचीनतम साहित्य उपलब्ध है उससे यह संकेत मिलता है कि उस काल में तमिल भाषा-भाषी एक पुरा उपमहादीप रहा होगा जो कालान्तर में सागर-मग्न हो गया। भूबर्भन्सास्त्रियों की हाल की खोजों से इस अनुमान की पुष्टि होती है। उनका कहना है कि हजारों वर्ष पहले भारत और अफ्रीका एक-दूसरे से मिले हुए थे और भारत की दक्षिणी सीमा कुमारी अन्तरीप से भी घाबै तक फैली हुई थी। प्राचीन युग में संसार के विभिन्न भागों में कई भाषाओं का विकास हुआ वे फूली-फली और समृद्ध बनी लेकिन कुछ सभियों के कालान्तर में इतिहास के उठार चढ़ाव में उनका घट-घट होना ही स्वयं संस्कृत को ही ने सीजिये जो संसार की प्राचीनतम भाषाओं में से है, और जो कई धातुनिक भाषाओं की जननी बानी जाती है और जिसके उपलब्ध साहित्य की संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यों में गिनती होती है। घाज इस भाषा को मुट्ठी भर पत्रियों के अभाव और कोई पढ़ा-लिखा या बोमता नहीं है। इस दृष्टि से तमिल का इतिहास सर्वथा अनूठ है। हजारों वर्ष-प

विकसित यह भावा जिसका साहित्य प्राचीन काम से ही बहुत समृद्ध और सम्पन्न रहा है आज भी एक जीवित जन-भाषा है। उभित के प्राचीन साहित्य में हमें भारद्वाज विचारधारा और वेद वेद-जीवन की प्रतिष्ठा करनेवाली एक सम्पन्न सम्पत्ता और संस्कृति के बर्धन होते हैं।

इस प्राचीन साहित्य के विकास में कई विमलसम्य प्रतिभासामी व्यक्तियों ने योग दिया जिनमें धर्म्यार की बहुत ही अग्रणीयक यचना की जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म्यार नाम की दो साहित्यिकार्यें हुई हैं। एक तो तिरुक्कुरल के रचयिता तिरुक्कुरल की समकालीन थीं। तिरुक्कुरल उभित के सर्वप्रथम नीति-ग्रन्थों में से हैं, और इसका रचना-काल ईसा से कुछ सदियों पूर्व माना गया है। दूसरी धर्म्यार वह है जिनका ईस्वी संवत् की सातवीं शताब्दी की साहित्यिकार्यों में उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत निबन्ध पहली धर्म्यार के विषय में है जो अथेन्द्राक्षर धर्मिक सिद्ध महिला थी। शायद उरकी स्यति से प्रभावित होकर ही सातवीं शताब्दी की ललिका ने धर्म्यार नाम धर्म्यार रखा होगा। बताया जा चुका है कि पहली धर्म्यार का जन्म इससे कुछ सदियों-पूर्व हुआ था। तो क्या भारद्वाज जो इस सम्ये धन्तराल में उपस्थिती धर्म्यार का जीवन-परित्त यज्ञानु जनै-द्वारा प्रचारित उपस्थानों और अन्तर्गत यात्राओं से धार्मिकित हो गया है। लेकिन बोधा प्रयास करने पर हम इस धारण को हटा कर वास्तविक धर्म्यार से साक्षात् कर सकते हैं जो एक धारण महिला थी सहाय्य मनस्विनी थी जिसने जन-साधारण से लेकर बड़े-बड़े राजा-महापराधों सबकी अपनी सहानुभूति का पात्र बनाया और जीवन-यश में उनका निर्देशन किया।

कहा जाता है कि धर्म्यार बचपन में ही यनाथ हो गयीं। एक धारणी जो स्वयं कृषि का उद्योग भी करती थी और उसने ही उनका ज्ञान-याज्ञन किया। चौथी धर्म्यार का रूप-सौन्दर्य वर्ण का विषय बना और बड़े-बड़े उते अपनी परिणीता बनाने के लिए एक-दूसरे से होड़ लेने लगे। लेकिन धर्म्यार का मन तो पूरी तरह धार्मिक तथा साहित्यिक कृतियों में और जन-सेवा के धारण में रम चुका था। इसलिए विवाह करके माईस्य के बन्धन में पड़ जाना उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। जिस दम्पति ने धर्म्यार को पामा-योसा का उच्छका बचपन यही धारण रहा कि वह विवाह कर ले। किसी सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध करके धार्मिक दृष्टि से लाभान्वित होने का सोच वह दम्पति संवरण नहीं कर पाया। उसने धर्म्यार का पास के एक प्रवेश के राजकुमार से विवाह कर देने का निश्चय कर लिया। धर्म्यार द्विधिमा में पड़ गयीं। उन्होंने अपने दृष्ट देवता विष्णुदेव की प्रतिभा के सामने

राते हुए यह प्रार्थना की है भगवान् मे भोग मेरे जीवन और रूप-माधुर्य के पीछे पड़े हुए हैं, जबकि मैं अपना साथ जीवन सरस्वती की सेवा और ज्ञान के प्रसार में लगा देना चाहती हूँ। कृपा करो विष्णुस्वर। और मेरा जीवन और सौन्दर्य वापस मे लो ताकि मैं निश्चिन्त होकर धान्तिपूर्वक अपने धर्मोपार्जित मार्ग पर चल सकूँ।" भगवान् ने धर्म्यार की प्रार्थना सुनी और पलक मारते ही धर्म्यार बहुत ही साधारण दीननेवासी एक बुढ़िया बन गयी। अब उसके लिए विवाह-मस्तान घाने बन्द हो गये। इस चिन्ता से मुक्त होकर धर्म्यार ने भ्रमण पर्यटन शुरू किया और तमिस्रमायी प्रदेश के कोने-कोने में उनके नीतिबचन सुने गये। विष्णुस्वर की कृपा से रूपवती धर्म्यार के सहसा बुढ़िया हो जाने वाली बात तो शायद यद्वाप्तु जनों के मस्तिष्क की उपज हो लेकिन वास्तविक तथ्य का अनुमान कर पाना कठिन नहीं है। लोकविरिष्ठ है कि एकनिष्ठ साधना-द्वारा ही परम ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। रूप और जीवन से प्राप्त होनेवाला साधारण सुख ज्ञान-साधकों के लिए त्याग्य और निषिद्ध मन्त्रा गयी है। इसलिए धर्म्यार ने इस प्रकार के सुखों का त्याग किया होना और कामान्तर में त्याग की इस गाथा ने एक चमत्कार-प्रसंग का रूप धारण कर लिया होगा।

जो धर्म्यार भ्रमण-पर्यटन करती रही और छोटे से छोटा तथा बड़े से बड़ा जो भी उन्हें मिला उसे अपनी सद्बानी का पान करवाती रहीं। एक बार उन्हें एक पति-पत्नी मिले जिनका जीवन बहुत ही कलहमय था। पत्नी कर्कसा भी और अपने पति से बहुत ही बुरा व्यवहार किया करती थी। धर्म्यार मूखी थी पति को उस पर दया घा गयी। वह उन्हें अपने घर ले गया। लेकिन घर पहुँच कर वह पत्नी से यह कहने का साहस नहीं बटोर पाया कि धर्म्यार को भोजन दे दो। उसने अपनी मानिनी को मनाने के लिए उसका आश्रय किया उसके केश सँभारे, उससे मीठी-मीठी बातें कीं और फिर यह प्रकट किया कि वह एक मूखी बुढ़िया को जाना जाने के लिए बुझा माया है। पत्नी सुनते ही घाय बबूना हो गयी और पति को कष्ट पहुँचाने लगी। यह देखकर धर्म्यार उठ लड़ी हुई और बाहर निकल आयी पति माफी माँगने आया तो उन्हें निःसहानुभूति व्यक्त की और कहा "वाम्पत्य जीवन मैं सुख प्रबन्ध है किन्तु उसी दशा में जबकि मनुष्य को स्नेहमयी सौम्य और सब तरह से उपयुक्त पत्नी मिले। लेकिन जब ऐसा नहीं होता वाम्पत्य जीवन गरक बन जाता है। इस परिस्थिति में यही उचित है कि पार्श्वस्थ का त्याग करके संन्यास ले लिया जाये।"

इस प्रकार एक बार तमिस प्रवेश का भ्रमण करत हुए धर्मयार की भेट एक किसान से हुई जो अपने खेतों में काम कर रहा था। उसकी पत्नी जो बहुत ही स्नेहमयी थी उससे खेती-बाड़ी छोड़ कर पास के एक राजा के यहाँ जान का प्रयत्न कर रही थी। पति-पत्नी ने धर्मयार से इस विषय में परामर्श किया। धर्मयार बोली 'नहीं किनारे के बूल धीर राजा के बाकर दोनों का प्रतिस्व व्यसय में इतनी स्वाधीनता धीर परिमा नहीं हो सकती।'

तमिस प्रवेश के विभिन्न इलाकों के नरेश धर्मयार का बहुत आदर-सम्मान करते थे। धर्मयार को अपने दरबार में आमन्त्रित करने के लिए उनमें होठ मची रहती थी। एकाम बार जब युद्ध का संकट आया तो धर्मयार ने मध्यस्थता करके विभिन्न नरेशों में सन्धि कर दी। धर्मयार ने कहा 'युद्ध राजाओं की महत्त्वाकांक्षा के कारण होते हैं लेकिन उनकी याचना दोनों धीर के जमसाधारण को समान रूप से सुवतनी पड़ती है।' धर्मयार ने युद्ध की विभीषिका का बहुत ही सजीव वर्णन किया धीर लोगों को शान्ति का मार्ग अपनाते का उपसद दिया।

यद्यपि किहुयी धर्मयार को उत्सुक नरेशों के प्राग्रहपूर्वक निमन्त्रण मिसते ही रहते थे तथापि वह उनसे दूर ही रहती थी। सरस प्राङ्मन्त्रीन जीवन उन्हें पसन्द था धीर वह हमेशा साधारण प्रानीपत्रनों से घिरी रहती थी। वह जहाँ भी जाती गरीबों के साथ रहती उनके जैसा खाना-सुखा जाती धीर मोटा-बोटा पहनती उनके सुख-दुख में शामिल होती तथा चिन्ता धीर व्यथा के समय उन्हें परामर्श देती। हर व्यक्ति उसके स्नेह करता था नहीं तक कि उनका नाम ही जगत-बादी पड़ गया था। धर्मयार बहुत ही बृथावस्था में मरी धीर धर्मयार ने अपने नीतिग्रन्थों की रचना की जिनमें से कई प्राज तक धर्मयार ने

प्राङ्मन्त्रीनों में पढ़ाये जाते हैं। धर्मयार-रचित कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं — धातिबूडि कोनरे वेन्तन उसाका नीति मूरुरइ नसबति मनेदि, मीतिनेदि बिसस्सम नीति वेन्ना धीर भरनेदिचारम इम ग्रन्थों में नीति-बचन या तो सुक्तों के रूप में कहे गये हैं या बन्ना बर्ग की चतुष्पदियों में। धर्मयार के 'बचन' उपदेशात्मक हैं धीर बन्ने-बूडे सभी इनसे लाभान्वित हो सकते हैं। उनके कुछ 'बचन' उदाहरण के रूप में यहाँ दिये जा रहे हैं

- १ उत्तेजित करनेवासी बात न कहो।
- २ बात करना अपना बर्ग समझो।

—धातिबूडि

—धातिबूडि



३ करने से पहले ऊँच-नीच साध सो। —घातिबुद्धि

४ अपनी बुद्धि पर बुभामिमान न करो। —घातिबुद्धि

५ चावल के बीज के छिलके से चावल ही का प्रकुर फूटता है लेकिन अगर छिलका न हो तो चावल उग ही नहीं सकता। इसी प्रकार महान् व्यक्ति और स्फूर्तिवाने मनुष्य भी उपयुक्त उपकरणों के बिना कुछ नहीं कर सकते।

—मुरुरह

६ ताड़ का पेड़ बड़ा होता है लेकिन उसमें सुगन्ध नहीं होती मगिसा का फूल छोटा होता है किन्तु मधुर सुगन्ध से युक्त। चाकर और भाइम्बर से मनुष्यों की माप न करो। चाकर कितना विद्याल है लेकिन उसका बस स्थान करने तक के मोम्य नहीं है, पास ही एक छोटा-सा झरना सबको पीने का शीतल पान देता है।

—मुरुरह

७ कर्कटा बापी मधुर बापी पर बिजली नहीं हो सकती। बहू बाण को हाथियों तक को मार बिठाता है कपास के टुकड़े का कुछ भी नहीं बिनाइ सकता। चट्टान सोहे की लम्बी मोटी छड़ी से नहीं टूट पाती लेकिन एक छोटा-सा प्रैसुपा उसे छिल-भिन्न कर देता है।

—नलबलि

८ बाहे कोई कितना ही सहात्मा क्यों न हो नीच व्यक्तियों को उसमें दोष ही दीखते हैं। फलों और फूलों से सदे हुए और पचाय-मेमी भ्रमरों-हाथ गुंजित उद्यान में भी कौवा निबोली ही साजता है।

—नम्मरि

९ छिबाई के ताताव को बाँधो की अपेक्षा होती है चाकर को नहीं। मास्यता की शोत्र करनेवालों पर भी यही बात लागू होती है, दुश्मन सरसज की अपेक्षा करते हैं महात्मा नहीं। —नम्मरि

१० बीबन पानी का एक बुबबुबा है धन-सम्पदा चाकर की एक उत्तम तरंग है और हमारी इस काया के अस्तित्व की अर्थवि उत्तमी ही है अितनी कि पानी पर लिखे हुए अक्षरों की। तो फिर क्यों भाप परनात्मा की सभा में जाकर पूजा-अर्चना नहीं करते।

—नीति नेरि बिसरन्ध

११ म्याप्रिय राजा अपने मुत्तबतों की सूचना से ही समुत्त नहीं हो पाते मुत्त बेप में बिना किसी को साप लिये उहूर में कुमते हैं और स्वयं सबाई का पठा सयाते हैं। यही नहीं वे धाम्तामभ से बिचार करने के बाव ही कोई कारवाई करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि केवल कुछ तप्यों की सूचना से धाम्ताम पर, अस्वबाजी में कोई निर्णय दे जानने से म्याय बहुधा धन्याय में बदल जाता है।

—नीति नेरि बिलरज्जम  
१२ सक्ने मन्त्री राजा के पास जाने में और उसे विवेक और सम्मति की बात सुमाने में कमी नहीं हिचकत। वे राजा के क्रोध की ठनिक भी परवाह न करके उसे सही और नेक सलाह देते हैं। मन्मत्स हाथी पर महाबत संकुप रसता है, और राजा पर उसका मन्त्री।

—नीति नेरि बिलरज्जम  
१३ माँ की मृत्यु से मनुष्य मोहन के विभिन्न स्वार्थों की सूक्ष्म पहचान मूस जाता है, पिता की मृत्यु से पिता को छति पहुँचती है, माई की मृत्यु से बाहुबल जाता रहता है, लेकिन पत्नी की मृत्यु से सब कुछ समा जाता है।

—नीति बेष्वा  
१४ सभा का रत्न पण्डित होता है, धाकाघ का सूर्य और बर का पुत्र।

—नीति बेष्वा  
१५ जन कन्या के विवाह की बात चलती है, पिता बर में पाण्डित्य बोमता है माँ बन-सम्पदा के बारे में पृष्टनास करती है, सगे-सम्बन्धी उसके बर्ष-गोत्र के बारे में चिन्तित होते हैं, और स्वयं कन्या उसके रूप के बारे में जानना चाहती है।

—नीति बेष्वा  
१६ धारर्ष पुस्य बाल करने में कानूर के ऊँचे बृस के समान उवार होते हैं। वे सेते कम हैं और सेते बहुत स्यास हैं। उनके बाव से मनुष्य घाते हैं जो सुपाठी और कदमी के बृसों की भाँति सेते ग्यासा हैं सेते कम हैं।

—नीति बेष्वा  
१७ बान-किरर्षे धीरत होती है, बन्धन का लेप उनसे भी धमिक धीरत होता है, लेकिन सबसे धमिक धीरत होते हैं उन महात्माओं के मन्त्र बचन जिन्होंने प्रेम धम्ययन मन्त और वीर्य का मार्ग प्रपनाया है।

—नीति बेष्वा

१८ धो पीठस पर्वतों के राजा ! मनुष्य की धन-सम्पदा सब धर ही में रह जाती है। उसके रोते-बिसरते बन्धु-बान्धव उसे बससाग में छोड़ पाते हैं। भूमि उसकी बेहू को राज बना देती है। हाँ, अगर वह सदा-पायी रहा हो तो उसके मुँह जरूर रोप बने रहते हैं।

—धरनरिचारम्

१९ बीठ हुए दिनों की घंगुनियों पर गिनती हो सकती है, धागे धानेबानं तिनों का किस्ती के पास कोई हिसाब नहीं है। दिन बीठते जायें और हम कोई भी भसा काम न करें वह बिठना बुध है।

—धरनेरिचारम्

२० वह मूर्ख है जो कहता है कि सहारों के घास होने पर ही मैं स्नान करूँगा। और वह भी जो कहता है कि मैं बनी हा जाने के बाद धान-मुष्य बहूँगा। क्योंकि सम्भव है कि इस प्रकार जोड़े हुए धन से उसका कोई भसा न हो मनुष्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार धान-मुष्य करते रहना चाहिए। ऐसा करनेबाल को ही धन-सम्पदा फलेगी।

—धरवरिचारम्

२१ दाली से बड़ा कोई मुभी नहीं अपने विवेक से रयास घुमबिन्धक कोई साथी नहीं स्वाभिमानपूर्वक जीने से घण्टा कोई भाबरण नहीं। जो चाहते हैं कि उनकी धारणा पवित्र रहे उनके लिए यही सिखान्त है।

—धरनरिचारम्

२२ बहुत स्यास भोजन करने से इन्द्रियाँ उष हो जाती हैं बासना भङ्क उठती है और धरतत सर्वनाश हो जाता है। बुद्धिमान का चाहिए कि वह केवल इतना खाये जिससे वह जीवित रहे उसके और जीवन के वास्तविक धानन्द को प्राप्त कर सके।

—धरनरिचारम्

## कारककाल धर्मधार

सन्त सुन्दर ने जिनकी सेवा मठ के चार प्रमुख धार्याओं में गणना होती है, तमिलनाडु के सिद्ध और विविध शक्तिष्ठ शैव सन्तों की एक सूची तैयार की थी। इसमें १० पुरुषों और तीन स्त्रियों—कारककाल धर्मधार, पाण्डप कुल की महाराणी मयीयकंरावियार और सन्त सुन्दर की माता इरीकानियार के नाम थे—सन्त धर्मधार का जन्म कारककाल में हुआ था इसीलिए उन्हें कारककाल धर्मधार कहा जाता है। धर्मधार का जन्म किस शताब्दी में हुआ इस बारे में कोई निश्चित सूचना तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन इस बात के प्रमाण प्रबल है कि वह शैव धार्या सिद्धान्त सम्बन्ध के समय से पहले की थीं। धार्या सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्राथमिक रूप से यह बात है कि वह सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए हैं। इसलिए धर्मधार का जीवन-काल ४०० से ६०० ईसवी के बीच में कहीं रहा होगा।

कारककाल धर्मधार की जीवन-गाथा के बारे में सूचना प्राप्त करने का मुख्य स्रोत विस्लोय्जर-पुराण है। जोम सम्राट् कुलोत्तुंग द्वितीय ईसवी ११३३-११४६ के प्रधान मंत्री सेनिकमार के लिये हुए इस ग्रन्थ को पेरिय भर्त्तृ मुहर्त्तु पुराण भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त सन्त धर्मधार की काव्य रचनाओं से भी उनकी मान्यताओं, आकाशाओं और आध्यात्मिक सिद्धियों के बारे में काफी सूचना प्राप्त होती है।

प्रब इस लेख में पाठकों को धर्मधार के जीवन-चरित्र का परिचय देने के लिए पेरिया-पुराण में बलिष्ठ ब्रह्मान्त भगवत बीसा का टीका प्रस्तुत किया जाएगा।

कारककाल कई सदियों से एक महत्त्वपूर्ण और समृद्ध व्यापार-केन्द्र बना हुआ था। उस बन्दरगाह से बड़े पैमाने पर आयात-निर्गत का व्यापार हुआ करता था। वहाँ के बनावट बिक्रि और व्यापारी अपने समस्त कार्य-कलाप में सत्य और निष्ठा के सिद्धान्तों का पालन किया करते थे। इस बिक्रि-समुदाय के मुक्तिवादान्त के घर में धर्मधार ने जन्म लिया। इस बिक्रि-सुन्दर और शैव्य बन्दा का नाम रखा गया पुनीतवती भर्त्तृ (वह बही धर्म है जो संस्कृत और हिन्दी में पुनीतवती लिखा जाता है) वह जो पावन और पवित्र है।

### पुनः धीर परिचय की सप्त महिलाएँ

पुनीदवती ने शीघ्रकाल में ही भक्ति-मार्ग अपना लिया। तुलना-तुलना कर वह भयवान् धीर के नाम का रूप करती धीर प्राणवित हो उठी। बड़ी होकर उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा—

“हे सकल ब्रह्माण्ड के उज्ज्वल मीनकण्ठजाले स्वामी ! जब से बोझता सीमा है तेरे ही नाम का उच्चारण किया है, तेरे ही धीररूपों में अपना सर्वस्व प्रेम समर्पित किया है, कब नू प्रसाधामिमुख होकर मेरे कण्ठों को हरेण ?

पुनीदवती बड़े घर की बेटा भी धीर वह भी इकती थी। उसके सात्म-यात्म में किसी तरह की कोई कसर नहीं रहने दी गयी। वह शिष्टी बड़ी होती गयी उसका रूप भी उतना ही निररता जाता गया। लेकिन वह तो रूप-सौन्दर्य धर्मकार-धामुपण इन सबसे बिलकुल अनभिज्ञ थी। धीर तो धीर, उसके पास भी धिक्-धारायता के लोस होते थे पर बनाने या पुत्रिका का ब्याह रवाने के नहीं। धिक् के भक्तों के प्रति उसकी भडा धीर उसका सेवा भाव दोनो बरा-बर बढ़ते जाते गये।

शास्त्राल को पार कर पुनीदवती ने कैद्योय की पहली धीर पर काम रना। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार लड़की बड़ी धीर छपानी हो गयी। उस पर घर से बाहर न जाने का प्रतिबन्ध सदा रिया गया। स्वजन उसके विवाह की चिन्ता करने लगे। उन दिनों एक धन्य बन्धरपाह मापपट्टिकम् में निधिपति नामक एक धनार्थ ब्यापारी रहता था। उसने अपने बेटे परमदत्त का पुनीदवती से सम्बन्ध कराने के लिए बड़े-बुढ़ों को कारैकलास भेजा। पुनीदवती के पिता वानदत्त ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। कारैकलास में बहुत धुपधाम से परमदत्त ने पुनीदवती का पाणिग्रहण किया। वानदत्त ने इकती बेटा को विवा करने में अपने को असमर्थ पाया धीर परमदत्त से धर-जमाई बन जाने का अनुरोप किया। परमदत्त कारैकलास में ही रहने लगा। वानदत्त ने बेटा धीर जमाई को रहने के लिए एक महल दे दिया धीर जमाई को अपना प्रलय कारवार बनाने के लिए पर्याप्त धन दधि भी दी।

इस प्रकार पुनीदवती के वैवाहिक जीवन का सकारण्य हुआ। शकुन सभी गुण प्रतीत होते थे। वह अपने पति को धन्य मानती थी उसकी सेवा करती थी। धन्य संस्कारोंवानी स्त्री की भाँति हर तरह से वह उसे धुपी धीर प्रसन्न रखने का यत्न करती थी। लेकिन भयवान् धिक् के प्रति पुनीदवती की प्रयास भक्ति को शास्त्रकाल में ही प्ररफुटित हो चुकी थी निरन्तर बढ़ती जाती गयी।

जब कमी वैन सामु-सन्त उसके द्वार पर घाते वह जतका यडा और सम्मान-  
पूवक स्वापत करती। उन्हें दान-बलिषा देती। सामुघों की संमत में उसकी धामिन-  
बुति और भी प्रबल हो गयी। परमदत्त का धर्म-कर्म में धमिक विरवास नहीं था,  
लेकिन उन्होंने पुनीदवती की धामिक बुति में कमी बाधा नहीं डाली।

एक दिन परमदत्त अपनी दुकान पर बैठे हुए थे। कुछ मोग जतसे मिलने  
घाये और उन्हेंमे परमदत्त को भी बहुत ही स्वादिष्ट धाम भेट किये। परमदत्त  
ने लौकर के हाथ ने धाम भर मित्रता किये। पुनीदवती ने उन्हें संमान कर रख  
दिया। सोड़ी देर बाद एक बूढ वैन सामु पुनीदवती के द्वार पर घाया। वह  
बहुत ही बका हुमा और कई दिनों का मूषा दील पड़ता था। पुनीदवती ने  
गुरलत उस सामु को भोजन कराने की ब्यवस्था की। उसने सामु को हाथ-पाँव  
धोने के लिए बल दिया और पाठसी बिछा दी। लेकिन उस समय रवोई में केवस  
भात पका हुमा था कोई धाक रैपार नहीं था। तो पुनीदवती ने भात परसेव  
दिया और पति के भेजे हुए दो धामों में से एक सामु की पाठसी में रख दिया।  
भोजन और गृहमन्त्री के स्वागत-सत्कार से सामु बहुत ही सन्तुष्ट हुमा। उसने  
पुनीदवती को बन्धवार दिया और धासीर्षभन कह कर जाता गया।

दोपहर में परमदत्त भोजन करने के लिए घर घाये। धार्य और धात्ताकारी-  
पत्नी पुनीदवती ने उनके लिए भात और नाना प्रकार के सुस्वातु ध्वंजन परसेवे  
और बका हुमा धाम भी पाठसी में रख दिया। धाम परमदत्त को इतना मीठा  
और धम्य सया कि वह गुरलत मँग कर बैठ कि बूघरा धाम भी लापो।  
पुनीदवती एक क्षण किर्कटम्य-बिभूड हुई बैठी रही। पति की धात्ता का पासत  
करने के लिए वह उठी और वहाँ गयी जहाँ धाम रखे हुए थे। उसने भयवान्  
धिन का स्मरण किया और कहा—“हे प्रमो! मुझे बचाइये और एक धाम  
वहाँ साकर रख दीजिये।” इतनी प्रार्थना करनी थी कि उसने देखा धामने एक  
बहुत धम्य धाम रखा हुमा है। उसने बिना कुछ कहे भात मत से वह  
धाम पति की पाठसी में रख दिया। परमदत्त न धाम खाया और बकिट-से  
रह गये। कहते सने—“वह तो पहले धाम से भी कहीं धमिक स्वादिष्ट है। ऐंसा  
धाम तो न कमी देखा न कमी लाया। वह तो पिछले धाम के धावनाता  
धाम ही ही नहीं सकता। बचापो तुमने यह कहाँ पाया ?  
पुनीदवती धम्यंजस में पड़ गयी और उसका बरीर भरपचने लगा। एक धोर  
मक्त होने के भाते उसका यह कर्तम्य था कि वैन कृपा से जो धमकार हुमा  
है उसका भेद किसी को न बताये। बूघरी और पाठिवल्य का यह धाघह था कि

पति की आज्ञा का पालन करे और जो सूचना उसके पति ने माँगी है वह उसे दे। प्राप्त में उसने यह निश्चय किया कि पाठिश्रम धर्म निम्ना ही उसका पक्ष करता है। अतएव उसने अपने प्रभु से क्षमा माँगा करने के बाद पति को घाटी पटना बता दी। परमदत्त यह वृत्तान्त सुन कर ठग्ये से रह गये लेकिन धैर्यवास उनके मन में भर करने तथा और वह कह बैठे—“यदि वास्तव में भगवान् शिव की तुम पर ऐसी कृपा है तो बीसा ही एक और ग्राम प्राप्त कर दिखानो।” अब पुनीवती क्या करे? मन को स्थिर किया कुछ दूर दूर कर लड़ी हो गयी और आकाश को सम्बोधित करके बोली— हे प्रभो! बीसा ही एक और फस भेज दो अल्पया तुम्हारी यह भक्तिगत पति के सामने झूठी सिद्ध हो जाएगी। कहना था कि फिर बीसा ही एक और फस उसके हाथ में आ गया। ग्राम पति को दिया तो वह धारण्यवर्धित रह सके पर अब वह ग्राम उनके हाथ में आकर गायब हो गया तो वह बहुत चकरा गये।

कुछ देर तक उसके मूँह से शोक नहीं फूटा। वह समझ सके कि उनकी पुनीवती कोई धार्मिक स्त्री नहीं है। वह कोई बेबी है जिसने मानवीय शोका धारण कर रखा है। उसे पत्नी के रूप में अपने साथ रखना ठीक नहीं। तो परमदत्त कारैकवास छोड़ कर जाने की तैयारी करने सके और पुनीवती को अपनी पत्नी नहीं कोई बेबी मानने सके।

प्राचीन तमिस्राम में कई व्यापारी अपने जहाज लेकर समुद्रपार के देशों में व्यापार करने जाते थे। परमदत्त ने भी कुछ व्यापारी जहाज बनवाने और अपना नाम लेकर दूर देशों की गया। वहाँ प्रासा मुताफा बना कर वह स्वदेश सीटा लेकिन कारैकवास या नागपट्टिनम न आकर वह मगुरई में उतरा जो पाण्ड्य नर्यों की राजधानी थी। वह नहीं आकर बस गया और उसने किसी को यह नहीं बताया कि वह कारैकवास का है तथा पुनीवती से उसका विवाह हो चुका है। यही नहीं उसने मगुरई में एक कन्या से विवाह भी कर लिया और इसकी सब कारैकवास नहीं पहुँचने दी। अन्तर अपनी दूसरी पत्नी से उसे एक लड़की हुई। परमदत्त हर दोष अपनी पहली पत्नी पुनीवती का बेबी के रूप में पूजन किया करता था। उसने अपनी कन्या का नाम अज्ञात पुनीवती ही रखा। उक्त पुनीवती इस घरे इतिहास से अज्ञात अपनी गृहस्त्री बसाये जा रही थी और पतिव्रत धर्म का निर्वाह कर रही थी।

कोई भी बात अधिक समय तक छिपी नहीं रह सकती। ता पुनीवती के सम्बन्धियों को अन्ततः यह पता चस ही गया कि परमदत्त ने मगुरई में दूसरा

बिवाह करके नवी गृहस्त्री बना ली है। इस समाचार की पुष्टि करने के बाद पुनीदवती के सम्बन्धी पुनीदवती को एक सुन्दर पासकी में बैठा कर छुड़र बसे हुए नगर मधुरई से गये। मधुरई पहुँच कर उन्होंने परमवत्त को पुनीदवती के भाषमम की सूचना दी। पहले तो परमवत्त कुछ खबरपय सोचिन् फिर स्वस्म होकर उन्होंने पुनीदवती का स्वापव किया अपनी नवी पत्नी और कन्या का परिषय दिया और फिर पुनीदवती को साष्टांग प्रणाम किया। परमवत्त की बूधरी पत्नी ने भी पुनीदवती के पाँव छुये। इस रहस्यमय ध्यापार से पुनीदवती और उसके सम्बन्धी घटिघय बन्धि हुए। परमवत्त बोले—“देवी आपकी कृपा से मैं यहाँ रह रहा हूँ और मैंने अपनी बन्धी का नाम आपके नाम पर ही रखा है। सम्बन्धियों ने कहा—“आपने अपनी पत्नी के पाँव छुये यह सीमा कृष्ण समझ में नहीं आयी।” परमवत्त ने स्पष्ट और मुझ स्वर में उत्तर दिया—“पुनीदवतीजी कोई साधारण स्त्री नहीं है। इसके देवी स्वस्म का ज्ञान होने पर ही मैंने इन्हें अपनी पत्नी समझना छोड़ दिया है। मैं इन्हें धर्या और भक्ति का पाप समझता हूँ और इसी धर्यावत्त मैंने अपनी सड़की का नाम इनके नाम पर रखा है। मैंने इनके भीषरधों में समन किया आप भी बैसा ही करें।”

बहु मुनकर सम्बन्धीयक स्तम्भ रह गए। पुनीदवती की भी विचित्र दसा हुई। उसने निपुरारि महादेव का स्मरण किया और भाव-विह्वल होकर धर्म्यन से प्रार्थना के धर्य करे—“प्रभो! आप मेरे पति का साधारण देख ही रहे हैं। मैं सब क्या कर सकती हूँ। इस वेह को इस क्य-सौम्यर्म को मैं पति के लिए ही बनाये हुए थी। आप मुझे देह-हीन रूप-सौम्यर्महीन करके मुक्ति दिना बीजिय। मैं प्रेठ-ध्याया बन्नी और काया के पित्ररे से मुक्त होकर दिन-रत आपके भीषरधों के धनुषण में सीम रहूँ।” इस प्रकार वह भक्ति-मान में डूबी लड़ी रही और कैसाधपति ने प्रसादाभिमुन उसकी पाचना स्वीकार कर ली। पुनीदवती की काया बवस गयी। उसकी मुन्कर देहवस्त्री जो धात्मा के सौम्यर्म से और प्रदीप्य हो उठी थी सहासा कुम्हला उठी और एक प्रेठ-ध्यायावत् कंकाम बच रहा। वह इतनी कुरूप हो गयी कि देखनेवालों को भय लगने लगा। इन्द्र धादि देव-धार्थों ने उस पर लम्बत बन के पुण्यों की वर्षा की और देवी संपीठबाध में गुनाबमान हो उठा। देव-किन्नर धादि स्वर्ग के निवासी पाङ्गावित हो उठे। इषर पुनीदवती में यह धामत्कारिक परिवर्तन होता देख सम्बन्धीयक धमपीठ हो गये और डरते-डरते प्रणाम करके वहाँ से भाग लड़े हुए।

फिर कारकनाम धर्म्यार के बीबन का एक नया ध्याय शुक कृपा। उन्होंने



भगवान् शिव की प्रवृत्ति में काव्य-रचना आरम्भ की और अनुभव किया कि त्रिपुरारि महादेव का बरह हस्त उन पर बना हुआ है। धारणा है कि इस चरम अवस्था में उन्होंने तमिस्र में गीतों की रचना की। इनके दो संकलन हैं— 'भरपुरा लिखन्तावि' जिसमें एक सौ एक पद्य हैं और दूसरा 'लिख इरट्टै मजिमाने' जिसमें बीस पद्य हैं।

पुनीवती की देह का प्रेत-छाया में बदल जाना सांसारिक सुखों की विनाशिता का प्रतीक बन गया। वह मोह माया पूर्णतया भुनक गयी और कैलाश पर्वत पर आसीन भगवान् शिव के दर्शन की अभिमाया उनके मतप्राप्त पर हावी हो गयी। वह उत्तर विद्या में कैलाश-यात्रा के लिए भ्रम पड़ी। रास्ते में जो भी श्रेय मिलते उन्हें देखकर डर जात। लेकिन इससे वह बरा भी विचलित नहीं हुई। उन्होंने कहा—“विद्याल विष्व ने घट्ट कोनो से एकचित्त बनता वो बिरन्तन सरय से घनमित्र है के सम्मुख मैं किष्ठी भी रूप में प्रकट हूँ तो कोई घन्तर नहीं पड़ता यदि सबके दाता भगवान् शिव मुझे अपने भक्तों में मान लें।”

कारिकात्म धर्मीयार जब कैलाश पर्वत की चढ़ाई कर रही थी तो उनकी अन्तरात्मा में एक अशुभ भावना घायी कि उन्हें इस पर्वत पर पाँवों से नहीं प्रपितु सिर के बस चढ़ना चाहिए। कई लेखकों के मतानुसार उन्होंने केवल इस प्रकार का जीवन-क्रम अपनाया जो सांसारिक व्यवहार और रीतियों से सर्वथा विपरीत है किन्तु धर्म विज्ञान इससे सहमत नहीं। वे इसका धार्मिक धर्म समझे हैं कि बिदेवर के भक्तों से सभी कुछ सम्भव है। वह अपने इच्छक के लिए कुछ भी कर सकते हैं। उनका मन मस्तिष्क और धरिरे आराम्य के धाधिपत्य में है। सिद्धांत अपना लक्ष्य कुछ भी हों धर्मीयार कैलाश पर्वत की चोटी पर स्थित अपने इष्टदेव के निवासस्थान पर पहुँच गयी।

धर्मीयार के इष्टदेव शिव की धमयदायिनी प्रर्षायिनी उमा की वृष्टि जब इस भक्तिनी की प्रेत-छाया पर गयी तो उन्होंने अपने महेश्वर को सम्बोधित कर कहा—“स्वामिन् ! देखो तुम्हारे प्रति इस ध्यात्मा का कितना आसीक्तिक प्रेम है जो उसकी कंकाल काया से अभिभक्त हो रहा है।” महेश्वर बोले—“प्रिय ! जानती हो यह काया जो प्रतिक्षण हमारी ओर बहती घा रही है वह वस्तुतः मेरी माँ है। उसका वर्तमान उपासक रूप केवलमात्र मरे प्रति की गयी सच्ची लयन और अकन्व भक्ति का परिणाम है जो मैंने उसकी भक्ति से किमोर होकर प्रदान किया था।” जब धर्मीयार अपने आराम्य शिव के सम्मुख उपस्थित हुई तो शिव ने उसे “जननी” कहकर सम्बोधित किया। भावनाओं से कष्टपरह

धर्मधार धिब को 'पिता' कहकर धाराम्य क चरणों से लिपट गयीं । तदुपरान्त धिब ने अपनी भक्तिन से उसकी मनोकामना जाननी चाही । धर्मधार ने जा उत्तर दिया वह कवि सत्कृतार की धाराम्यिनोरक कविता में अंकित है । उस धर्मधार ने सर्वप्रथम अपने इष्टदेव के प्रति धनस्त धर्मि धीर सदाधिबम् प्रेम की याचना की और फिर इस प्रकार स्तुति की—

‘मुझे जन्म लेने की याचना से मुक्ति हो किन्तु यदि आपकी अनुकम्पा यही है कि मैं पुन जन्म मुं तो यह बगदाग हो कि आपकी सुधि सबैव बनी रहे । हे धर्मदेव ! मुझे एक बरदान और प्रदान करो कि जब आप ताम्ब नृत्य करें तो मैं आपसे चरणों के निकट सड़ी उसी देख सकूँ ।

इस प्रार्थना से प्रसन्न धिब ने बरदान दिया कि वह तिस्वारंगगाडु स्वान पर उनके धाराम्य नृत्य को धाराम्य-निमोर होकर देखेगी और उनकी स्तुति करेगी । वह धासीर्वाद पाकर धर्मधार प्रफुल्लित हो उठीं और उनके धाराम्य की सीमा न रही । वह तत्काल केसास से समितनाड लीट धायी और उन्होंने सीमे तिस्वारंगगाडु की ओर कूच किया । वहाँ वह धिग के बल प्रविष्ट हुयी । तब से वह निरन्तर वही स्थित गटराम धिब के धाराम्य ताम्ब नृत्य का धवलोत्तन करती रहती हैं । उस पवित्र देव-स्नान पर पहुँचने के पश्चात् धर्मधार ने धाराम्य नृत्य को निहार म्यारह स्तोत्रों की दो काव्य-मासाएँ रची जिनमें तिस्वारंगगाडु में हो रहे धवलात् संकर के विघट गर्तक-रूप का वर्णन है ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि धर्मधार का धाराम्य पति धिबसा संस्तुति और धाराम्यिक काम में उत्तमा समुत्त यहीं या जितनी कि उसकी पत्नी । इन दोनों की तुलना जीवन चरित्र-सेवक ने अपनी बाक्यातुरी से दी है । उसने वहाँ पति की उपमा दीवमय बलिष्ठ नृपत से दी है, वहाँ पत्नी की उपमा उस कोमल कान्त कमेवठ अमुरी से दी है जो चाहे तो अपने पत्नी की सुधरता प्रबधित करे या न कर । ऐसी विधमता में भी धर्मधार ने अपने पति की सदैव सम्मान प्रदान कर कर्तव्य-परायणा पत्नी की तरह सेवा की । स्पष्ट है कि धर्मधार एक सुधिसित स्त्री थी जो उच्चकोटि के भक्ति-काव्य की रचना कर सकती थी—उसकी रचनाएँ समित के दीव साहित्य में सम्मिलित करने के योग्य समझी गयीं । तन्त सम्मान तथा धाराम्य तद के धर्म्य सुन्तों ने उनका सम्मान किया है । धाराम्य भी उनकी प्रतिमा दीव मन्त्रियों में धर्म्य १३ नायमार सुन्तों की प्रतिमाओं के साम पायी जाती है ।

उदाहरणतः धरपुर विरूपाक्षि में से कुछ पदों के अर्थ नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

१. मेरे इच्छेव जो मुखमाता वारण्य किये तथा धाग की लपटें हाम में सेकर ताच्छव नृत्य करते हैं, यदि मेरे कष्ट निवारण न करें, मूम पर क्या न दिखायें और मेरा पत्र प्रदर्शन न करें, तौ भी मेरा हृदय उनके प्रगाथ प्रेम और भक्ति से विमूढ नहीं हो सकता।
२. कुछ सोमों के अनुसार मगवान् स्वर्ग में वास करते हैं तां कुछ सोम उन्हें शिकुष्वासी बताते हैं परन्तु मेरे प्राण्य जो ज्ञानेश्वर और विप-पान के कारण भीमकण्ठ हैं मेरे हृदय-मध्यम में निवास करते हैं।
३. मेरा ही हृदय पवित्र है मैंने ही जन्म-मरण के बन्धन तोड़े हैं और मेरी तपस्या ही अरिहार्थ और फलीभूत हुई है क्योंकि मैं अपने स्वामी विमोचन की अरुण सेवा में एत हूँ जो वापस्वर धारण किये हुए हैं और विमूर्ति रमाते हैं।
४. मेरे महेश्वर की अनुकम्पा से ही समस्त विश्व धासित है उनकी कृपा से ही प्राणी जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति पाता है। मैं उन्हीं महेश्वर की कृपा से सर्वोच्च वास्तविकता और मूम तत्त्व का अनुभव करती हूँ। अतः संसार की समस्त दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुएँ मेरे लिए इस्ता मस्तक हैं।
५. मेरा ध्यान एक ही ओर केन्द्रित है। मेरा एक ही घटस निश्चय है और मेरे हृदय की एक ही निधि है वह यह कि मैं उन स्वामी की सेविका बनूँ जिनके ललाट पर त्रितीया का अग्रमा विराजमान है जिनकी जटाओं से गंगा प्रवाहित है और जिनके एक हाथ में विमूर्तिपित्त धर्मि है।
६. क्या मैं उन्हें हर नहूँ क्या मैं उन्हें बड़ा कहूँ या इन दोनों न परे ? मैं नहीं जानती कि उनका वास्तविक स्वरूप क्या है ?
७. बही जानता है बही सिखाता है, बही ज्ञानेश्वर है और बही मोक्षिण सता है जिसको जानता समीप है। बही प्रकाश-मुंब धर्मि है बही पुष्पी और प्राकाश है।
८. जो पतानी प्राणी उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते उनका

जपहास करते हैं वे केवल बाह्य धाकार को देखते हैं जिस पर विभूति लगी है और पत्ते में मुष्कमाला है—मागो प्रेत का धाकार ही।

- ९ केवल पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित ज्ञानवासे विद्वान् ही विवाद करते हैं जिनमें धार्मिक धर्मों में निहित मूल सत्य के समझने की क्षमता नहीं है। विरलतन सत्य के लोभी उन्हे मलय के सम्मुख भगवान् स्वयं ही उद्य रूप में प्रकट होते हैं जिसमें उद्यका मलय उसे देखने की विव्वासा रत्तता है।
- १० मेरे परम पिता! मेरी केवल एक ही आकांक्षा और उच्छ्वास है— क्या कभी तुम मुझे उस रहस्य से परिचित करा दोगे—बहु बहु कि मैं उस क्षेत्र को जान सकूँ जहाँ तुम महाप्रलय की निदा में हाव में धमनि पारण किसे ताष्यव मृत्य करते हो।
- ११ विराट् मृत्य में रत तुम्हारे पद-संवासन से पृथ्वी और आकास मल्ट हो जाते हैं, तुम्हारे तिर उठते ही स्वयं का जन्ममा पट जाता है। जब तुम्हारी सुधोमित्त मुबारै मति करती है तो कामदेव काप उठता है। विव्वात विवव का रणमंथ तुम्हारे मृत्य के धार को उठा नहीं सकता।
- १२ हमने मृत्यु पर विजय पायी और तरक से बचे हमने सुभाभूम कर्मों के बन्धन ती तोड़ दाने—यह सब तभी सम्भव हुआ जब हमने अपने धस्तित्व को पूर्वज महेस्वर के पवित्र धरनों में रत कर दिया उन महेस्वर के विभूति अपने तीसरे नेत्र की धमनि से त्रिपुरासुरों के गढ़ों को ही मस्यसात् कर दिया।

परिच्छेद ४

## घाण्डाल

हे भक्तिन तू क्यामा तुलसी-जनित  
भक्तिवाहित मयबत-मली सरेह पवित्रता  
धीर भक्ति की प्रकृति है ।

इतिहास-भारत के ऐतिहासिक नगर मयूरई से पचास मील दूर दक्षिण-पश्चिम दिशा में श्रीबिस्मिपुत्र नामक एक सुन्दर नगरी है। यह नगरी प्राचीनतम सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं से सुसम्पन्न थीर वैष्णव मन्तो की स्मृति को चिरमूलक बनाए रखती है। श्रीबिस्मिपुत्र का सांख्यिक धर्म है बिस्मि का नया मयूर। उस मयरी का अस्तित्व जो भीरु शिकारी सरदारों के दीय थीर पवित्रता पर आधारित है। ये भीरु बिस्मि धीर कन्तन दो सहोदर थे जिन्होंने देवी प्रादेधानुसार भीषण विधे से सतीतुर्षों एवं हिंसक अनुषों के धारास-एक भयानक जंगल को-दो परम श्रेष्ठ वैष्णव सन्तो धीर उनके अनुयायियों के पवित्र धामा में बदल दिया। इस भौतिक क्षेत्र का यह क्पाण्टर धानबासी उस धार्मिक श्रमिती की धनिवार्य पुण्ड्रुमि या जो धारक पवित्रता धीर धन्य प्रेम की मूर्ति सन्त धार्मिक-शासना या जानेबासा या। प्रेम धीर यदा की साभ्रात्री धार्मिक हमारे इस क्षेत्र का विषय है।

मयबान् के परम भक्त जो सर्वत्र धारमा धीर परमात्मा के निम्न म रमे रहते हैं उसी पावन प्रेम के प्रतीक है। वैष्णव मत के अनुसार ये धामबार कहलाते हैं। तमिल भाषा में धामबार का सांख्यिक धर्म है वह प्राची जो सृष्टिकर्ता के धसक्य धुन गुणों के सागर में पहरा पैठ हो। इसी धर्म का समानान्तर स्वीयिम धर्म धार्मिक है धर्मात् वह स्त्री जो भगवद्भक्ति के सागर में पहरा पैठे हा। जहाँ धामबार राज्य मारु सन्तों का बोधक है वहाँ इसी धर्म का समानान्तर धार्मिक धर्म एक ही स्त्री का सूत्रक है (धीर कह है धार्मिक) धत सन्त धार्मिक की धार्मिक महानता स्पष्ट है। धुपाटी धार्मिक की यह महानता देवीयमान गलक की तरह वैवाहिक धार्मिक धार के धार्मिक में धमकती है। धनेक महान् सन्तों की तरह सन्त धार्मिक का इस भौतिक धर्म में प्राधुर्भाव धीर

धर्मशास्त्र एक रहस्यपूर्ण कहानी होती हुए भी ऐतिहासिक तथ्य के निकट धारण है। इतिहासकारों के अनुसार यह सत्य महिला सातवीं शताब्दी में हुई। सन् ७५५ ई. में भी बिस्मिपुत्र के परिवारबन्धु को धर्मशास्त्रिक पिता कहा है ठीक उसी तरह जैसे सीता जनक की पुत्री कहलायी। कहा जाता है कि परिवारबन्धु एक दिन बिष्णुप्रिया कुलसी-वाटिका में हनुमत् प्रभु से मिले थे। प्रकृत्यात् उनकी दृष्टि एक दिव्य सुन्दरी कन्या पर पड़ी जो नवजात शिशु से कुछ बड़ी थी और सुन्दरी के रूप में ही प्रकट हुई। सन्तान-रहित परिवारबन्धु ने इस कन्या को ही प्रकृत उपहार समझ कर मंगल हो उसे पुत्री-रूप में गोद से लिया। इस पुत्री का नाम उसने सोबा रखा जिसका अर्थ है बृष्णी-प्रकृता। जिस तरह एक कन्या जन पाने पर उसकी रक्षा में उत्कर्ष-सकल रक्षा है, उसी तरह परिवारबन्धु ने इस कन्या-रत्न का सातन-सामन बड़े प्रेम और सावधानी से किया। उसकी श्रवणा और वाचिता के अनुरूप उसे उपयुक्त व्यापारिक शिक्षा दी। प्रथमतः वैष्णव धर्मशास्त्रों के अनुसार ईश्वर-प्रकृता पुत्री का विष्णुकीर्ण संस्कार किया।

परिवारबन्धु अपने शाल्यकाल से ही बिष्णुचित्त प्रसिद्ध हो गये थे—अर्थात् जिसका मन और भावना सदा बिष्णु में ही रत रहे। वह जन्मजात योगी थे। अपनी सहज और धर्म-प्रेरणात्मक उपासना-भक्ति के फलस्वरूप उन्होंने धर्म-प्रतिष्ठा और श्रद्धा को मिटाकर केवल मात्र ईश्वर-स्तुति और ईश्वर को प्रसन्न करने का यत्न से लिया था। उनकी विशेष शक्ति और शान्ति इसी में था कि वह अपनी सुन्दर पुत्र-वाटिका बनारस जिले से निकल कर सुन्दर पुत्रों की माता बना कर स्थानीय इष्टदेव को पहुँचा सकें। परिवारबन्धु के मतानुसार मन्दिर में स्थित भगवान् की मूर्ति ही धर्मोत्तम शक्तिशाली परमेश्वर की प्रतीक है। भगवान् इस सीमित रूप में केवल इष्टदेव स्थित है कि उनके अन्त इस प्रतीक के द्वारा संसार में रहते हुए भगवान् के सामर्थ्य का प्रानन्द भोग सकें। कहते हैं कि परिवारबन्धु पूर्णतः तिरस्कर थे किन्तु धर्म-सामर्थ्य शिरस्तन शक्तियों को इस धरतल पर फैलाने के लिए बिष्णु भगवान् ने मालो अपनी शक्तिशाली आधुनिकी से उसे संस्कृत का परिष्कृत और उत्कर्षात्मक का ज्ञानी बना दिया था।

एक बार भगवान् की ऐसी अनुकम्पा हुई कि परिवारबन्धु ने दिव्य दृष्टि पाकर अपने इष्टदेव की धर्मोत्तम शक्तिशाली मूर्ति देखी। उस दिव्य दृष्टि में ऐसा अनुभव पैदा हुआ कि भगवान् का स्वभाव उस प्रेम में हिलोरे भेजे गया और तत्काल ही उसने तमिल भाषा में ऐसे स्तोत्र बनाये जिनमें भगवान् का धर्म-धर्म शक्तिशाली रूप चित्रित हो गया। इस श्रवण के परिणाम के कारण उसका जीवन में एक महत्वपूर्ण

परिवर्तन हो गया। अब वह ब्राम्हण्य के लिए मातृ-स्नेह में मग्न हो गये ठीक उसी प्रकार जैसे यद्योदा मैया बृन्दावन में भगवान् कृष्ण की माँ बनीं। अब खेव जीवन भर वह धार्म्यात्मिक और मानसिक रूप से बृन्दावन में ही मोपान-बालों और मोपियों के साथ रहे और कृष्ण-सीता का घान्त्य लेते रहे।

इसमें तनिक भी प्रतिघयोक्ति और आश्चर्य नहीं कि ऐसे पैतृक संस्कारों को पाकर भस्यायु में ही सन्त धार्म्यात्म की धार्म्यात्मिक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन हुआ हो। धार्म्यात्म का बन्म मञ्जुर मञ्जरीक तुलसी की तरह अनन्य प्रेम का ही फल था और उसका तासन पासन भी ऐसे पाठावरण में हुआ जहाँ कृष्ण के प्रति उसके भक्तों की अगाध प्रेम की स्रिता प्रवाहित रहती। उसके गारी-सुलभ कोमल हृदय ने पत्नी के भावों से विमोर हो मानो उसे कृष्ण की पत्नी ही बना दिया था। अब वह एक घोपी बन कर कृष्ण के साथ धार्म्यात्मिक प्रलय-युग में बँध गयी। बास्वकास से ही वह अपने को मायी कृष्ण-पत्नी मान कर निरन्तर अपने प्रिय के सीत्यर्प-चिन्तन और प्रेम में विमोर रहने लगी। एक दिन कृष्ण-पत्नी बनने की अपनी योग्यता की परीक्षा लेने के लिए उसने पिता-द्वारा संचित पुण्यमाताओं को बारन कर दर्शन में अपने को तिहार और माताओं को उतार कर रत किया। इसके बाद दिन प्रति-दिन धार्म्यात्म यह अभिनय छिप-छिप कर करती और प्रबोध पिता उसकी उतापी हुई माताओं को देवता पर चढ़ा देता। एक दिन पिता ने अकस्मात् धार्म्यात्म को उन माताओं को पहले देखा तो इस अघटायुर्ण कार्य के लिए उसे डाँटा और बेठावनी की कि वह पुन ऐसा न करे। पिता अब सिन्नक रहे थे कि क्या ये माताएँ देवता के योग्य हैं? आश्चर्य की बात है कि भक्त को असमंजस में पाकर भगवान् स्वयं प्रकट हुए और प्रवचन किया कि धार्म्यात्म-द्वारा पवित्र प्रेम से बारन की हुई माताएँ ही उन्हें पहनायी जायें। अपने दिन पिता ने अपनी पुत्री को भगवान् का धारोप स्पष्ट करते हुए कहा कि वह देवता पर चढ़ायी जानेवाली माताएँ पहले स्वयं पहन लिया करें। यह जान कर कि उसकी पुत्री प्रादि सक्ति है जो विद्यात विन्न वा संवासन करती है उसे धार्म्यात्म' नाम से सम्बोधित किया।

धार्म्यात्म जैसे-जैसे बढ़ी होती गयी उसकी बुद्धि मात्र और उपासना में भी बढ़ि होती गयी। अन्ततोपन्था उसमें अपने इष्टदेव की परिणीता बनने की अघम्य इच्छा उन्मत्त हुई। अपने प्रिय के वियोग को सह न सकने के कारण धार्म्यात्म ने उन्हीं पावनों को अपनाया जिनकी विरह-वीकित मोपियों ने भगवान् कृष्ण के वियोग में अपनाया था। अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति से धार्म्यात्म बृन्दावन की पवित्र भूमि और यमुना की मधुर पार में रमने लगी। अपने को कृष्ण-विरह में व्यथित

योनी कल्पित कर वह उसके चिरहु-मान जाती। मार्गशीय क पवित्र मास में नित्य पी छटने से पहले उठकर स्नानादि से त्रिबुज होती। अपने धाराध्य देव को रिश्याने के लिए साज-सिंघार करती और इष्टदेव की चिह्न के लिए भक्त-मण्डली क रूप में बुजुस बना कर सौन्दर्य और परमानन्द के क्षेत्र धाराध्य के मन्दिर की घोर बस देती। वहाँ वह उस अनुपम सौन्दर्य को सुपुष्पावस्था से जगाने और बरवान पाने के लिए परछ<sup>१</sup> बजा-बजाकर उनकी प्रशस्ति करती। मगवान् निद्रा से उठते और भक्तों की मण्डली में अपने धासन पर विराजमान होते और भक्तों की याचना सुनने को उत्सुक रहते किन्तु इस मण्डली की नेनी सत्त धायात की याचना तो किसी साधारण फल और बरवान की कामना से सर्वथा रहित थी। उसकी स्तुति तो अपने धाराध्य देव का प्रेमासीय पाने और केवल मात्र उसी की उपासना में ललत एत रहने की सामर्थ्य को जाना था—वह उपासना जो केवल धाराध्य की प्रत्यक्ष मक्ति और उसी में समा जाने के लिए है क्योंकि वह तो प्रतिप्रेत कल्पन में अपने इष्टदेव से बैक चुकी थी। इस दिव्य रूप का कर्मण अपने अपने धर्म काव्य 'विक्रमावह' में किया। यह काव्य तीस सन्दों का है, जिनमें पाठक को कर्मात्मक उत्कर्ष धार्मिक प्रतीकवाद और बर्मनिष्ठ जन्माद का सुन्दर समुच्चय मिलता है। हर वैष्णव मन्दिर में इस काव्य का प्रतिबिम्ब पाठ होता है।

मीकृष्ण से तादात्म्य प्राप्त करने के लिए सत्त धायात की धार्मिक उद्विगता भावोद्धार और नैसर्गिक भावनाएँ धीरे-धीरे दीव प्रकयोन्माद में परि वर्तित हो बनी थी जिनका बर्धन उसके पवित्र उद्गारों के लङ्घ तिरयोनि में विस्तृत रूप से पाया जाता है। यह पुस्तक भारतकथात्मक है। इस रचना में सत्त धायात के प्रथम-प्रेम की विभिन्न चित्तवृत्तियों की स्पष्ट प्रविब्यक्ति है उसकी कोमल आधारे, प्रथ और आसंकार्य, उसका अनुगत-प्रमुदोष और कामदेव से याचना करता कि वह उसे केवल धाराध्य के लिए तैयार करे, उसका भारत विन्यास और सफलता उसकी वासन क्या और स्वयं में धाराध्य-द्वारा उसके धाय विवाह करने पर धारोपपूर्व धानन्द उपभोगी का प्रेम पुर्ण निरपन्ना अपने प्रियतम को ऐसे सन्धेस को पाया हृदय को भी पिपसा से और प्रियतम की निर्दयता पर कोमल उपासक्य उसे उसके दीवी प्रियतम के सम्मुख से

<sup>१</sup> परछ डोल की तरह का एक बाजा, जिसे बजाकर देवता को निद्रा से जागते हैं।



जाने से इन्कार करने पर अपने सम्बन्धियों के प्रति रोपाबेध और घन्ट में शारीरिक अभय और बेरना बिसका समाजाल तथा समन उन सब परावों से सिपट जाने पर ही सम्मन भा जो उसके धाराध्य देव वीरुप्य को सुसज्जित करते थे ।

सन्त धार्यास के पश्चिम धार्यात्मिक प्रेम क वेगमय प्रवाह और धार्यात्मोत्रति के होते हुए भी बिबाह के उपयुक्त उसरी युवावस्था ने उसके सन्त पिता के मस्तिष्क को अपनी धमूस्य पुत्री के—जो कि सन्तानहीन माता-पिता के घर की केवसमात्र सीमा थी—योज्य सांसारिक बर ईवने की धिन्ता और उत्सुकता से उमुक्त नहीं रखा । एक दिन पुत्री के बिपारों को जानने के लिए पिता ने मञ्जुर कोमल स्वर में पूछा— 'प्रिय पुत्री तुम किसे अपना बर धारण करोगी ? सुबती धार्यास ने कठोर धानी में उत्तर दिया 'यदि मैंने यह सुना होता कि मुझे किसी गद्वर म्यक्ति से बिबाह करना है ता मैं कभी भीवित न रहती । इस पर पिता ने पुन पूछा—'प्रिय पुत्री । तो मैं क्या करूँ ? पुत्री ने बड़े उत्साह और बीरता से उत्तर दिया—'मैं तो केवल अपने धाराध्य देव के साथ बिबाह करूँगी ।' तब पेरियामवार ने भगवान् के सभी स्वरूपों का क्रमश विवरण धार्यम क्रिया और पुत्री की उत्कृष्टा और प्रतिक्रिया देखने लये । पिता ने देखा कि सन्त धार्यास भीरंगम् के धाराध्य श्री रमनायन् (जो दक्षिण-भारत में कावेरी के तट पर स्थित है) का प्रभावता बे रही है । भगवान् के इस स्वरूप की धम्यता ने सन्त धार्यास को कुमारी के स्वाभाविक संयम की परिधि को सीपने पर बिबध कर दिया । तत्पश्चात् कुमारी धार्यास धाराध्य के साथ प्रथम-धम्यन में बैवने के मञ्जुर और मुन्दर स्वप्न देखने लगी ।

किन्तु धासवार का वात्सल्यमय हृदय इस योजना की ध्यात्मकता को सोच कर बेचैन रहता क्योंकि देवी सकृति के धम्मुत चमत्कार के बिना यह सब सम्मन नहीं था । मन्त्र को इस स्थिति में देख कर धार्यास के धापेक्षित बर भगवान् रंजनायन् स्वयं रात्रि में प्रकट हुए और धासवार को धादेश दिया कि वह धिन्ता को त्याग कर धार्यास को मन्दिर में उपस्थित करे जहाँ वह उसे परिधीता के रूप में धवीकार करेंगे । इस देवी धादेशानुसार सन्त धासवार अपनी प्रिय पुत्री को कुसङ्गि के शृंगार में अपने कुञ्ज भक्तों के साथ धाराध्य के समझ से गए । इत दिव्य धाकर्षण-मन्त्र के धवमाकन-भाव से सन्त धार्यास का धमस्त शरीर, धार्या और हृदय धाराध्य के प्रेम में धोत-धीत हा गया । वह सीबे धाराध्य की उस धाकर्षक प्रतिमा के निकट जानर खड़ी हो गयी । एकवित जन-समूह के धारधर्म की सीमा न रही और कुष्ट-जनों के रोद का धाराधार न था जब दिव्य देवी धार्यास की नरवर काया धयुष्य होकर धाराध्य देव में समा पयी । इस धसाधारण घटना से सन्त

सन्त धामदार को देवी बाघी ने सान्त्वना दी—“धो भक्त धब तुम मेरे स्वसुर हा । अपने घर में निवृत्त धाष्ठास-सहित मेरी प्रतिमा पर प्रेम से निरब जयमाता चढ़ाया ।” इस देवी धारेश को पाकर बहु सन्त बाघी मन से अपने लभर को सौट गया । मिस पुत्री के बियोग में अपना एकाकी जीवन उल्लेखनर समता परम्बु उस भक्त ने अपने को पूर्यत देव-इच्छा पर धामित कर दिया । अपने निवास-स्थान को भगवत् भक्ति के स्वस में बदल दी रंगनायन् और देवी धाष्ठास की प्रतिमाएँ स्थापित की और जीवन-पर्यन्त उसकी धाराचना में रूठ रूठा ।

मानव-मंच पर देवी गाविका धाष्ठास का धाम्मात्मिक नाटक इस प्रकार समाप्त हुआ । धाज भी समस्त बलिभ-भारत में बियेयकर देव्यन धनुयामियों के घर-घर में इस पवित्र मान का स्मरण भद्रा-भक्ति के साथ किया जाता है । यह देवी इस धरमस पर धाराय्य के सम्मुख भक्त शरय पूर्ण धाम-समर्पण के सिद्धान्त को पुनर्जीवित करने के लिए धबतरित हुई । यह स्वयं परब्रह्म परमेश्वर के प्रति धन्य भक्ति का जीवित प्रमाण थी । अपने देवी प्रणमी हृदय के स्वाभाविक स्वामी इष्ट को देवी धाष्ठास ने पहले अपने शरीर से छूकर सुगन्धित हुई पुष्प-भालाघों से प्रेमवश किया तत्पश्चात् अपनी भक्ति के उम्माह से प्रोत्-प्रोत् अपने धमर पीठों की भालाघों से बाँधे रखा । देवी प्रेम ही सन्त धाष्ठास का धाहार था । उसका भोजन जलपान जीवन के धम्य साधन और धाम्य सभी कुछ भगवद्भक्ति और प्रेम था । दिन-प्रति-दिन और धम-प्रति-साध इस सन्त महिमा में अपने धाराय्य के प्रति प्रेम और भद्रा-भक्ति बढ़ती और लम्बीर होती मयी और धन्तसोमत्वा उसका कोमल बदन शरीर उस विश्वम्पापी धमर धक्ति में समा गया जिसकी यह धमि ध्यक्ति थी । सन्त धाष्ठास का काव्य उपनिषदों के सम्पूर्ण ज्ञान का प्रतिबिम्ब है और उसकी विशुद्ध पवित्रता उसमें प्रमाणित है । इन कविताघों में उस धबधि का भेधभाव भी उल्लेख नहीं जब इस सन्त महिमा को धाम्मानुमूति नहीं हुई थी । सन्त धाष्ठास का काव्य उपनिषदों के पथम तत्त्व का धार है । उसकी निष्कर्षक निर्मेमता और पवित्रता इस काव्य में प्रतिबिम्बित है जिसमें धाम्मानुमूति से पुर्बद्ध धपराघों भुटिघों और कुकर्मों का संकेत धाना भी नहीं जाता । इस सन्त महिमा का अपने प्रणयी श्ठदेव के सम्मुख धाम-समर्पण इतना पूर्य था कि उसमें ईर्ष्या मनोकामना मानवीय दुर्बलता और धपवित्रता के लिए कोई स्थान ही नहीं रूठा था । यह कृष्ण-प्रेम की प्रज्ज्वलित ज्वाला थी और उसका समस्त जीवन देवी प्रणय के लिए धाकाका का प्रस्फुटन एवं पूर्य था । प्रस्वृत काव्यानुबाध इस देवी का अपने उपाय्य कृष्ण के लिए प्रेमोम्माद का एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

- (१) हे वीर्यमान गोकुल-निवासीनी गोपिकागो,  
 भव यह पुनीत वसुध रजत वीर्य रातों में  
 हम सब पवित्र स्नात भाग रहीं उस घोर  
 बर्षा है तब का सजीला छोटा कुमार  
 यद्योरा का वीर पुत्र ! सुन्दर नेत्रोवाला  
 नील वर्ण कमल लयल शान्त तेजमय मुखादृति  
 वह प्रभु नाट्यमग ! वही है समर्थ केवल  
 आकुल प्राणों की चाह—आनन्द देनेवाला !
- (२) हे विजयी ! सामर्थ्यवान कामदेव ! मैं तुमसे चिन्ती करती हूँ ।  
 मेरी पीड़ा को समझो । छरीर बीज है केवल भरत-म्यस्त है । नेत्र  
 काण्ठि-हीन है । एक समय आहार करती हूँ । हे देव तुमसे केवल  
 एक बात कहनी है । केवल मुझे जीवित रखने के लिए इतना बरदान  
 दे दो कि मैं प्रभु कृष्ण के चरणों का स्पर्श पा सकूँ ।
- (३) हे कोयल ! कितने दिनों से मेरे नेत्रों ने पसलें नहीं झाँकयी ।  
 घपार बेचना के धमाक़े सामर में बैकुण्ठनाथ के बिना मैं मीका-बिहीन  
 हो विपत्ति-ग्रस्त हो रही हूँ । तुम तो जानती हो प्रमियों को पीड़ा  
 देनेवाली बिरह-बेवला को । तुम क्या गरुड़-व्यजाबासे स्वर्ण-वर्ण  
 मेरे प्रभु को नहीं बुला दोगी ?
- (४) हे सद्य मेघ ! मेरी काण्ठि भरत रूप मेरे बलय मन घोर गीर समने  
 मुझे त्याग दिया है ताकि मैं नष्ट हो जाऊँ । छीतल सरलाबासे  
 बैकुण्ठनाथ-निवासी गोविन्द के पवित्र गुणों का गान कर क्या मैं अपने  
 जीवन को नहीं काट सकती ?
- (५) सज्जा सब व्यर्थ है । सभी जान गये हैं । मेरे जीवन की रक्षा के लिए  
 मुझे मेरी पिछपी प्रवन्धा में ले जाने के लिए यदि वीर्य ही कोई  
 उपाय निकालना चाहते हो तो मुझे गोकुल ल चलो ।
- (६) इस संसार में नन्दमोघ के निर्दयी कठोर पुत्र के चरणों से कुचली  
 गई हूँ । सज्जा तो बैठी हूँ । सुष-सुष लो बैठी हूँ । राम-वर्ष गन्ध-पुत्र  
 के चरणों से पुनीत करती की घूस साकर मेरे छरीर पर मतो  
 तपी ही केवल मर प्राण भरे छरीर से विसग नहीं हाने ।

यह सज्जित जीवनी एक बचामी भक्त और कवि श्री देवेन्द्रनाथ सेन की ध्यानमयि के साथ समाप्त की जा सकती है

भावना से मुक्त फिर भी भावना से पूरा हो  
 स्वतः तिस्रुत भरने की भाँति तुम, हे सन्तारमा ।  
 हृदय कं तिम्रुत कोने से स्फटिक-सम  
 पावन प्रेम के माधोनाथ के साथ स्रुट पड़ी हो ।  
 'ह पछी' मक्ति के ऊँचे सिक्कर पर  
 उम्मास के पंख फैमाये  
 दिव्य स्वर्गों में तुम्हारे नीलो का पाम कर  
 परती-भाऊदास सब झूम उठे हैं ।  
 प्रेम यह सौकिरु न था  
 कोई गारी धारमा सौकिरु प्रेम पर  
 इतनी धाकूम न हुई ।  
 तुमने तो स्वयं परमात्मा को बरम किया  
 दृष्टि और बुद्धि से अगम्य ।  
 एहि में रेवि-रश्मि-सम तुम लीन हो यहीं हे दबी ।

## अक्षक महादेवी

इसा भी बारहवीं सताब्दी का मध्य काल कन्नड़ प्रदेश के इतिहास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण युग माना गया है। इसी युग में धार्मिक महापुरुषों और समाज-सुधारकों ने अपने-आपको शैव मत एवं दर्शन को सदैव बनाने में व्यस्त रखा। ऐसे सुधारकों में बछवेस्वर तथा उनके सहयोगी परम अध्यात्मवादी और धर्म-प्रचारक अस्सम प्रभु प्रमुख थे। इन महानुभावों ने शैव मत तथा दर्शन को नया और अनुशासनात्मक स्वरूप दिया। इस काल के प्रकाशवान् गद्यकों में अक्षक महादेवी का नाम अग्रगण्य है। महादेवी ने अपना जीवन 'अरत्न' छति सिग्गे पति' (जिसमें धारात्मक पत्नी-रूप में अपने धारात्म्य शिव की दर्शना करता है) के धार्मिक सिद्धान्तों को अनुकूल ही बताया है। 'अक्षक' कन्नड़ भाषा का एक सम्मान-सूचक शब्द है जो व्यक्ति-विशेष के नाम से पहले प्रयुक्त किया जाता है। अक्षक शब्द का शाब्दिक अर्थ 'बड़ी बहुत' होता है। महादेवी निस्सन्देह धार्मिक रूप से बहुत ऊँची भाव-भूमि पर पहुँच गयी थी और अक्षर ने उनके इस महत्त्व को स्वीकार किया। जैसे जीवन में तो वे शैव शैव महात्म्या परिवार की सबसे छोटी सदस्या थी। महादेवी ने अपना शिव की अग्रिम भक्ति और एकत्री उपासना को ही महत्त्व दिया। इसके हिंदू वे राजमहलों की गुल-सम्पदा का दुर्ग पारिवारिक बन्धनों को छोड़ प्रभु की आज्ञा में बर-बर सटकती रहीं। धारात्म्य की खोज में अटकने वाली इत वियोगिनी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु धर्मतामत्वा उन्हें अपना सब्य मिस ही गया।

१ शैवमत के ग्रन्थों में अरत्न, माहेस्वर और भक्त आदि शब्द धार्मिक महत्त्व के परिचामक हैं। संक्षेप में भक्त का अर्थ है शिव-भक्त या शिवमतावसम्बी। माहेस्वर इससे ऊँच होते हैं। इनकी अज्ञा अगाध होती है। वे इत सम्पन्न में एक विशेष शक्ति भी ग्रहण करते हैं। इन सभी से बहुत ऊँचे शरणागत (अरत्न) होते हैं जो मनुष्यता का अन्त अपने-आपको भयान् शिव की सेवा में अर्पित कर देते हैं।

२ 'सित्त' अर्थात् शिवलिंग या शिव की मूर्ति। यह शब्द शिव का पर्यायवाची है।

अपनी अनुभूति की कल्पमाटीत अभिव्यक्ति उनकी विशेषता थी। धानेबासी पीढी के लिए निजी अनुभवों पर आधारित उनकी उक्तियाँ कन्नड़ भाषा के मयात्मक गद्य में 'बचन' के नाम से सुरक्षित हैं। इस प्रकार रचनाओं का बीरवीर मतात्मकम्बियों-द्वारा बहुत अधिक प्रचार हुआ। महासाहित्य कन्नड़ भाषा की लोकप्रिय निधि है। कन्नड़ में 'बचन' लिखनेवालों की संख्या बहुत है। प्राचीन प्रबंधक और आधुनिक आलोचक दोनों ही ऐसे लेखकों में महादेवी को अग्रगण्य मानते हैं। मावों की महाराई और अथन अनुभूति महारावी के 'बचनों' की विशेषता है। इन उक्तियों<sup>१</sup> के आधार पर महादेवी के आध्यात्मिक जीवन और तप की एक झलकी देखने को मिलती है। महादेवी 'उद्धृष्टि' नगर में रहनेवासे ही 'हम्मति'<sup>२</sup> की सन्तान थीं।

नाम का एक राजा इस नगर में राज्य करता था। महादेवी जब सयानी हुईं तो उनकी सुन्दरता अद्वितीय रूप से मिलती। एक बार राजकुमार कौशिक व्यायाम-स्वस से हाथी पर चढ़ कर महल को लौट रहा था। उसकी दृष्टि अचानक अपने द्वार पर बैठी महादेवी पर पड़ी। कौशिक तत्काल ही महादेवी के अपूर्व सौन्दर्य पर आश्चर्य हा गया। वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाया। हाथी रोक लिया गया। उसके पीछे चलनेवासा बुलुस भी रुक गया। महादेवी जो भक्त एक आशोक-सी राजसी ठाट बाट बैस रही थीं, वह जान गयीं कि राजकुमार कौशिक की नजर उन्हीं पर है। वह बुरत चर में घुस गयी। कौशिक का मन उसके आगे में न था। ऐसे समय उसके मन्त्रियों ने उसकी सुविधा भी और जैसे-तैसे उसे राजमहल तक ले गये। लेकिन राजकुमार महादेवी पर बहुत अधिक आसक्त हो गया था। मन्त्रियों को उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर महादेवी के पिता के पास जाने पर विवश होना पड़ा। उन्होंने कौशिक की महादेवी के प्रति आसक्ति का विषय कर्णज किया। यही नहीं उन्होंने महादेवी के

१ 'धोपांग त्रिविधि' नामक एक पुस्तक भी अथक महादेवी-द्वारा लिखी बतायी जाती है। इस पुस्तक में तीन पंक्तियों-नामसे ६७ सरस पर है जिसमें सार्केतिक भाषा के प्रयोग-द्वारा आध्यात्मिक विकास की प्रथम स्थिति विख्यायी गयी है।

२ इतिहर ने, जिनकी रचना 'महादेवी की कहानी की अचरेखा' का संक्षिप्त रूप हमने यहाँ दिया है इसमें महादेवी के मत्ता-पिता का नाम शिवमक्त और सिब मक्ता दिया है। आगरस के अनुसार उनका नाम निर्मल और सुमती था किन्तु निरवयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि उनके मूल नाम यही थे।

पिता को दमनाया भी कि राजकुमार की धात्रा न मानत पर छोटे-बड़े सभी को कठोर दण्ड मिलता है। महादेवी के माता-पिता सीधे-सारे धीर भीर स्वभाव के थे। उन्होंने महादेवी से धनुराज किया कि वह राजकुमार से विवाह कर के धीर उसकी धन-सम्पदा की स्वामिनी बन जाये। परन्तु राजकुमार धीर नहीं था। किसी भवि (जो धीर न हो) से विवाह करने के प्रस्ताव को महादेवी ने दही दृढ़ता से ठुकरा दिया।

बचपन से ही महादेवी 'चेन्न मस्मिकार्जुन' की उपासक थी। जनता धाराध्य ही उनके हृदय का एकमात्र स्वामी था। इसलिए वह किसी ससारी पति के साथ म्याह रवाने के पक्ष में नहीं थीं। कौन जाने शायद विवाह के लिए विवश बिन्य जाने पर ही उन्होंने नीचे लिखे बचन<sup>१</sup> रचे थे—

‘ओ माँ ! मेरा स्नेह समर्पित उस धनुषम का  
बिसका कमी नहीं होता दाम ।  
बिसकी धाकृति सुनी न देती  
धीर कि बिसको नहीं मृत्यु का किभिव् भी मय ॥

‘ओ माँ ! मेरा स्नेह समर्पित उस धनुषम को  
बिसका जप ने धादि मध्य धनसान न जाना  
धंग रंग धाकार सदा से रहा धजाना ॥

‘ओ माँ ! मेरा स्नेह समर्पित उस धनुषम को  
को कि कहाता धादि धजम्मा  
धय उसने किन्तने बब माना ॥

मेरा उस प्रियतम से स्नेह कि बिसका कोई  
धब तक हमने कुन कुटुम्ब परिवार न जाना ।  
बेरा नहीं है ऐसा कोई जहाँ रहे वह

धीर नहीं धामन्त नृपति को<sup>२</sup> भी उसका  
वह चेन्न मस्मिकार्जुन ।

सुन्दरता का महा उदधि है ।

मेरा पति वह मेरा पति है ।

१ धारेवी के माध्यम से हुए इत भावानुसार में मूस बचन का-सा साहित्य साना कठिन कार्य है। मूस के रामान तुज्जान्त पदावली धीर भावों की मीतिरता नहीं धा पायी हैं ।

भाग सगा वो ऐसे पति को  
त्रिसका भय होगा अपना जो  
काम-कर्मल बन मिट जाएगा ॥”

ऐसी भावना रखनेवासी महादेवी कौशिक से विवाह करने कर सकती थी  
विशेष कर जब वह पूर्ण रूपेण भक्ति वा ।  
हरिहर के प्रभुसार कौशिक के द्वारों में सीट कर राजा से अपनी असफलता की

कहानी कही । उन्होंने कहा कि महादेवी सांसारिक सुख-सम्पदा की भूखी नहीं  
है । वह तो अपने धाराप्य सिख की धाराधना में मगन है । इसीलिए वह किसी  
से भी चाहे वह शिवभक्त हो अथवा भवि विवाह नहीं करेगी । इस समाचार  
ने कौशिक की कामाग्नि को घोर भी प्रज्वलित किया । उसने अपने मन्त्रियों को  
प्रावेश दिया “जैसे भी हो समझा-बुझा कर अथवा बल प्रयोप-शाय उसे (महादेवी  
को) माया जाये । जो कुछ भी उसकी माँग हो उसकी पूर्ति के लिए उसे बचन दे  
दो । परन्तु उसे साना अनिवार्य है ।” राजकुमार के मन्त्री महादेवी के माता-पिता  
से पुन मिसे । उन्होंने बोधित किया कि राजकुमार की धामा से महादेवी  
के माता-पिता मार डामे जाएँगे यदि वे अपनी कन्या का विवाह राजकुमार से  
नहीं करने । मन्त्रियों ने बृह दम्पति को समझाया कि वे राजकुमार को अपनी  
कन्या दान कर सुख-सम्पत्ति का भोग क्यों नहीं करते । यह धमकी बड़े माता-पिता  
को डराने के लिए पर्यन्त थी । उनके पैरों से परती खिसक गयी । उनकी प्राणों  
से पानी बहने लगा । उन्होंने कहा ‘बेटी! तुम्हारा हठ हम बृह दम्पति को क्रूर  
मृत्यु दिसा रहा है । तुम्हारी भक्ति भी अमोक्षी है । क्या तुम नहीं जानती कि  
पहले भी परम भक्ति शिव-भक्त महिमाओं को ‘भक्ति’ के साथ विवाह-बन्धन  
में बँधना पड़ा है ? धांधिर तुम हूँ इस भाँति क्रूर मृत्यु के हवासे क्यों बन  
रही हो ? बेटी नहीं करो जो अन्य लड़कियाँ करती आयी है । राजकुमार  
कौशिक को अपना पति स्वीकार कर लो ।”

मह कपन महादेवी को अपरत्यासित सगा । यदि केवल महादेवी के निजी  
प्राणों की समस्या होती ता वह अन्तिम क्षणों तक अपनी बात पर  
डटी रहती परन्तु उन्हें अपने माता-पिता के प्राणों की रक्षा करना अनिवार्य  
सगा । शिव-भक्त माता-पिता की रक्षा के लिए उन्होंने बह निरवध किया  
जो सायद बह अपने लिए कभी न करतीं । उन्हें एक पुत्रने सन्त की कहावत याद  
घायी हूँ किसी भी मृत्यु पर शिव भक्त की रक्षा करनी चाहिए । किसी भी विपत्ति  
घोर मातना को मह बन धरमायत की रक्षा करनी चाहिए । इस प्रकार



अपने दुःख निश्चय पर प्राकृत महादेवी ने एक महत्तम त्याग—विवाह की स्वीकृति के रूप में—किया। उन्होंने अपने माता-पिता को भान्त किया और राजकुमार के मन्त्रियों से कहा 'मुझे विवाह का प्रस्ताव स्वीकार है किन्तु मरी कुछ शर्तें हैं। मैं अपनी बचिके अनुसार विध-भक्ति में जीन रहूँगी अपनी इच्छा के अनुसार 'माहेस्वरों' का संसंग करूँगी मैं अपनी इच्छानुसार अपने पुत्र की सेवा करूँगी मैं अपनी मर्जी से ही तुम्हारे राजकुमार के साथ रहूँगी और मैं इन शर्तों को तोड़ने का अपराध केवल तीन बार ही क्षमा करूँगी। मन्त्री यह बात प्रसन्नतापूर्वक मान मय। यही नहीं उन्होंने इन शर्तों को एक कागज पर लिख भी लिया। कौशिक ने जब यह सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने महादेवी के माता-पिता को बहुत-सी सम्पत्ति दी तथा उत्सुकता से विवाह के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करने लगा।

वह दिन भी आया जब विवाह के निमित्त सुन्दर और बहुमुख्य बस्त्र पहना कर महादेवी के प्राग-भर्यंग रत्न-जड़ित धानूपको से सजाये जाने लये किन्तु महादेवी के हृदय में दुःख और पन्थाताप छाया हुआ था। उस समय महादेवी की बही दणा भी जो बलिदान के लिए सजा-बजा कर सेजाय जानेवाले पद की होती है; उनकी यह बेचना और भी तीव्र थी क्योंकि वह स्वयं ही उक्त बलिदान के लिए तैयार हुई थी। इस प्रकार एक विवाह बन्धु को धरत्यधिक उत्सुक कर के हाथो निश्चित समय और स्थान पर हुए विवाह के बाद सौंप दिया गया। जब महादेवी कौशिक के राजमहलों में रहने के लिए विवस थी।

उन्हें केवल एक बात का सन्तोष था कि वह सब कुछ मृग जाने की परिस्थिति में रह कर भी कुछ बचा सकी थी। वह नित्यप्रति प्राधिक से प्राधिक समय भगवान् की प्राराधना में बिताती थी। वे अपने हाथों में विद्यासिग रखती और धरत्यधिक तन्मयता से उसको देखती रहती। वे पूजन के उपरान्त विवलिख को हृदय से सयाती और जप्त मस्तिष्काजुन की मक्ति से धोतप्राण गीत याती। वे सदा यही प्राबंधा करती कि हे प्रभु! उद्य रस्मी को काट दे जिसन उस एक 'भक्ति' के बन्धन में बाँध रखा है। इसके उपरान्त वे 'धरनों' को भोजन करातीं उनके साथ सत्यन करतीं तथा मूढ़ धार्म्यात्मिक धनुमर्षों की धर्मिभ्यक्ति करनेवाले पद (बचन) याती। परन्तु ऐसी धानन्वयामक स्थिति प्राधिक समय तक नहीं रहने पाती थी। सूर्यास्त के साथ ही इन पृथ्वी पर तथा उनकी धार्म्यात्मिकी प्रवृत्तियों पर ध-धेरा छा जाता। उन्हें राजकुमार कौशिक बुसा मेजता। बहुत ही विवस होकर वे प्रभु मन्त्रों को बिदा करती तथा क्रोध और मृणा धरानिबामा ताजा पद याती जिसमें उनकी विविध दया का उल्लेख होता था। एक धोरता ममार की साधारण जिन्दगी

वी घोर दूसरी घोर भी प्रभु मक्ति । वह इपर से उपर घाने-जाने के लिए बिबस थी । वे अपम पहले उतार फँकती घोर एक मटमैसी-सी साड़ी पहिन कर बइ ही दुःखी हृदय से बभू के कवा में जाती जहाँ बैठा कौधिक उनकी उत्पुख्या से प्रतीसा करता रहता था ।

राजकुमार कौधिक महादेवी पर इस तरह आसक्त था कि उस इस प्रकार की उपसा नी धरु सगती थी । महादेवी का कौधिक से मिलन उसी प्रकार का था जैसे पारस मणि से लोहे की किसी मूर्ति का स्पर्श हो जाए घोर साहा स्वर्णसम कान्तिवान् हो उठे । धरु महादेवी का एक बचन जिसमें प्रभु की प्राप्ति के लिए उनकी आहुता बहुत स्पष्ट रूप में बिलाबी पड़ती है इस प्रकार है —

मेरे प्रभु ! मुनिए बदि रचि हो  
किन्तु धरुचि हा तो मत्त सुनमा  
मुझे नहीं सन्तोष मिलेगा बिन  
तेरी मुच-परिमा गाये ॥

मेरे प्रभु ! स्वीकार करो वदि रचि हो धरुच  
धरुवा दो ठकरा सह मेरी सापर पूजा  
किन्तु नहीं सन्तोष मिलेगा  
मुझे बिना कर पूजा पाय ॥

मेरे प्रभु ! वो स्नेह-वान  
वदि रचि हो धरुवा त्यागो मुझको  
किन्तु नहीं सन्तोष मुझे बिन  
तुझको नृपस पास में बाँधे ॥

मेरे प्रभु ! बँदा तुम मुझको  
वदि रचि कर हो मुझे बेलना  
किन्तु नहीं सन्तोष मुझे बिन  
तुम्हें निहार नयना साँधे ॥

मेरे स्वामी धो ! चेर मस्तिफाभुन  
मैं हूँ वरी मक्त पुनर्रित  
वह सब कह सुन कर ही मुझको  
मिलता है आनन्द आ-धिक ॥

जहाँ महादेवी का प्रभु के प्रति धार्मिक भयावह वा वहीं कौमिक वा उनके प्रति शांतिपूर्ण। कौमिक ने ही अपनी रति की वस्तु के प्रति इसी प्रकार की प्रतिक्रिया की होगी।

महादेवी इस बेगैस बन्धन का किस प्रकार सहती रही होगी। कवि कहता है कि महादेवी की दशा उसी प्रकार हो सही थी जैसे प्रभु स्वप्न में किसी व्यक्ति की हो जाय। वैदिक कष्ट की निष्क्रिय साक्षी के रूप में उनकी आत्मा थी। उनके शीतलरागत्व की यह विशिष्ट स्थिति थी।

इस प्रकार कुछ समय बीता। एक दिन कुछ माहेश्वर बहुत दूर से राजमहल में आय और महादेवी का दरबार कराया। महादेवी उस समय धारायण कर रही थी। कौमिक ने नौकर को यह कह कर लौटा दिया कि कोई-सा भी दिन छापी नहीं जाता जब इस प्रकार के भक्तपण में आयें। कम से कम एक दिन तो महादेवी को धारायण से रहने दो। यह सुन कर महादेवी जाय गयी। वह भक्त के प्रपण पर कौमिक से बहुत क्रुद्ध हुई तथा जो कुछ हुमा था उस पर पदचालाप कर देने लगी। यह कौमिक का पहला प्रपण था जिसे पदचालाप करने पर महादेवी ने क्षमा कर दिया। इसके तुरन्त बाद ही कौमिक ने दूसरा प्रपण किया। एक दिन प्रातः जब महादेवी विधि-विधान से पवित्र होकर प्रभु की भक्ति में लीन थीं कौमिक कामोत्तेजित होकर उनके महल में आ गया। उसने महादेवी को गन्ध भरकर दिया। वह उनकी प्रत्यक्ष मुखर कामा को देख कर मन्त हो गया। उसे होस न रहा और दौड़ कर उसने महादेवी को अपनी मुखाभा में धीप लिया। महादेवी के धार्मिक चिन्तन और सम्पर्क-स्थापन में विघ्न पड़ा। उन्होंने भूम कर देखा तो कौमिक दिवाली दिया। उन्हें धमका पीड़ा हुई। उन्हें मग माना। उन्हें किसी ने छत्रा भेक दिया हो। उन्होंने प्रत्यक्ष निराशा और शोक में कटु बचन कहे। उमें जो कि 'भक्ति' या शिव धारायण में डूबी हुई महादेवी को छने वा क्या प्रतिकार था? गी यह कौमिक वा दूसरा प्रपण था।

कहा जाता है कि एक अन्य अवसर पर जब महादेवी अपने पति के साथ एकान्त में थीं उनके कुछ ही राजमहल में पधारे। वह उस समय उचित वा-भूया में न थी, किन्तु वह तुरन्त अपने पुरु के शरणा में पाठ जाता चाहती थी। कौमिक को बड़ी शर्म आयी। कोपित हुआ उसने महादेवी के शोक बन्धन भी लीप लिया। उसने कहा—  
"छोड़ो छोड़ो तुम्हारे समाप्त परम भक्त और तपस्विनी को बन्धा की क्या प्रतिकारना है।"

यह घटना उनके सम्बन्ध-विच्छेद का कारण बनी।<sup>1</sup> तीन धरुडाय पुत्रे हा यये। म्हादेवी के प्रति साम्यिक धारणाओं और अपने बन्धन में रहने की बलबली इच्छा तथा यथोचित प्रयत्नों के उपरान्त भी कौशिक-डारा विवाह के नियमों का तीन बार उल्लंघन हुआ। वह म्हादेवी और माहेस्वरो के बीच बाधक बना। उसमें म्हादेवी की सख भाग्यवता से विघ्न शान्त और गृह के चरम-स्पर्श करने के लिए धानुर म्हादेवी को धरुडायित किया। इस प्रकार म्हादेवी को धरुडायी फिर इच्छित स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। वह कर्मम धरुडायी होने में सख सख लेकर कौशिक के महल में चिदा हुई। सम्बन्धिया का मोह धरुडाय दुःख की धरुडायित धरुडाय उनके लिए भूमी कहानी बन गयी थी। नयी-नयी मिली स्वतन्त्रता से वह बहुत अधिक प्रसन्न

<sup>1</sup> धारुड के 'धरुडायित' में कुछ धरुड ही कहा गया है। धारुड के धरुडायित जब म्हादेवी को यह पता चला कि कौशिक उनसे विवाह करना चाहता है तो उन्होंने यह धरुड रकी कि राजकुमार उनका प्रेम-यात्र करने से पूर्व स्वयं उनका सामने धरुडाय ले कि वह उनके धरुडायों को धरुडाय में रखेगा। जब कौशिक ने इस प्रकार की धरुडाय ले ली तो म्हादेवी ने उसकी धरुडाय स्वीकार कर ली और यह धरुडाय महल में चली गयी। वहाँ म्हादेवी ने यह धरुडाय किया कि कौशिक अकल बन धरुडाय पर कौशिक धरुडाय मत्त धरुडायने को धरुडाय म्हादेवी था। इस धरुडाय म्हादेवी ने उसे धरुडाय दिया कि वह कौशिक के साथ म्हादेवी रहेंगी। इस प्रकार म्हादेवी ने कौशिक के धरुडाय से धरुडायित प्राप्त किया और धरुडायने धरुडायने धरुडाय उठार कर कौशिक को वे राजधरुडाय से चली गयी। कौशिक इस धरुडायधरुडाय से स्वतन्त्र रह गया। उसने सोचा म्हादेवी का धरुडायक धरुडाय रहा है, इससे म्हादेवी के प्रति उसकी धरुडायतमक धरुडाय का धरुडाय हो गया और उन्हें धरुडायक धरुडायने का धरुडायक धरुडाय दिया।

म्हादेवी ने कौशिक के साथ धरुडायिक धरुडायन कुछ धरुडायों तक धरुडायित किया था नहीं इस धरुडाय पर कई धरुडाय धरुडाय विवाह हो चुका है। सभी धरुडायों को धरुडाय में रह कर कई धरुडायकों का मत्त है कि धरुडाय की धरुडाय में धरुडाय धरुडाय, जो सखसे धरुडाय के धरुडाय स्वाधरुडायिक है, धरुडायक धरुडाय है। धरुडाय यह धरुडाय धरुडाय में रह लेगी धरुडाय कि मत्त-धरुडाय के धरुडायों को रहने के लिए कौशिक के साथ धरुडाय होकर धरुडाय कर लेने से म्हादेवी की धरुडायधरुडायिक धरुडाय पर धरुडाय म्हादेवी सखता। धरुडाय ने उनके धरुडायधरुडायन की कहानी इसने धरुडाय धरुडाय से धरुडायों को धरुडायधरुडाय है धरुडाय उनका धरुडाय धरुडाय धरुडाय धरुडाय उठा है।

हीं। उन्होंने अपने माता-पिता घोर पुरु से बिदा ली और अकेले ही अपने मगर से रवाना हो गयीं त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति बन कर।

हरिहर के अनुसार महादेवी ने सीधे परमप्रिय जेठ मस्तिष्कार्जुन के निवास वाले पवित्र पर्वत शीरीष की राह ली। बड़ी कठिन यात्रा समाप्त कर वह अपनी यात्रा के सत्य पर पहुँच गयीं। वहाँ वह एकान्त में बैठ प्रभु श्री आराधना में लग गयीं। वह कभी मुझ म बैठती तो कभी किसी जलपाय के किनारे। कभी किसी निकुञ्ज में मिलती तो कभी फूलोंवाले बाग में। हर समय वह भयवान शिव की आराधना में मग्न रहती लेकिन उनके पिछले जीवन की परछाईं यहाँ भी जनका पीछा करती रही। उनके माता-पिता यहाँ धामे। अपनी गुरुकुमार बेटी का इस प्रकार कठोर उपस्था में रत देकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। महादेवी पर उनके समझाने-बुझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। महादेवी ने कहा 'वह कम से कम एक 'महि' के बन्धन से मुक्त है और सब दिग्गज भक्ति कर रही है।' धारत्रय में दूध मिला पिता दुःख-संक्रान्ता महादेवी को झाड़ कर उसे धाम किन्तु महादेवी का मिसनेवाने सांसारिक प्रसोमन अभी पूरे नहीं हुए थे। जब प्रम-बीवाता कीतिक नबे रूप में महादेवी के पास धामा। उसने सोचा कि यदि वह शैवमतावधमिषिया-सा बंस बना कर जावेया तो महादेवी उससे प्रेम करने लगगी। इसलिए वह पवित्र श्वाय की मामा पहन भस्म लगा महादेवी के चरणों में मिर गया और उसन प्राचना की कि वह जब भक्त हो गया है इसलिए महादेवी को उसे क्षमा कर देना चाहिए। यह धनहोती घटना देखकर, हरिहर कहते हैं कि महादेवी ने अपना यह प्रसिद्ध पद (बचन) कहा—

प्रभु । तेरी माया पर है धाम  
 मने बल किये बहु त्यागू ।  
 पुनि-पुनि यह मियटाय ॥  
 योगिन बनी बियोगिन क हिन  
 पूजक हनु पुजारिन ।  
 धर्म-ध्वजा सन्तन की बन गयी  
 नैसर्गिक मत नाबन ॥  
 उँचे पर्वत पर चढ़ बैठी  
 तहँ माया बसि धायी ।

१ यह द्वापानुवार हरिहर-द्वारा प्रस्तुत 'बचन' का अनुवाद मात्र है ।

मिर्ज़न बन में रुहें घरेली ।  
 माया पहुँची चार्ई ॥  
 छाड बली भर-बार मनही ।  
 बगत न छोड़े माच ॥  
 प्रभु ब्रह्मस्मिकार्बुत  
 द्रबहु बया कर माय ।  
 माया धब मोहि रही डरण ॥

महादेवी ने निस्सन्देह माया को जीत लिया था। वे सांसारिक मोह-माया से बहुत ऊँची थी। उन्होंने कौशिक का वास्तनामय दुराग्रह ठकरा दिया कि मन्त्र ब्रह्म में रह कर भी वह महादेवी को प्राप्त नहीं कर सकता। कौशिक ने अन्तिम पत्र से काम लिया। वह बहुमुख्य वस्तुएँ बेट में प्रेषित कर ही ब्रह्मगणों से बासा कि उसकी पत्नी ने क्लेश इसीलिए उने त्यागा था कि वह 'भक्ति' है। धब वह मन्त्र है। धन उसका अनुरोध मान कर मन्त्रपत्र महादेवी को धयने भर सीट जाने के लिए बाध्य करें। महादेवी ने उनकी इन प्रार्थना को उचित मान कर महादेवी को बुला मना। जब दूत महादेवी के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वे ध्यान-मग्न अवस्था में बैठी हैं। उनकी हिम्मत न हुई कि वे महादेवी से कुछ कहें। धन वे सीट धाम। महादेवी स्वयं बहो गए धीर महादेवी को बेलते ही उन्होंने महादेवी की धाम्या लिख महादा को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कौशिक से कहा कि वह सीट धाय क्याकि महादेवी के निर्देश हृदय में उसके लिए कोई स्थान नहीं है।

कुछ दिनों बाद सांसारिक जीवन से महादेवी का मन ऊब गया। उन्होंने धिब ने प्रार्थना की कि वह उन्हें 'भक्ति'-सम्पर्क-प्राप्त तन में छुटकारा दिला दें। उनकी यह प्रार्थना स्वीकार हो गई धीर महादेवी वैबिक धाम्या लेकर ईसाय पहुँची।<sup>1</sup>

कौशिक के बन्धन से मुक्त होकर महादेवी-द्वारा जो गयी धाम्यात्मिक उन्नति के बारे में हरिहर कुछ नहीं कहते। वे बीरशंभू मत के सुधारक बसबे-बर से हुई महादेवी की बेट के बारे में भी कुछ नहीं कहते। इसलिए 'प्रभुत्वपत्नी' धीर 'धूम्य सम्पादन' से सहायता मिलती है। इनके धामार पर धरक महादेवी तर्कप्रपम कस्याम जो कि बसबे-बर का निवास-स्थान था गयी। यह स्थान धरतलम प्रभु का प्रमुख कन्द्र था धीर यहीं से बीरशंभू मत का धाम्योमत बन रहा था। कस्याम से महादेवी धीर्यत गयी। धीर्यत जाने के पुरुष उन्हें कुछ समय धाम्यम धी बिताना पड़ा यह तथ्य महादेवी के बचनों से स्पष्ट होता है।

महादेवी की बीबनी कपटों की यात्रा है। उनकी आत्मा की पुकार को मुझे बिना समार ने उन्हें मयात्मक स्थिति में रहने की सजा सुफतन को बिखर किया। अपने दुःख-विस्वास घसाधारण साहस के बम पर ही महादेवी ने अपने बन्धन काटे। फटार यागताम्यों को मोद कर भी उन्होंने संसार को नहीं कोसा। यही मही संसार के विरोधां और कामाह्वल ने उन्हें बहुमुख्य पिमा प्रदान की। इसके फलस्वरूप महादेवी को पूषरूपेण वतधित्त हाकर विचार करने का घम्मास हो गया। उनका यह बधन वेसिए—

भवन बनावा पर्वत पर ता बन-पशु से डर जाता क्या रे ?  
 धामर के ठट बास किया ती सहर बेख बबराता क्या रे !  
 बीज बनार घटरिया लेपी सार हुमा कुम्हसाता क्या रे !  
 नुटा नुटाई का क्यों माने इस्वत पर इतरता क्या रे !  
 सुत चैत्र मस्तिकार्जुन भय की बाणों पर झूमसाता क्या रे !  
 निर्मस रल तम मव घपन को पीछे का पछताता क्या रे !

आध्यात्मिक ज्ञान में विमा-दर्शन प्राप्त करने के लिए महादेवी कस्याण गयी। बहा बडे-बडे हानी व्यक्तियों को आरभ्य हुमा कि महादेवी ने आध्यात्मिक क्षेत्र में कापी प्रवृत्ति कर सी है। कस्याण में रहनेबास आध्यात्मबादियों के पास महादेवी का सिझाने के लिए कोई विषेय बात नहीं थी। बसबेस्वर ती इस अल्प आयु की सन्त महिमा की आध्यात्मिक सिद्धि से बिज्ञपकरणे प्रभावित हुए थे। धीरा की अपेक्षा इन्हीं से महादेवी अपने आराध्य प्रियतम चैत्र मस्तिकार्जुन की प्राप्ति के लिए उपाय जानने आयी थी। उन्होंने तथा अम्य बयाबुद्ध व्यक्तियों ने महादेवी का आपीर्षा रिषा कि उनसे हुबव म प्रभु का स्नह दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही रहे धीर से परम पर की प्राप्ति करें। यह दुरप बिदा का-ता बुस्य था। ऐसा प्रतीत हाता था मानो मन्तों ने महादेवी का पाबिघरूण संस्कार परम प्रभु सं कर दिया हो और महादेवी अपने पनि के निवास धीरीम का जा रही हा। बिबा सेत समय महादेवी ने सल-जमुशाय को आस्वस्त किया कि वे अपने आध्यात्मिक मन्विर को धां ब न माने रीगी—

करनासागर नुद ने जग्म दिया है मुझको  
 धीर घनकों धरनासत है पापन करत  
 नुपा इति की इति कर रह  
 भाव मरा है धीर और पुन

## पद्म महादेवी

नाम ध्यान का  
 परम धर्म की मधुराई वह  
 मुझे सिखाते ।  
 वह त्रिगुणी प्रभु दे तुमने  
 मुझे जिजाया ।  
 बड़ा बनाया ॥  
 ब्याह बिया फिर योग्य कृत्य से ।  
 प्राण उपस्थित हुए विरार्द्ध-हित तुम सब जो ।  
 मेज रहे हो मुझे प्राण-वत्सल के घर का ।  
 सुनो कि है विश्वास प्रदिय यह  
 प्रियतम की सेवा मैं प्रतिपन्न  
 हे बसवध  
 ममी-माँति मैं नित्य करूँगी ।  
 यह मेरा सीनाम्य कि ब्याही हूँ मैं  
 धी' पति प्रिय श्म मस्मिकार्जुन ।  
 सदा सुरमित बना रहेगा ।  
 धाँच नहीं प्राणी उस पर  
 सेकर यह विदबाध  
 मीट बायें सब गुह्यम  
 बिनको मैं करती प्रणाम  
 हो कर नठ-मस्तक ।

अपने प्रियतम के दर्शन की साक्षात् से महादेवी प्राप्पारिभक वधु के रूप में श्रीरैस  
 पर प्रकृती ही गयीं । उनके प्राप्पारिभक प्रेम की उद्गपन व्यक्त करनेबाने 'बचन'  
 कन्नड़ भाषा के समित गीतों में माने जाते हैं । मिसल की उत्कट इच्छा से प्रभिमूठ  
 वधु प्रभु के प्रति कहती है—

प्राधो प्रियतम !  
 मगा भास पर सुरमित बन्धन

'मात्र' शब्द के कई धर्म हैं । यहाँ इसका अर्थ सम्भवतः अवचेतनावस्था में सुख  
 रूप 'निब' का ध्यान ही है । परमार्थ का प्रयोग अत्यधिक प्राप्पारिभक महत्त्व का  
 चेतक है ।



बस्त्र पहन कर मुन्दर धनुषम  
 धामुषण स सजे-सजाये ।  
 तेरा धाना जीवनदायी  
 इतीतिए मैं पन्थ निहाई  
 उत्सुक होकर मैं ब्रिधाय ॥  
 धाघो प्रियतम !  
 धो बंध मस्तिकार्जुन ।

सौकिक प्रेम-गाथा की नायिका के समान महादेवी को भी हम धार्मिक प्रेम  
 के बिलोम में लक्ष्मण देवते हैं । परम्परागत सीमा में यद्यपि भाव की दृष्टि से परम्परा  
 का कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी महादेवी का निम्नलिखित बचन देखिए—

मेरा बोझिल मन धाटूम है  
 प्राण ! गुना छो  
 मन्थ समीरन प्रियतम सपत्नी मुझको ज्वाला ।  
 प्राण ! भास्कर-सा तपता है तन बिनाम में  
 ऊँचे मम में बमक रहा जो चार निराला !  
 बुंगी-बौकीदार मरीची भटक रही मैं  
 गुनो सहेली !  
 जाघो उम्हें मना कर साघो ब्याकुल हूँ मैं  
 धात्र धकेली !  
 प्रिय श्रेष्ठ मस्तिकार्जुन  
 बठ गया है प्रियतम मेरा ॥

प्रम-तत्त्व की प्रबलता बढ़ी तो मुषि-बुषि को मयी । महादेवी ने बहुत सम  
 पढ़ते यह जान लिया कि प्रमु सर्वभ्यापी है । इतीतिए उम्हें प्रार्थना की कि क  
 कण-कण में दिवायी दें—

यह बन निर्जन रूप तुम्हारा  
 मुन्दर बुरा लड़े जो बन में  
 धपा लेरी—  
 बधों के डगर धी नीचे  
 घूम रहे पदा-मरी लेरे ।

या प्यारा मुखड़ा दिवसा जा  
सकम बिबरन में व्याप्त  
हुदय-यति प्रियतम मेरे  
घो चेत मस्मिकार्जुन !

विषद कल्पना पर आधारित इस प्रार्थना के उपरान्त महादेवी ने अपनी जन्मत  
प्राचीं ने दिवसायी होनेवाले सभी पदाचीं की धाराधना की—

घो चुक ! टें टें करनेवाले  
तुम्हें मिले वे ?  
सहज मुरीमी कोमल ! बोसो  
तुम्हें मिले वे ?  
मधु के हेतु मटकती माझी !  
तुम्हें मिल वे ?  
सरजर ठट के हंस बताधा  
तुम्हें मिले वे ?  
गिरि की मुखा नूरप-गूह जिसका मोर !  
बताधो तुम्हें मिल वे ?  
घरे बताधो मझे बताधो !  
बह चेत मस्मिकार्जुन है  
खिपा कहाँ पर ?

घट में कठोर तपस्या के उपरान्त महादेवी को महत्तम स्वरूप के दर्शन प्राप्त  
हुए । नीचे लिखा हुआ 'बचन' जो कि स्वरूप की भावना को दर्शाता है, इसकी सार्थी  
बोया है—

पाने उस प्रभुवर के दर्शन,  
मैंने छबिपति के सुबोध में !  
बुँबरासे वे केय ममोदर  
माधे पर मभियों का सुन्दर  
मुकुट सुसज्जित  
धीर भी धधरों पर प्रिय मुस्काम रसीसी  
बमक रहे वे मोठी जैसे दन्त—  
पवित्र में !

बीरह भुवन करें धामीकित जिसके ज्योति-नयन  
 प्रति मुत्वर ।  
 पाकर उसका दर्श भाव मे सोचन  
 मुक्त हुए तूज्जा से ।  
 पाये उस महान् के दर्शन  
 जिये महा मानव भजता ॥  
 केवल पति-सम ।  
 उस महान् मुठ  
 प्रभु जेस मस्मिकार्जुन  
 को देखा है  
 धादि सन्नि के सहित  
 मुरक्षित हूँ मैं डगसे ।

यह भी परमेश्वर की उत्कट भव्य रूप में झाँकी परन्तु महादेवी तो इससे भी  
 ऊँची उठ गयी थी । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने उस निरुत्कार से धाष्पा-  
 त्तिक तादात्म्य स्थापित कर लिया था । उस ज्ञान-गिरा-मोदीत की छवि की  
 महादेवी ने धपने इस पुनसिद्ध 'बचन' में धमिभ्यक्ति की प्रौर इसी के साथ हय यह  
 धध्माय सनाप्त करते हैं—

मैंने उसे कहा कब है वह 'मिग' रूप म  
 धधका यह भी वह धनिध उससे रहता है  
 लेकिन फिर भी एक रूप मैं नहीं मानती  
 नहीं चाहती उसकी समठा करो 'मिग' से  
 मैंने उसे कहा कब है वह नहीं धधमा  
 किन्तु नहीं है जगम न मैंने माना पस मर भी  
 मैंने नहीं कहा—यह 'पुम हा धधका मैं हूँ'  
 वह जेस मस्मिकार्जुन मिग-बग मल  
 मुझे नहीं कुछ भी कहना है ।

## लल्लेइवरी अथवा कश्मीर की लाल दीवी

सन्मोहरी जिह्वा लाल बोमीन्वरी मास दीदी अथवा मास बेप भी कहा जाता है इसा की १५वीं सताब्दी के कश्मीर की रहस्यवादी कवयित्री थी। यह धारणा लोकप्रिय की धीर आज भी इनका नाम कश्मीर के पर-पर में सुपरिचित है। अपने देसवासियों की उष्णवासाओं की मूर्ति यह कवयित्री तत्कालीन कश्मीर में प्रकथित भाषात्मक शैव मत की सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता थी। शैव मत वेदान्त के अद्वैत-दर्शन को अपनाता है जिसका सार बाबय है—'अहं ब्रह्मास्मि'। अद्वैत-दर्शन के अनुसार मानवमात्मा उत्कृत परमात्मा का ही अनेक अंग है और सृष्टि के परिवर्तनशील विधान में बड़ी एकमात्र सत्त्व है। वही इस अराधन में परिष्कृत है। अहम् का आध्यय रूप है और उससे परे भी है। इसीलिए वह सर्व व्यापक और अनुमवाची है। वही सन्मोहरी के उपदेशों का मूल विषय है। विविध दृष्टान्तों-द्वारा यह इस विचारधारा को अपने पदों में अभिव्यक्त करती है। उन्होंने एक आचार्य की भाँति किसी मत अथवा सिद्धान्त का विवेचन नहीं किया अथवा किसी दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया अपितु अपनी निजी रहस्यवादी अनुभूतियों की गहराई से अपने विचारों की धिता की है और सब कुछ अपने हृदय की पूर्णता से मुखर हो उठता है। बाकी में बीजमवायिनी शक्ति पूँके उठती है और अल्प समय के पंक्तों पर बूँतों की उड़ानें अग्ने समते हैं। सर रिचर्ड कार्नेक टैम्पल ने अपनी पुस्तक 'द रईस ऑफ लाल द प्रोपेटेस' में पश्चित ध्यान कौल का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। पश्चित ध्यान कौल कहते हैं—'लाल शक्ति अथवा मास वापी—कश्मीरवासियों के कानों के साथ उनके हृदय के तारों को छू लेती है और प्रत्येक उपयुक्त अवसर पर वातावरण में उसके पर नीति-वाक्यों की भाँति उद्भूत किये जाते हैं। मास की वाकियों ने राष्ट्रीय मन्त्रिपत्र को अतना प्रदान की और राष्ट्रीय भाषात्मकता की स्थापना की है। अतक (सर टैम्पल) आगे कहता है—'इन कविताओं में अथवा ही उपसम्बन्ध-योग्य कुछ एसा है जिसमें उन लोगों के मन पर ऐसा गहरा प्रभाव आता है जिन्हें सम्बोधित कर में कविताएँ लिखी गयी हैं।'

मास की बीजम-वाया अलंकारों और उपाख्यानों से आभूत है। सर रिचर्ड

टैम्स की उपयुक्त पुस्तक के प्रतिरिक्त 'रॉयल एथियाटिक सासायटी' ने प्राचीन कश्मीर की इन रहस्यवादी कवयित्री के सम्बन्ध में 'सप्त वाक्यानि धयवा साप्त देव (मयवा सप्त) की बाणी' नाम से एक प्रबन्ध प्रकाशित किया है जिसका सम्पादन धीर अनुबाद सर जॉर्ज ग्रियर्सन धीर डॉ० सिमोन्स बार्ट ने किया है। पश्चिम आन्ध्र कौस ने 'सप्त योगीश्वरी जीवनी धीर बाणी' शीर्षक से एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है जिसका आधार मुख्यतः लोक-गीत धीर लोक-परम्परा है। इस ग्रन्थ सामग्री के प्रतिरिक्त सप्त के सुप्रतिष्ठित व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ग्रन्थ कोई साहित्य उपसम्बन्ध नहीं है। इस स्मृतता के होते हुए भी सप्त का समाया द्वारा शीघ्र प्रकाशित होने से प्रकाश प्रसारित कर रहा है धीर पीढ़ियों से उनकी बाणी लोक-मानस में अज्ञान के साध सुरक्षित रखी गयी है। अनेक धार्मिक प्रयोग एवं प्राचीन छन्द त्रिनका महत्त्व मात्र गुप्त हो चुका है उसकी बाणियां में मात्र भी सुरक्षित है। यद्यपि यह अनुमान सहज ही समाया जा सकता है कि निरन्तर पुनरावृत्ति से उनकी भाषा के स्वरूप में कुछ न कुछ परिवर्तन भी हो चुका होगा। इतिहासज्ञ धीर जीवनी-लेखक इन बातों से असहज न पड़ जाते हैं पर जन-मानस इन स्त्रियों को धार्मिक महत्त्व नहीं देता। बहुत निवेदिता के लक्ष्यो में प्रकट इस सत्य को वह अपनी सहज प्रेरणा से ही ग्रहण कर लेता है—जब वह कहती है—'अन्ततः वे पौराणिक पाषाण क्या हैं? केवल मानवता की रत्न-मेठियां जिनके माध्यम से प्रत्येक पीढ़ी के मनुष्य के स्वप्न प्रेम धीर उल्लासों के रत्न धानेवाणी पीढ़ियों के लिए धनस्वर धीर धमर कोष बन जाते हैं।'<sup>1</sup>

अतः यह उपयुक्त ही होगा कि हम पश्चिम कौस-द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर सप्त के जीवन की एक झलकी प्रस्तुत करें। हम यह निश्चयपूर्वक स्वीकार कर सकते हैं कि सप्त का जीवन-काल १४वीं शताब्दी ही था। फारस के सुबिस्वात सुपी सन्त शीघ्र असी हमदानी १३७६-८० से १३८२-८६ तक कश्मीर की यात्रा पर वह धीर व सप्त के समकालीन थे। इस सम्बन्ध में इस धीर ध्यान देना उचित हो सकता है कि १४वीं धीर १६वीं शताब्दी के बीच भारत में अनेक सुबिस्वात कवि सप्त धार्मिक उपश्रुति धीर रहस्यवादी उत्पन्न हुए जिन्होंने जन-जीवन धीर विचारधारा पर बड़ा महत्त्व प्रभाव डाला। ये अपने समय के जन-नेता थे धीर मात्र तक ही उनकी प्रभाव जन-मानस पर विद्यमान है। १२वीं शताब्दी में उत्पन्न रामानन्द इस परम्परा में सर्वप्रथम थे धीर उनके पश्चात् उत्तर में तुलसीदास

<sup>1</sup> इ बीच प्रॉक इन्डियन साइक

मीराबाई नाटक धीर कबीर बंगाल में शैतन्य बन्धीदास धीर विद्यापति तथा दक्षिण  
 में बल्लभभाचार्य हुए । सल्ल इन सबमें पूर्ववर्ती थीं । यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता  
 कि उनका प्रभाव कस्मीर से साहर भी व्याप्त था प्रववा नहीं ?

सल्ल का बन्ध कस्मीर से चार मील दूर दक्षिण दिशा में पात्रेण के एक कस्मीरी  
 पवित्र परिवार में हुआ था । उनके जन्म के सम्बन्ध में एक ध्वस्त पास्यान  
 प्रचलित है । ऐसा प्रतीत होता है कि अपने पूर्व-जन्म में भी वह कस्मीर में एक  
 स्त्री के रूप में पैदा हुई थी धीर पात्रेण के ही किसी पुत्र से उनका विवाह हुआ  
 था । इस पुत्र से उस जन्म में उन्हें एक पुत्र पैदा हुआ । पुत्र-जन्मोत्सव के म्याह  
 दिन पश्चात् जब कुस-पुरोहित सिद्ध भीकृष्ण बाठ-संस्कार कराने आये तो उन्होंने उससे  
 पूछा— 'इस नवजात बालक का मुझे क्या सम्बन्ध है ?' 'कैसा विचित्र प्रश्न है !

धीर जब पुरोहित ने जिज्ञासा प्रकट की कि यह तुम्हारा कौन है तो उन्होंने कहा  
 कि थोड़ी देर में उनकी (स्त्री) मृत्यु हो जाएगी धीर यह धमक मीन में एक बछेड़ी  
 के रूप में काम लेनी जिसके शरीर पर धमक चिह्न होने धीर तब वह उनके प्रत्य  
 का उत्तर से चलेगी । थोड़ी देर बाद स्त्री की मृत्यु हो गयी धीर पुरोहित निश्चित  
 समय धीर निश्चित स्थान पर बछेड़ी से फिर अपने प्रत्य का उत्तर पूछने गया ।  
 उसे बछेड़ी निम्न गयी पर उस बछेड़ी ने भी उससे वही बात कही । बछेड़ी की धीम्र  
 ही मृत्यु होनेवाली थी धीर उसका धयसा जन्म पिस्से के रूप में था । तब पुरोहित

पिस्से के पास गया । पिस्से ने भी वही उत्तर दिया धीर तत्काल मर गया । पुरोहित  
 इस भाग-दौड़ से रंग घा गया धीर उसने अपनी खोज खोज ली । इस प्रकार एक  
 के पश्चात् एक निरन्तर ध्व पशु-योनि में जन्म मने के पश्चात् उस स्त्री ने सल्ल  
 के रूप में जन्म लिया धीर उसका विवाह उषी पुत्र से हुआ जिसने उसके पिछले  
 मनुष्य-जन्म में उनी के गर्भ से जन्म लिया था । विवाह-संस्कार करानेवाला वही  
 पुरोहित था धीर सल्ल ने विवाह के प्रवसर पर यह भेद बतला दिया । इस समय  
 सल्ल की धामु १२ वर्ष की थी धीर वह बालक पूर्ण मुखा हो चुका था ।

इस धार्लभ्य-जन्मक उपास्यान के पीछे एक शिक्षा छिपी है । सर्वप्रथम इस कथा  
 के द्वारा यह संकट मिसता है कि सल्ल को अपने पूर्व-जन्मों का ज्ञान था जो केवल  
 एक धार्लभ-ज्ञानी के लिए ही सम्भव है । इस कथा की एक धार्मिक पुष्टमूनि  
 भी है जो हिन्दू-धर्म के धनुस्त है, साथ ही वह उस जीवन-रथ का भी समर्पण  
 करती है जिसे सल्ल ने स्वयं अपने जीवन में अपनाया । यह कथा यह बतलाने  
 का प्रयास करती है कि जीवन एक ही धीर मनुष्य धीर पशु-योनि एक-दूसरे से

उससे अधिक निकटता से सम्बन्धित है बिठना कि घृहकारी मनुष्य स्वीकार करता है। चिन्तकों ने इस बार्धनिक सत्य का सदैव व्याख्यान किया है। फिर जिस प्रकार जीवन गतिशील है, उसे देखते हुए इस प्रवाह में सांसारिक तन्त्रे भी स्वामी नहीं है। जीवन सामंथ्ये हुए लोहे पर पड़ी बल की दूब कंघमान खनिक है और माता पिता पुत्र भाई, पत्नी प्रादि समस्त सम्बन्धियों का मिलन पानी पीने के लिए पुच्छ पर इकट्ठे पशुओं के मुख के समान है भवना तबी में बहते हुए सक्की के दुकड़ों का बहाव के फसलकरून एव स्थान पर एकत्रित होने के समान है।<sup>1</sup> ऐसी कथाओं का उर्ध्वीम भस्तिष्क-द्वारा शैथिल्य ब्रह्मेसना का विषय ब्रताने की अपेक्षा प्रस्तुत भेदक को यह उचित और उपयुक्त ही प्रतीत होता है कि भस्त्र-वैधी धाम्प्रात्मिक उन्नति के गिजर तक पतुंभी हुई स्त्री का जन्म जीवन के महान और भ्रुव मूर्खों के चित्रा-डान्ग घोषित किया जाय भसे ही वे किसी पौराणिक धारान का रूप ल भवतरित हों।

भोक्त-मान्यता के अनुसार सस्त्र और उसका पति कभी स्त्री और पुत्र के रूप में साध नहीं रहे। उसके पूर्व-जन्म के पति और इस जन्म के इश्वर ने इसका विवाह कर लिया और घर की नयी स्वामिनी इस पत्नी के कठोर व्यवहार ने उसके जीवन को घोर दुःखदायी और कठोर बना दिया। भस्त्रा भैरव और धाम्नापरता की धारण थीं। उनका व्यवहार परिवार की पुत्रवधू की सोचा के अनुकूल ही विनम्र था। जब भी कश्मीर की बड़ी बावियाँ उन कथाओं और धार्यामिकाओं को सुनाते नहीं धार्याँ विनमें ब्रतया गया है कि किछ प्रवाह सस्त्र ने अपने माय्य क सामनं धान्त भाष से धर्मर्षण किया और कभी चिकारत नहीं की।

यह ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं कि परमात्मा की प्रोब उद्यन कव धारम्भ की। लेकिन हम कल्पना कर सकते हैं कि यह जगकी जन्मजात प्रकृति रही होगी। विवाह और बरेसू जीवन के प्रति जो कुछ शुकाम उनके मन में रखा भी होमा वह उनकी सीतली सास के क्रूर व्यवहार और पति की उपेक्षा से धारम्भ में बही दब गया होगा। एक बार जब उनके इश्वर ने देखा कि सस्त्र की अपर्याप्त भोजन दिया जा रहा है वामी में गोल पत्थर के ऊपर जाबल की कब्र एक हन्की-सी परत थी ता उसने हस्तलेप करना चाहा पर परिणाम यह हुआ कि सीतली सास का सासन उन पर और भी कठोर हो गया।

कहा जाता है कि वह घर में बायह बर्ष रही। धरर उनका विवाह बायह बर्ष की धवस्या में हुआ था तो उम समय वह मुबती ही रही होगी जब उम्हाने धर्म

<sup>1</sup> धाम्प्रात्म रामायण २ ४—२० २६

के प्रति अपने समुदाय और व्यवसाय के बुरे व्यवहार के कारण पर छोड़ा जा  
 और मेरे नाम एक प्रसिद्ध शिव मठ की शिष्या बन गयीं। कुछ मूर्खों के  
 अनुसार यह शिव मठ या सिद्ध धीकठ ही है जो उनके कुल-पुरोहित और  
 उनके पूर्व-जनों से परिचित है। वह पाम्पूर गाँव में निवास करते हैं और कश्मीर  
 में धार्मिक शिव मठ के सम्पादक अनुसूत की शिष्या-परम्परा के अधिकारी माने  
 जाते हैं। कहते हैं सत्य अपने गुरु से प्राये बड़े नहीं और उन्हें तथा प्रतिपक्ष में  
 प्रायः उन्हें पराजित करते लगे। पर उनके उपदेशों का परिणाम यह हुआ कि  
 वह प्राचीन वैदिक युग की प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या मार्गी की भाँति शिव-योगिनी बन  
 गयीं और धर्म-नन्द धर्मशास्त्र में देश भर में बूमने लगी तथा बस्त्रों की परम्परागत मर्यादा  
 को उन्होंने निरासक्ति से ही। इस परिणामस्वरूप वह जिस उपहास की पात्र  
 बनी उससे भी बहु परिचित थी पर सांसारिक धारणा-प्रत्यासोचना न  
 किसी भी प्रकार उनके मानसिक अनुमान को अस्मिर नहीं किया। श्री कौस  
 हम सम्बन्ध में एक बटना का वर्णन करते हैं। एक दिन तब की भाँति बस्त्रों  
 न जब उनका उपहास किया तो एक बस्त्र-ध्यापारी ने उन्हें झपट लिया। सत्य  
 ने ध्यापारी से कुछ कपड़ा माँगा जो उन्होंने दो बराबर के टुकड़ों में बाँट कर एक-  
 एक टुकड़ा दोनों कन्धों पर बाम लिबा और दाहिने से बस नहीं। बायें में जो भी उनका  
 बाबर धर्मशास्त्र निरादर करता तबनुसार वह कपड़े के दोनों टुकड़ों में गँठि लगाती  
 गयीं। धाम का लौटते हुए वह उठी ध्यापारी के पास फिर धर्म और उससे  
 दोनों टुकड़ों का बजान करने के लिए कहा। क्या कि स्वाभाविक दोनों टुकड़ों का  
 बजान बराबर निकला। तब सत्य ने उससे कहा कि प्रसंगा या निष्ठा एक-दूसरे  
 को समुचित करते हैं और दोनों को समान दास्यता भाव से ग्रहण करना चाहिए।  
 इसके परभाव वह अपने शरीर मत्वासेपन में ताकती-माती वेध भर में भ्रमण  
 करने लगीं। उनकी महानता की धर्मस्य कथाएँ जो उनके बारे में भर-भर में कही  
 जाती हैं उस प्रेम की परिचायक हैं जो कश्मीरवासियों के हृदय में उनके लिए  
 पर कर चुकी है। कहा जाता है कि उनका देहान्त काशी बड़ी धर्मशास्त्र में भीनगर  
 से पञ्जीस मीस पश्चिम-पूर्व की ओर बृजविहार नामक स्थान पर ठीक जुमा  
 मस्जिद के बाहर हुआ। जब उन्होंने देह-त्याग तो उनकी धासा प्रकाश की  
 एक किरण की भाँति आकाश में लहरी और विद्युत् हो गयीं (कौस)।  
 'सत्य धासा' पुरानी कश्मीरी की रचना है जो भाषा के रूप में उसके अपने  
 समय से ही धर्म पुरानी है। भारत में मिलित-वर्ग की भाषा 'सत्य' के साथ  
 साथ एक नम-भाषा भी सर्वैक विद्यमान रही और इस प्रकार कश्मीर की



भी अपनी एक बोली थी। इसकी सिधि बेवनागरी का ही अपभ्रंस है और संस्कृत-वर्ण-मात्रा के उच्चारण में उपस्थीय प्रभाव से अपनी पृथक् विशिष्टता प्राप्त कर ली है। कश्मीरी साहित्य अत्यन्त सीमित है और सत्स की बानियाँ इस साहित्य का केवल महत्त्वपूर्ण भाग ही नहीं है अपितु उनकी तुलना किसी भी भाषा के वार्त्तिक और मखि-साहित्य से की जा सकती है।

सत्स अपना उपबेध अपनी धार्मिक अनुभूतियों के व्यास्यन से धारम्भ करती है। वह कहती है —

घाबैसाकूम नेरों में व्यास मरे—

कोजती हूँ दिन रात चहुँ ओर हेरती ।

किया है साक्षात्कार मैंने सत्य का बुड का—

अपने ही भीतर नेत्र सफस हुए ।

सत्स की बानियाँ अनेक स्थानों पर गहन रहस्यमयी हो जाती हैं और योमिनी हाने के माते योग की पारिभाषिक व्याख्या की प्रयोग भी उनके पदों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। उनका कथन है कि ब्रह्म की प्राप्ति केवल योग के अभ्यास से सम्भव नहीं किन्तु इस अभ्यास से साधक को अस्त के निष्पत्त का भाव हो जाता है। तब वह इससे मुक्ति पाने का उपाय खोजता है। अभ्यास की शक्ति से बुद्धि जगत का बोध मष्ट हो जाने पर साधक ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में सहीम व्यक्तित्व की अंततः अन्तिम परम तत्त्व में समा जाती है। इस अवस्था का वर्णन सत्स इस प्रकार करती है —

वहाँ मैं आसम है ब्रह्म पर चिह्न का

न ही प्राधिपत्य है चिह्न-वली शक्ति का ।

केवल कुछ स्वप्न-सा है वहाँ

मामामय पक्ष का अनुसम्भान ॥

ब्रह्म जगत् को केवल एक भ्रम मानते हुए वह अपनी अन्तःस्था के धीचिर का समर्थन इन मन्त्रों में करती है—

हे सत्स ! तुम शून्य करो वायु के बन्ध पहन

हे सत्स ! गापी तुम आकाश का बन्ध पहन

वायु-आकाश—इससे भौटतर अथवार क्या ?

'बन्ध' कहती परम्परा पर उसमें वह पवित्रता कहाँ ?

सत्स के मतानुसार यद्यपि शरीर की ध्यानसकताएँ पूरी होनी चाहिए पर मन केवल ध्यात्म भाव से ही सन्तुष्ट रहे। इच्छाओं की तुलना वह महाजन से करती है और कहती है कि इच्छाओं का दाव यम के पास से नहीं बन सकता। वह सन्तुष्ट प्रात्मा धन्य है जिसे इच्छाकामी महाजन ज्ञान देने से इन्कार कर देता है—

केवल बड़ी ध्यात्मसमय और सात्त्विकान् है  
मिथ्या धाकालाभों से मुक्त जो उठता है  
जहाँ इच्छाओं का कठोर ज्ञान समाप्त हो जाता है  
जहाँ कोई ज्ञान घोष नहीं न कोई ज्ञानबाठा है ॥

एक सच्चे दार्शनिक की भाँति वह गौण सिद्धियों का विरस्कार करती है जो ईश्वर की शोक में सगे साधक के मार्ग में प्रलोभन बन कर आती हैं। वह पूजनी है—

योनी ! धर्मि को धीतम करो जारा को रोक दो  
नम में पद-भरण करो स्वर्गों की माया रचो  
बैल से ही बूध बुद्धो मे सब प्रयत्न क्या ?  
मन्वारी के इन हल्के खेतों की सिद्धि क्यों ?

मिथ्य पक्षियों में ब्रह्म की सर्वव्यापकता का विषम उपनिषदों की साधना के कितने निकट पहुँच गया है—

तुम हो स्वर्ग और तुम हो पृथ्वी  
तुम्हीं हो दिन और रात और पवन  
तुम स्वयं हो धीव और ध्यात्मा  
तुम ही हो फूसों की भेंट ॥

सत्स का अद्वैत-दर्शन उनके लिए अनुग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करने में बाधक नहीं होता और न वह परमात्मा की भक्ति से रहित गुण ज्ञान-यज्ञ की ही अनुगामिनी थीं। गुण साधनाओं के साथ वह गाती हैं 'उनके धारास्य-मन्दिर के द्वार बन्द हैं। यशोसा लगी हुई है। वह उस द्वार की ओर टकटकी लगाये उषने बुलने की प्रतीक्षा में साधना रत हैं। द्वार क' उष पार उनकी दृष्टि से परे जो तलब है उसे पाने की चाह निरन्तर बढ़ रही है। उनके नेत्र अमित व्यास भरे उष और एकटक देख रहे हैं।

यद्यपि मनुष्य को परम तलब की प्राप्ति के लिए यथासाध्य प्रयत्नशील होना ही चाहिए पर अन्ततः परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त होने पर ही वह उष तलब तन पहुँच पाता है। इसलिये वह कहती है—

घब भी वह द्वार पर सड़ी थी  
 टकटकी बाँधे घाट बोहती थी जिसकी  
 मो द्वार लोला उसने—  
 उमे देखा मस्म मे धपने ही भीतर ।  
 और जसा थी धपविभता मन की  
 ज्वलित हो सिद्ध बन चुकी थी वह  
 इच्छाओं से मुक्त उसका हृदय परिपुन बा  
 मुकी वह वहीं पर मुके हुए मुन्नों पर ॥

उसकी आत्मा मिरलता परमात्मा के साथ धमिभता का अनुभव कर उसमें  
 एक रूप होकर रहती है । बबिता की सम्राजसी में वह जाती है—

हे मेरे रूप—जो तुम हा वह मैं हूँ  
 हे मेरे रूप—जा मैं हूँ वह तुम हो  
 एकत्व हम दोनों का मिटेया नहीं कभी  
 क्या और कैसे ? ये प्रश्न है व्यर्थ सभी ॥

धपनी कुछ सुप्रसिद्ध बाणियो म वह भीतिक पदाओं की प्रस्मिगता पर बन देती  
 हुई कहनी है—

एक दाग के लिए तिमता है पूम  
 हरे-भने पल पर उज्ज्वल और कान्तिमान् ।  
 एक दाग के लिए बहती है गीत बाय  
 कानों की नंगी साबिया जो चीरती ।

पल की कामता के बिना कबल कसंभ्य की भावना से कर्म करा और ईदब  
 का धपित कर दो—यही गीता का प्रसिद्ध सिद्धांत है । सभ्य धपने भीतों में उगी  
 सत्य का उपदेश देनी है—

जा भी क्रिया है शूदार मने  
 जो भी क्रिया है विचार मने  
 वह थी पूजा मरी बेह म स्थित ।  
 वह थी पूजा मेरे मन में स्थित ।

बपास के पीये के बरेसु रूपक-द्वारा सस्स परमात्मा की खोज में संलग्न जीव की कठिनाइयों का वर्णन करती है। रूपाम पहले धूमिल-द्वारा धुनी जाती है फिर काली जाती है और तब नुमाहे की लड़ी क लाने पर बड़ायी जाती है। जब रूपड़ा तैयार हो जाता है तो पौर्बी-द्वारा घुसम के लिए कूटा जाता है। घन में बस्त्र बनाने के लिए दर्बी उसे काटता है। यहाँ प्रत्येक रूपक की पुष्क-पुष्क व्याख्या कठिन है पर रूपाम से वस्त्र तक की विभिन्न चेमियाँ ज्ञान-प्राप्ति की विभिन्न प्रबन्धाओं का बोध करानी है। यह कहती है—

‘धरबा पहले से एक रई की पानी के रूप में जीवन के पथ पर छोड़ दी गयी। फिर बुनिए के द्वार की लटकटाहट सुनी और बुनिए की हावा की चोटें मही।

‘फिर एक कालनेबारी ने मुझ बल्ले के तकरण पर काटा और तब मैं लड़ी पर बड़ा बी गयी। वहाँ मैं नुमाहे के हाथों की चोटें सही।

‘धर मैं बस्त्र के रूप में धा चुकी हूँ। बोबी ने मुझे घुसाई के पत्थर पर जी भर कर पटक। रास हड़ी और मिट्टी से मुझ स्वच्छ किया और फिर मुझे साबुन मस-मस कर उज्ज्वल किया।

‘फिर दर्बी ने अपनी कैंची से काट-छाँट की। मुझे टकरों में काटा और पहनावे के बस्त्र का रूप दिया। जैसे कि धातमा मुक्त हो गयी हो इस प्रकार मैंने धातम-बोध प्राप्त किया और मुक्ति पायी।

‘पृथ्वी पर धातमा की मणि धरपन्त कठिन है जब तक कि वह अपनी राधा का शम्भू मही पा लेती। हर जन्म में जीवन का पत्र कठिन है जब तक कि तुम अपनी मित्र का हाथ नहीं स सेठ।

जन्म-मरण के धाबायमन के चक्र से छुटकारा पाने के लिए धातमा की बुकार निम्न पत्र में वर्णित है और प्रत्येक हृदय में प्रतिबिम्बित हो उठती है—

मरी पीठ से पाण्ड का बोझ उतारो

इसकी वारिं मेरे कंधों को अपनी रसइ से बायस कर रही है।

मेरे सारे बिन का काम नष्ट हो गया है।

उठ! इससे पहले कि मैं फिर पड़, मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ।

सुब की लाल में मैंने सुना व्याख्या

उन समय का जिनने फफोनों की भाँति मुझे बायस कर दिया है।

जिनसे इतना मोह था उन स्वप्नों को जाने की पीड़ा—  
 इससे पहले कि हम पृथक् हो जायें मैं कैसे इसे सहन कर सकती हूँ ।  
 मरी चेतना का समूह जो गया है  
 धरबाहे की पुकारों से दूर पहुँच गया है ।  
 उससे पहले कि मुक्ति का पहाड़ पार किया जा सक  
 इससे पहले कि मैं निर पड़ू मैं इस कैते सहन कर सकती हूँ ।  
 अन्तरतम के मनन और चिन्तन से  
 मैंने आत्म-बाध की सुन्दर ज्योति पायी  
 और इसी से मुझ पूर्ण मरण प्राप्त हुआ  
 कि आत्मा परमात्मा में मीन हो जायगी ।  
 हे मायात्मक तुम्हीं सम्पूर्ण हो  
 सर्वात्माया में मैं कबल तुम्ह देखती हूँ ।  
 हे नाशयण अपना जल जो तुम बिलाने हा  
 मेरे लिए केवल तुम्हारी माया है ।  
 'महं ब्रह्मास्मि' का पाठ पढ़ते हुए  
 मैंने सीखा है हे नाशयण तुम इससे दूर हो  
 मैंने उस स्वप्न का रहस्य जान लिया है  
 वहाँ हम दोनों एक रूप हो बिचरते हैं ॥

उपर्युक्त पद में सांसारिक मुक्त और आनन्द के द्वार की तुलना आश्र  
 की उस घड़ी के साथ की गयी है जिसकी गति हीनी पड़ गयी है और उसकी रण्ड से  
 उसके कन्धे झिल रहे हैं । संसार एक स्वप्न है और यह सृष्टि ईश्वर की नीडा है ।

हम किसी भी पक्ष का अनुगमन करें किसी भी मत को अपनायें पर जब तक  
 मनुष्य ईश्वर की चेतना को प्राप्त न कर सके तब तक वह दुःख और संताप का शानी  
 बनता है । विस्वास और धर्म का प्रभाव जीवन के सद्य को पहाड़-सा बाधित  
 बना देता है और साधक को निगम कर देता है । सिद्धि के जिन मुक्त का जिनका  
 सन्त ने शीत के शक्त में किया है उनका अनुभूति हममें से अधिकांश का दुर्लभ  
 है । पर जिस भ्रम में हमें इतना मोह है उसके लो जाने के दुःख का अनुभव  
 हम प्राप्त करते हैं । फलों की भाँति जसा देनेवाले शय के शमायत का भी हम  
 प्राप्त अनुभव करते हैं । इस पक्ष पर बढ़ते हुए जिनके कर्म सङ्कलन रह है  
 जिनके स्वप्न पुरुष पड़ गये हैं जिनका सद्य शमी उनका बहुत दूर है उन सब

सोचों के लिए लाल की बाबियाँ मङ्गलु घाया के सन्देश-श्रोण हैं। उनकी पुकार देश के विहित धर्म के लिए नहीं थी। सोचप्रिय पत्र के माध्यम से उन्होंने जब आचार्य उक्त धर्म का मन्दन पहुँचाया है। प्राथमिक युग में सर रिचर्ड टैम्पल को लाल के गीतों-द्वारा ही न केवल गीत मत्त अपितु समस्त भारतीय दार्शनिक चिन्तन-धारा के अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। अपनी पुस्तक में लाल के प्रति भव्य-महत्त्व करने हुए यह कहते हैं—

- हे लाल यद्यपि तुम केवल एक मकल हा  
 अपने युग और समाज के सत्य की पुत्री  
 \* मुझ पराये देश और बस के पुत्र का  
 तुम्हारे गीतों ने अपना दास बना लिया है।

यह मुझ पर प्रपञ्च इस उक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हृदय से हृदय बोसता है। लाल की बाबी देश-कास की सीमा में बँधी नहीं। यह बाबी सदा-सुबदा फलती-फूलती रहूँगी क्योंकि उसके गीतों की पुकार मात्र ही उतनी ही लचील और सरल है जितनी वह उस समय की जब आज से छ सौ वर्ष पूर्व वह सर्वप्रथम उमड़ी थी।

परिच्छेद ७

## मीराबाई

उत्तर भारत में मीराबाई का नाम प्रत्येक परिवार में एक कुम-देवी की भाँति दिया जाता है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि कवयित्री मीराबाई की जन्मभूमि भारत के मध्यप्रदेश के सतलु जिले में बौधायी है। इस सतलु जिले की जीवन-भाषा का इतिहास एक रहस्य ही बना हुआ है। मीराबाई की जन्म-तिथि विवाह मृत्यु धीर पति के नाम के विषय में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। इस सत्य से सभी सहमत हैं कि मीराबाई मेड़ता के गठौर-परिवार की राजकुमारी थी। हम ही में विभिन्न विद्वानों ने मीराबाई के जीवन-सम्बन्धी विभिन्न गाथाओं का एक ही बनी में पिरोने का प्रयास किया है।

उपरिनिर्दिष्ट कृतान्त के अनुसार मीराबाई का जन्म १५०४ ईस्वी में राजस्थान के मेड़ता जिला के बौधायी गाँव में हुआ था। मीरा के पिता गणेश सिंह जोधपुर के संस्थापक राजा जाधवी राठौर के बंशज राजा दुर्गाजी के द्वितीय पुत्र थे। मीरा की माता उसे दस वर्ष की आयु में ही छोड़ कर स्वर्ण सिंघार गयीं। तत्पश्चात् मीरा अपने माता के पास मेड़ता आ गयीं।

जय दुर्गाजी को १५१४ ईस्वी में मृत्यु ने श्राव्य बना लिया तब उनका ज्येष्ठ पुत्र विक्रम सिंह उनका उत्तराधिकारी बना। विक्रम देव ने अपनी सतीजी का विवाह जितौड़ के राजा शाया के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार भोजराज से कर दिया। उस विवाह में मीराबाई का मामाजिक स्तर बहुत ऊँचा हो गया क्योंकि जितौड़ का शासक तत्कालीन हिन्दू राजा का सहायक माना जाता था। किन्तु यिथि की विद्वन्मता ऐसी हुई कि १५२६ ईस्वी तक मीरा के पिता पति धीर स्वामुर मंत्री उनसे सदा के लिए भूँद हो गए।

जब मीरा का स्थिति में कोई श्रेय राजकुमारी हानी तो जीवन-वर्षक या तो शोक-मादर में बहती रहती प्रथम कुर्माय का कोमली हुई परम्परा के अनुसार स्वर्ण गती हो जाती। किन्तु मीरा ने ता अपनी जीवन-जीवा का ज्यु विरह-निवृत्ता अपने इच्छेवक का प्रतिफल कर दिया था। उनके लिए य सब धापवार्त मानाएक थी। कहा जाता है कि मीरा के जीवन के इतिहास का प्रथम स्थापन पर १५२० ईस्वी में प्रथम इन्दोला समाप्त थी।

इससे पूर्व कि हम सत् कवयित्री मीराबाई के धार्मिक और धार्मिक अनुभवों का विस्लेषण कर यह धार्मिक उपयुक्त होगा कि हम तात्कालिक सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का विवेचन और सिद्धान्तोक्तम भी करें जिनका मीरा के धार्मिक जीवन पर गहन प्रभाव पड़ा ।

मीरा के जन्म के समय भारत में राजनीतिक उदय-युगन सर्वव्याप्त थी । अफगान राज्य प्रायः मष्ट हो चुका था और मुसलमान साम्राज्य अस्त राज्य की तन्ही-तन्ही रियासतों को पाने के लिए परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे । राजपूत राजा उत्तर भारत में एक सुदृढ़ राज्य बनाने और अपना धार्मिक स्वार्थ स्थापित करने के लिए साम्राज्य और प्रयत्नशील थे । कुर्मायबन एकठा और संगठन के प्रभाव में राजा पण लड़ते-झगड़ते रहे । इस प्रकार इन विषयों राजनीतिक परिस्थितियों से पूरा पूरा साम उठा कर मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर अपने सपनों को क्रियात्मक करने में संलग्न था । इस समय मानवता और प्रेम की भावना ठा प्रायः मृत हो चुकी थी ।

राजनीतिक उदय के लिए राजपूतों में रक्त-रहित भावपूर्ण राजपूतों और पड़ोसी साम्राज्यों के मध्य निरन्तर युद्ध तथा मीरा के निजी परिवार के स्वभाव की मृत्यु ने मीरा के मस्तिष्क और हृदय पर गहरा प्रभाव डाला । अपनी धर्म-बन्धना में ही मीरा ने मानवीय प्रामाण्य से संसार की अस्थिरता का अनुभव कर लिया था । मानव की मानव के प्रति बुद्धि कृत्य प्रेम और शान्ति की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के लिए बलिदान और मनुष्य का प्रगल्भ हंस समझ जाना यह सब उसकी क्रमशः भावनाओं को ठेस पहुँचा रहे थे । इन विषयों परिस्थितियों ने वह अनुभव करती कि वह पराये और अपरिचितों से विरिणी है । उसका हृदय अपने प्रेम और शान्तिमय संरक्षण के लिए उद्विग्न था और यह संरक्षण उसे वैयक्तिक उपायों के सहाय से प्राप्त हुआ ।

अपघानों के प्रारम्भिक राज्य-कास में हिन्दुओं पर और अत्याचार हुए और उन्हें धर्मान्ध किया गया । इस कारण हिन्दुओं का दृष्टिकोण भी बढ़ा संकीर्ण हो गया था । अपनी संस्कृति तथा धर्म को विदेशी प्रभाव एवं सत्ता से सुरक्षित रखने के लिए हिन्दुओं ने धार्मिक दृष्टिकोणों और ऐसे रीति-रिवाजों का धार्मिक सेना धारण किया जो बलुत उनके मूल धर्म और सामाजिक परम्पराओं के सर्वथा प्रतिकूल थे । उनके सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में निष्क्रियता पा गयी थी जिन्हु विदेशी शासन में हर प्रकार के धर्मान्ध और धर्मान्धियों के होते हुए भी हिन्दुओं की धार्मिक संजीवता और प्रभाव की जड़ें न काटी जा



मकीं। हिन्दू प्रतिमा मद्यपि पतिव्रत होकर सीमित हा चुकी थी तथापि उसे पुर्णविकृत करने और उन्नत करने की प्रेरणा भी धार्मिकता ही मयी थी। रामानन्द पेंतम्य बस्मनाचार्य कबीर, नामक-बीये सन्तों एवं दोष्ट सुधारकों ने हिन्दू जनता को यह स्मरण कराना कि हिन्दू धर्म और संस्कृति धमी निष्पन्न और विस्तार नहीं हुई है। इन महात्माओं ने जनता को आत्मा और परमात्मा की एकत्वता का उपदेश देते हुए बताया कि सर्वव्यक्तिमान् प्रभु ब्रह्मा है। शून्य-शून्यों का सहायक है निराश्रयों का आश्रय है। वह समय-समय पर बरती पर प्रवृत्त होकर पापियों का नाश और धर्म-परव्रत सञ्जन मनुष्यों की रक्षा करता है। केवल प्रेम और शक्ति से ही आत्मा और परमात्मा का मेल सम्भव है। इन सन्तों ने यह बताया कि जाति-पाति और मत-मतान्तरों से ऊँचे उठ कर प्रेम और मानव-बीजन की प्रतिष्ठा करना विश्वेश्वर के साथ आवागम्य पाने की प्रथम सीढ़ी है। वैष्णव मतों की इस शिक्षा ने हिन्दुओं में मुसलमानों या शक्ति जातियों और धर्मों के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न की। परिणामस्वरूप यह चेतना करने लगे कि इनसे मैत्री की भावना पैदा की जाये।

वैष्णव मतानुयायियों और शिक्षकों ने मीराबाई को मनोव्यक्तिगत पक्ष की शक्ति हुई। वह उस भगवान् में लक्ष्मी हो गयी जो केवल वसा और प्रेम का रूप है। इसी भगवान् को उतने प्रेम क रूप में देखा। भगवान् कृष्ण को धनक नामों से सम्बोधित किया गया है किन्तु मीरा के दृष्टिकेन ता गिरिधर नागर थे। उसका अपने धाराध्य के प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि वह अपना साथ समय उसी की प्रशंसा के गीत गाने और उसकी उपासना में बिताते लयी। जब उसकी माता न उस व्यावहारिक और स्वस्थ-सांसारिक जीवन मापन करने और राजकन तथा मर्त्या के अनुकूल रहने को कहा तो मीरा ने उत्तर दिया—

हे माँ! स्वप्न में गिरधर गोपाल ने मुझे ब्याहा है। मैंने शाल और पीसी चुनरी पहनी थी। मेरे हाथों में मुम्बर मेंहरी रखी थी। यह ज्वाला जो घमुना-तट पर मयूर बाँसुरी बजाता है, वास्तविक से मेरा प्रियतम इष्टवक है। यह प्रेम कबालि मुनाया नहीं जा सकता।

मुसलमान भोजराज से विवाह होने के बाद मीरा की अपने दृष्टिकेन के प्रति धारणा बढ़ती ही रही कम नहीं हुई। वह प्रायः अपना धार्मिकता समय अपने भगवान् की शक्ति में व्यतीत करती। धार्मिक गोष्ठियों का भी आयोजन होता।

मीरा की इन क्रियाओं से उसके स्वसुर और प्रिय सम्बन्धी अपसन्न रहते। उसे यह धादेश दिया गया कि वह इन कार्यों को तिस्राजसि से राज-परिवारों की परम्पराभुसार जीवम विनाय किन्तु मीरा के ज्ञान पर जूँ तक न रेंगी। प्रथम तो राधा ने मीरा की बच्यार्थों पर प्रतिबन्ध भगाना प्रारम्भ कर दिया। मीरा ने अपने शब्दों में इसका इस प्रकार बर्णन किया है—

‘इस परिवार के सभी प्रियजन मेरी सामु-संमति पर आपत्ति करते हैं और मेरी उपासना में विघ्न डालते हैं। शैलबाबस्ता मे ही मीरा ने गिरधर गोपान को अपना रम मित्र बना लिया था। यह सम्बन्ध धारणत है। यह कभी टूटेगा नहीं यद्यपि और भी बूढ़ होगा।’

जब बिबि की विदग्धता ने सन्त मीरा का विचका बना दिया तो उसके स्वसुर राधा रामा ने इस अवसर से लाभ उठा कर मीरा को सती होने का धादेश दिया किन्तु हमारी सन्त मीरा तो विचकारा की सर्वभ्यापी और अनुपम दक्षि में जिधसे उसका बास्तविक वाचिप्रवृत्त हो चुका था लम्बीय थी। उसने निम्नलिखित उत्तर दिया—  
‘हे राधा! मीरा हरि-रम में रंप चुकी है। मैं तो प्रथम गिरधर के ही गुण गाऊँगी। मेरा हृदय तो उसी के प्रेम से मोठ-मोठ है। प्रथम मेरा धापसे स्पेष्ठ पुत्र-ज्यू का सम्बन्ध नहीं रहा। प्रथम धाप राजा है और मैं धापकी प्रजा। राजा राजा की मृत्यु के बाद राजकुमार रत्नसिंह शासक बना किन्तु वह भी शीघ्र ही प्रकाल काल का प्रास बन गया। प्रथम मुक्तराज विष्णुमाहित्य चित्तीड़ का राजा घोषित हुआ। उसने राजा बनते ही मीरा को धादेश दिया कि वह साबु-सन्तों की सगति छोड़ दे तथा अपने इष्ट कृष्ण के समान नृत्य करना और पाना बन्द कर दे। राजा के कड़े नियन्त्रण में मीरा से रंग-महल में रह कर उपासना करना कठिन हो गया अतः प्रथम वह सार्वजनिक परिवार में जाकर धाराधना करती। मीरा साम्प्रारिभक हर्षोत्साह में अपने को पूर्णतः मूल धाराध्य के साथ वादात्म्य अनुभव करती। इसी उन्मादावस्था में वह भयवान् की प्रतिमा के सम्मुख नाचती और बाती हुई प्रायः समाधि की अवस्था में पहुँच जाती। बीरे बीरे मेवाङ्ग-निवासी सन्त राजकुमारी की प्रतिष्ठा करने लगे। मीरा की स्वाति दूर-दूर तक फैलने लगी। बड़े-बड़े विद्वान् मनीषी सन्त उसके बर्तनार्थ धाते और धपनी यथावधि धापित करते किन्तु इससे राधा उसके राजकुमार माई और निष्कट क सम्बन्धी अपने क्रोध पर काबू न पा सके क्योंकि जगमें रक्त-रंजित मुद्गों पारस्परिक विरोधों और शक्ति शान्ति के धातिरिक्त कुछ प्रिय सोचने की सामर्थ्य ही नहीं थी।

राधा ने भीरा को धमकित पातनाएँ दी । उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया । काँटा की सेज पर मुसामा बना धीरे उपहारस्वरूप एक थिपैले सर्प को एक सुन्दर पिटारी में भेजा गया । जिय विभाया गया । सारांश यह कि संसार की कोई भी बातना ऐसी नहीं थी जिसे भीरा ने सहन न किया हो । भीरा में भक्ति धीरे धाम्प्यारिक्क बल इतना था कि जो भी स्त्री-मुख्य भीरा को कष्ट देने के लिए भेजे जाते थे उसी के रंग में रंग जाते । भीरा ने राणा-द्वारा भी गयी बातनाओं का बर्तन घनेक पर्वों में किया है जैसे—

भीरा भयन भई हरि के गुण गाय ।  
 साँप पिटारा राधा भेज्यो भीरा हाव बियो जाय ।  
 न्याय बोय बब देसब सागी सात्तिगराम गयी पाय ॥  
 बहुर का प्यासा राधा भेज्यो दीजो भीरा जाय ।  
 न्याय धाय बब पीबब सागी हरि धमूत दिया दनाय ॥  
 सुस-सेज राधा ने भेजी दीज्यो भीरा मुसाय ।  
 माँझ भयी भीरा सोबब सागी मानो फूल बिछाय ॥  
 भीरा के प्रभु सबा सहायी राबे बिबन इटाय ।  
 भजन भाव में मस्त जोसठी गिरिबर पे बलि जाय ॥

भगवान् ने भीरा की रक्षा की । वह सब धापदार्थों से बच गयी । किन्तु भीरा धब प्रसन्न नहीं थी । उसे वह धाम्ति धीरे एकाग्रता नहीं प्राप्त होती थी जो धनम्य ईदबर-भक्ति के लिए धनिबार्थ है । इसके धतिरिक्क बर्षों से कष्ट सहते-महन वह लंग धा चुकी थी । धत उसने निरपय कर लिया कि वह धब बित्तीइ छोड कर धपने जाचा के राज्य मेइता जसी जाणगी । जाने से पहले भीरा ने धपने निरपय को स्पष्टतः राणा के सब परिवारबामो को बना दिया—

“यदि राधा मुझे सट है तो वह भीरा कोई धनिव्ट नहीं कर सकते । मैं ता सबैब गोबिन्द के गुण गाऊँगी वहीं भीरा सच्चा मित्र है । यदि राणा मुझ से बूझ है तो उसकी प्रजा मुझे धापय देगी किन्तु यदि स्वयं हरि रट्ट हो गये तो मुझे कौन धापय देगा ? मैं सांसारिक परम्पराओं की तनिक परबाहू नहीं करती । धब तो मैं धपनी स्वधम्रता की पनाधा पहराऊँगी । वहीं भरे परम मित्र है इष्टदेव का पावन नाम ही मेरी धीबग-नीया देने में महापता करेया धीरे मैं इस मायावी संसार-सागर को पार कर लूँगी । मैंने तो मर्बेकनिधसासी गिरिधर भापास की धरम की है धीरे रादेव उसी के बरपों में निपटी रहूँगी ।

उत्पन्नतात् मीरा मेड़ता बनी गयी। उसके बाबा ने उसे भक्ति धीर उपासना का जीवन व्यतीत करने की पूर्ण सुविधाएँ पूटी थीं किन्तु उसके बाबा के राज नीतिक बुद्धि ने मीरा को राजस्वाम छोड़ने को विवश कर दिया। राजपूताना छोड़ने पर मीरा ने मधुर-बुन्दावन तथा अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्रा की। तीर्थ यात्रा से सौट कर वह छीपट्ट की द्वारका-नगरी में सर्वत्र के लिए रहने लगी। यहीं उसने कृष्ण-मन्दिर में अपना शेष जीवन व्यतीत किया और यहीं प्रभु के चरणों में निर्वास प्राप्त किया।

एक सप्ते हुए वैष्णव योगी की भक्ति मीराबाई ने सम्पूर्ण हृदय धीर आत्मा से अपने इष्टदेव की धारणा की। वह अपने को कृष्ण-प्रेम में मग्नबानी बुन्दावन की गोपिका समझती थी। उसने कभी भी सांसारिक सुख धीर ऐश्वर्य की कामना नहीं की। उसका केवल एक ही मह्य था कि वह अपने प्राणप्रिय को प्रसन्न कर सके जिसे वह अपना तम-मग्न समर्पित कर चुकी थी। उसकी आत्मा परब्रह्म से तादात्म्य पाने के लिये सर्वत्र तड़पती रहती। परिणामस्वरूप उसका सारा काम्य अपने धारात्म्य के प्रेम धीर प्रसंसा से भोत-भोत है। इसमें उस विरह के दुःख का वर्णन भी है जो प्रियतम से बिछुड़े रहने पर विरहणी प्रियतमा को होता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

छोड़ मठ बाब्यो भी महाराज ।  
 मैं अबला बल नाम गुसाईं  
 तुम्ही मेरे सिरताज  
 मैं गुनहीन गुण नाम गुसाईं  
 तुम समरथ महाराज  
 बाटी होयके कियरे जाईं  
 तुमही हिवडोप साज  
 मीरा के प्रभु धीर न कोई  
 राखो पत्र के साज ।

धीर—  
 हरि बिन क्यूँ बिनईं ऐ मारईं  
 हरि कारन बीटी मईं  
 बस काठहिं बुन बाईं  
 प्रीयन मूल न संचरे  
 मोहिं सागी बीराईं ।

घौर—

तुमरे कारण सब गुन छोड़्या अब मोहि क्यों तरसाओ हो ।  
बिरह-बिधा मायी उर घलर, सां तुम घाप बुझाओ हो ।  
अब छोड़न नही कबे प्रभु की हैस करि तुरत बुझाओ हो ।  
मीरा दासी जनम-जनम की अग म अग माओ हो ।

हू इच्छेव ! धाराध्य मीरा जन्म-जन्म मे तुम्हारी दासी रही है अब उम  
अपने म समा सो ।

धन्वतोगन्धा मीरा की बिरह-वेदना का घन्त घा गया क्योंकि अब वह अपने  
प्रियमम से दूर नहीं रही । अब यह उस शान्ति और ध्यानन्द का प्राप्त कर चुकी  
थी जो सच्चे उपासक और योगी को अपने इच्छेव के मात्र एकारम होने में होता है ।

उत्पन्नात् मीरा क प्रियतम की प्रसंसा और भागाचना में जाने की गति नितान्त  
बिभिन्न थी । उवाहरचत —

मैं तो पिरघर के रंग राती ।

बिनाके पिया परदेघ बसत है सिल-सिल भेजें पाती ।

मोरे पिया मारे हिमे बसत है गुंज करे दिन राती ।

अब सप्त मीरा ने अपने धाराध्य से तादात्म्य प्राप्त कर लिया और उसकी व्याप्ति  
समस्त देस में फैल करी तो उसके परिचारकात् तथा लगे-सम्बन्धी उस बरे  
रहने लगे । इस परिवर्तित स्थिति का कारण वह निम्नलिखित शब्दों में करती है—

मैं अपनी सेवा संघ पाँची

अब काहे की लाज सजनी परगट हूँ माची ।

बिबम मूल न चैन कबहूँ नीद निमि नाशी ।

बेचि बार पार हूँ मो न्यान यह चासी ।

कुल-कुटुम्बी घाग बैठे मगहूँ मधु-मासी ।

शामी मीरा मात गिरघर, मिजे जग हामी ।

मीरा ने काव्य-रचना मुख्यत अपनी मातृ-भाषा मारवाडी हिन्दी म ही की  
किन्तु उसके पदों में गुजराती एवं पंजाबी शब्दों का भी पुट है । कृत्रिमता अथ  
रूपट-बिहीन सरस शैली में लिखा मीरा का काव्य मक्ति-भावना से भोज प्राप्त  
है । जिस गरसना और मुममता स मीरा ने अपने पवित्र बिचारों और ईश्वरी प्रेम  
को व्यक्त किया वह उसका काव्य का चार पाँच सगा रते है । अन्य कोई भी शक्ति  
रन गुविवा मे अपने इच्छेव के प्रतीतिक प्रेम का व्यक्त कर सकता ।

हरि मेरे जीवन प्राण-संसार ।  
 और घासरो नाही तुम किन तीनों लोक संसार ।  
 घ्राप बिना माहि कछ न गुहाई देख्यो सब संसार ।  
 मीरा कहै मैं दासि रावरो न बीगमा मती बिसार ।

मन मीरा ब्रह्मजात कवयित्री थी । उसने अपना इस प्रतिभा से अपने प्रिय  
 घ्राप्य की भक्ति और उपासना में ही सुन्दर काव्य रचना की । निम्नलिखित  
 कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिनमें विस्वात्मा से बिछड़ी हुई सत्य कवयित्री  
 मीराबाई की आत्मा की बिरह-बैरना आत्मा को उन्मत्त कर देनेवाले शब्दों में  
 बधित है—

हे री मैं तो बरद दिवानी  
 मेरो बरद न जाई कोय ।  
 बायल की गति बायल जाई  
 जो कोई बायल होय ।  
 जोहरि की गति जोहरि जाई  
 की बिम जोहरि होय ।  
 मूसी अगर सेज हमारी  
 सोबल किस किस होय ।  
 गगन मंडस पर सेज पिया की  
 किस किस मिलया होय ।  
 बरद की मारी बन-बन डोर्णू  
 बैद मिस्यो नहि कोय ।  
 मीरा की प्रमु पीर मिटैयी  
 जब बैद सँवसिया हाय ।

मीरा अपने इष्टदेव का सरस सुन्दर बिलु प्रभावपूर्वक सत्य में वषण करती हुई  
 कहती है—

मेरे तो गिरघर सोपास दूधरो न कोई ।  
 जाके घिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।  
 तात-मात प्राठ बन्धु भापना न कोई ।  
 छाड़ि बई कुल की कानि कइ करिई कोई ।  
 सन्तन-द्विग बैठि-बैठि सोक-साज छोई ।

बूनरी को कीन्हें टुक घोड़ मीनी लोई ।  
 मोठी-भूंगि उतार बनमासा पोई ।  
 बँसुवन-बस सीधि-सीधि प्रेम-बेलि बोई ।  
 धर सो बेलि फँस बदी जागत सब कोई ।  
 रूप की मबनिया बड़े प्रेम से बिसोई ।  
 मासत पब काङ्कि लियो छाछ पिये कोई ।  
 मनति बेलि राजी होई, जगत बेलि रोई ।  
 बासी मीरा घास पिरधर टाटी धब मोई ।

मीरा के गिरिधर गोपाळ को परम शास्त्र 'सुन्दरतम' गटराज कृष्ण हैं जो सर्व-परमम भक्त-जनों की सदैव रक्षा करते हैं और उन पर मुक्त की बर्पा करत हैं ।

सन्त मीरा अपने प्रियतम को सरल और प्रभावपूर्ण शब्दों से व्यञ्जनाभि मेंट करती हैं—

बसो मोरे नैनन में नन्दमान ।  
 मोहनी मूरति साँबरि सूरति नैना बने बिसाम ।  
 धधर-भुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती मास ।  
 छुर बष्टिका कटि-तट सोमित नूपुर सबर रतास ।  
 मीरा प्रभु सन्तन मुखबामी भयत-बखस गोपास ॥

मीरा के काव्य में केवल बो-बार ही पद उपलब्ध हैं जो विभिन्न रागों में गाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि उसने गीत-भोगिन्व और राग-भोगिन्व की व्याख्या भी सिखी है किन्तु उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है ।

भारतीय कवि और कवयित्रियों में जितनी ख्याति सन्त मीरा को मिली है उतनी अन्य किसी को भी मुमक नहीं हुई । मीरा के पद सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं । राजा और रंक सभी समभाव से इसे गाते रहे हैं । आज भी सबसे अधिक इन्हीं पदों को गाया जाता है ।

यह ही सन्त कवयित्री राजकुमारी मीराबाई जिसने सत्कार की सब मुक्त सम्पदा और राजकीय ऐश्वर्य त्याग कर अपने धारण्य की स्मृति में उसके मुर्जी की व्याख्या की है । उसने अपना समस्त जीवन अपने इष्ट की धारण्यना और उपासना में लगा दिया । मीरा बस्तुतः भारत की एक श्रेष्ठ सन्त महिला हुई हैं जो युग-युगान्तरे तक भारत और सम्मान की पात्री रहेंगी । उसकी पुनीत स्मृति में सभी शब्दों के फूल बढ़ाये रहेंगे ।

## महाराष्ट्र की सन्त महिलाएँ

मराठी कविता के संकलन 'नवनीत' में महाराष्ट्र की केवल तीन महिलाओं का बर्णन आता है। जनाबाई राजाई और पोपाई। जनाबाई प्रसिद्ध सन्त माम देव की शिष्या थीं। महीपति मराठी पुस्तक 'मक्त-विचर' में इन तीन महिलाओं की जीवनी का विस्तृत बर्णन है। किन्तु धार्मिक पाठक इस विवरण की ऐतिहासिक पर्यायता पर संका करते हैं।

जनाबाई पम्बरपुर की विख्यात सन्त महिला थी और उनके इष्टदेव पवित्र विठ्ठल प्रभु थे। जनाबाई का जन्म पौडावरी नदी के तट पर स्थित गंगालेड़ा गाँव में हुआ। जनाबाई के पिता दामाजी भी विठ्ठल प्रभु के मक्त और मूढ़ जाति के थे। दामाजी अपने इष्टदेव के धन्य मक्त थे और प्रति वर्ष पम्बरपुर तीर्थ-यात्रा के लिए पामा करते थे। जनाबाई की माता का नाम कदम्ब बा। जनाबाई के पिता जैसे पवित्र-धर्म की भाव्यावस्था में ही गुरु नामदेव के पिता के घर से गये और बहु धार्मिक गृह-सेविका बनकर काम करती रहीं। इसीलिए वह अपने को 'दासी जानी' कहकर सम्बोधित करती हैं धर्म सेविका जानी! गुरु नामदेव के पिता दामाजी की जाति के दर्जी थे। विठ्ठल स्वामी में उनकी भी धन्य भक्ति थी और वह प्रति वर्ष तीर्थ-यात्रा में दासी जनाबाई को भी ले जाते थे। जनाबाई ने अपने कमलकार दिखाय। यह बड़े धारण्य की बात है कि निरक्षर होते हुए भी जनाबाई ने विठ्ठल प्रभु की उपासना में धनेक कविताओं की रचना की। जनाबाई अपने काव्य में कहती हैं

"मयबान् की बुष्टि में तो मनुष्य की धर्मभविनाओं का मूस्य है और वह मक्त की धार्मिक पुकार सुन और एकान्तिक भक्ति से आष्ट हो स्वर्ग छोड़ कर भी उसके पास जाने को तत्पर रहते हैं। मयबान् स्वर्ग पुण्डरीक के सम्मुख प्रकट हुए। पुण्डरीक ने उनके बैठने के लिए एक ईट फेंकी परन्तु वह वहाँ बैठे नहीं धर्मिण्य छोड़े ही रहे? मयबान् सब मुक्तों के सापर है। जिन पर वह उपा करते हैं, उनसे संसार उस पर बया करता है (राम मये जिहि दाहिने सभी दाहिने दाहि)। ऐसे लोग किती फल की कामना नहीं करते। मयबान् के मक्तों पर जो आयाचार



होते हैं उनके स्वयं भगवान् सहज करते हैं। वे सदा उनके पास रहते हैं नमी पृथक् नहीं होते और प्रत्येक संकट और दुरावस्था में उनकी रक्षा करते हैं।

भगवान् की इच्छा में जाति-पाति व रूप रंग का कोई भेद नहीं

“जाति दाय कृप नाम भिन्न नहि

रंक हाम ने रानै ।

आत्मा मेमा जाति-बहिष्कृत थे किन्तु वह परम भक्त थे। अतः भगवान् स्वयं उनके संबन्ध बने और उनके साथ भोजन किया। जानी हर्षातिरेक में गड़्डी है—  
“इस भक्त ने भगवान् को भी अपनी ही तरह जाति-भ्युक्त बना दिया है।”

अनुमान किया जाता है कि जानी ने तीन सौ पद लिखे हैं किन्तु श्री अज्ञातकारक मतानुसार इनमें से केवल पच्चीस पद ही उसकी अपनी रचना हैं। जानी कबल अग्रमन्त्र नहीं थी अपितु बहू बीब ब्रह्म और माया के रहस्यमय सम्बन्ध को अपनी भाँति समझती थी।

राजाई और गोपाई का उत्सव अज्ञातकारक की पुस्तक में सन्तों के रूप में मही है। किन्तु इनकी रचनाओं का ब्रह्म 'महनीठ' में पाया जाता है। राजा नामदेव की स्त्री भी और गोपाई उनकी माता। नामदेव के कारण ही वे सन्त कहलायीं। नामदेव को जीवन में भगवद्भक्ति के अतिरिक्त और किसी बात में रूचि या रस नहीं था। पण्डरपुर के विद्वान् प्रभु के वह प्रियपुत्र मन्त्र थे। कुछ पूजकर अतुल्य पर राजाई और गोपाई की रचनायें मानी जाती हैं किन्तु उपलब्ध नहीं हैं। नामदेव पारिवारिक और सांसारिक कार्यों की उपेक्षा करते थे उन पर स्वभावतः राजाई ने उन्हें एसा करल से राक्षस की यथाशक्ति भेष्या की। नामदेव ने समस्त भारत का भ्रमण किया था और यह पंजाब तक पाय थे। ब्रह्मण में नामदेव बड़े उद्दण्ड थे किन्तु बड़े होने पर जब वह पण्डरपुर के मन्दिर में सन्त ज्ञानेश्वर के सम्पर्क में आये तो उनके जीवन में बहुत सुधार हुआ।

ज्ञानेश्वर पहले महान् सन्त हुए हैं जिनसे सन्तों की एक परम्परा महाराष्ट्र में बनी। सन्त ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' नामक अष्टावस्तीना की एक टीका १२६० ईस्वी में लिखी। 'ज्ञानेश्वरी' टीका के पूर्व भी मराठी साहित्य में महानुभाव-साहित्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता था। महानुभाव-सम्प्रदाय एक गुप्त संकेतन या जो कुछ विशेष कारणों से बहुत छिपे नहीं पाया।

अज्ञातकारक के अनुसार प्रथम मराठी सन्त महिमा महाराईना उपनाम महाराजा की जो १२१३ ईस्वी के समय हुई। यह सन्त महिमा महानुभाव-सम्प्रदाय की थी—  
— उस सम्प्रदाय के संस्थापक ब्रह्मण की विद्या की जा अपनी तांत्रिक शक्ति के

लिए प्रसिद्ध थे। महाराष्ट्र को सामारण प्रचलित मराठी भाषा जानतेबाने के लिए समस्तता कठिन है। परन्तु इसकी व्याख्या और टीका उपलब्ध है। घत उस समयका सुगम हो गया है।

महाराष्ट्र के पदचाल सत्त महिलाओं में मुक्ताबाई का नाम प्राण है। मुक्ताबाई सत्त ज्ञानधर की बहन थी। वह एक विदुषी महिला थी। उन्होंने पर्याप्त सभ्यता में कविताएँ लिखी। निवृत्तिनाथ ज्ञानदेव सायान और मुक्ताबाई महान् मराठी सत्त हुए हैं। मुक्ताबाई ज्ञानधर की सबसे छोटी बहन थी। मुक्ताबाई वेण्णल से पूर्व परिचित थी तथा उनकी रचनाएँ वेदात्मिक काव्य-विवाह से परिपूर्ण हैं। ऐसा लगता है कि इन सत्त महिला न यौगिक परम्परा का पूर्ण अध्ययन किया था और ज्ञानधर की तरह मच्छिन्द्रनाथ गोरखनाथ पहिनानाथ और ज्येष्ठ भाई निवृत्तिनाथ की परम्परा में इसका सम्प्राप्य पाया जाता है। इन तीनों भाइयों और मुक्ताबाई का जीवनकाल स्वल्प था किन्तु महान् पदमाघो से परिपूर्ण।

पैठण के निकटवर्ती धारगाव स्थान पर एक भम्बरक पत्त नामक व्यक्ति रहता था जो धरणी मुवावस्था में प्रसिद्ध सैकिर रहा परन्तु बाद में सत्त गोरखनाथ के पंच का अनुयायी बन गया। भम्बरक पत्त का पुत्र गोविन्द था और पुत्र-वधु मीरा बाई। इन्हीं माता-पिता से पुत्ररत्न विठ्ठल का जन्म हुआ था। बालक विठ्ठल की हवि धर्मप्रवचन से ही सादरी भक्ति और उपस्था के जीवन की घोर थी। एक बार इन्होंने तीर्थ-यात्रा की और वह पुत्र के निकटवर्ती स्थान घासम्बी पहुँचे। वहाँ इसका परिचय सिद्ध पत्त की पुत्री रक्तिमणी से हुआ। विवाह के उपरान्त भी वह मया भयक-विमान में रहते। स्वभावतः रक्तिमणी के लिए यह विस्तार का विषय बन गया कि किस तरह उनकी हवि सांसारिक जीवन में लक्ष्मी जाये। एक दिन भक्तस्मरत् विठ्ठल पत्त घासम्बी छोड़ कापी (बाणजयी) बसे गये और महान् सत्त रामानन्द के चरणों में उपस्थित हुए। इन्होंने स्वामी रामानन्द को बताया कि न तो वह विवाहित है और न उनके कोई सत्यान ही है, घत सत्त रामानन्द न इन्हें संन्यासी जीवन की घोर प्रवृत्त किया और इसका नाम चैतन्यायम रखा।

कुछ समय बाद माणिसो-हाय रक्तिमणी को साथ बुलाय सत्त हुआ तो वह विचलित नहीं हुई, परन्तु घामा और शर्बता के सहारे जीवन ध्यतीत करती रही। बारह वा ठेल् नपों के बाद एक बार स्वामी रामानन्द तीर्थ-यात्रा करते हुए घासम्बी पहुँचे। रक्तिमणी की घेंट उनके मन्दिर में हुई ता उसकी घोष-भाषा सुन कर तथा उसके पति-हाय संन्यास लिए नाम का हास नाम कर उन्हें परवधिक बुद्ध हुआ। कापी मीठने पर सत्त रामानन्द ने चैतन्य से अनुरोध किया कि वह घासम्बी जाकर

पारिवारिक जीवन व्यतीत करे। पत्नी और सन्तान के रहते हुए सम्प्रास की बीसा मना अनुचित है। बिदेपकर जबकि शैतन्य ने असत्य भाषण कर सम्प्रास मिया है। गुरु का धारण पा शैतन्याभय भ्रासन्दी लौट भामे किन्तु पारसी बाह्यय यह सहन न कर सके कि जिस व्यक्ति ने सम्प्रास ग्रहण कर मिया हो वह पुन गृहस्थाश्रम का जीवन व्यतीत करे। अतः विद्वान् उनकी पत्नी और उनके परिवार का जिसमें सब उनके तीन पुत्र निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान और पुत्री मुक्ताबाई से सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। पुरोहितों और बाह्याणों के धारणानुसार विद्वान् और उनकी पत्नी ने अपनी सन्तान की भ्रासन्दी में छोड़ प्रयास की और प्रस्थान किया और गंगा तथा यमुना के पवित्र संगम में डूब कर मर गये। बाह्याणों के मठानुसार विद्वान् के महा पापों का यही प्रायश्चित्त था।

अब निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान और मुक्ताबाई संसार में निराश्रय तथा अनाथ ही नहीं अपितु जाति-बहिष्कृत भी थे। उस समय निवृत्ति की आयु दस वर्ष ज्ञानदेव की आठ, सोपान की छ और मुक्ताबाई की चार वर्ष की थी। समय क साथ-साथ ज्ञानदेव की महान् विद्वत्ता प्रथिमा और अद्भुत शक्ति के कारण बाह्याणों ने समाहित होकर इन त्रिणों का भ्रासन्दी रहने की अनुमति तो दे ही परन्तु अपनी तक से बाह्यय सम्प्रदाय से बहिष्कृत ही रले गये। कोई भी श्रेष्ठ और कुसीम भ्रासन्दी-निवासी उनसे मिलने और विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने को तत्पर न था। अतः ये सब अहमदनगर जिसे के विवासे नामक स्थान पर जा बसे। कहा जाता है कि निवृत्ति ने गोहिनानाथ से नाथ-पन्थ के रहस्यवाद की बीजा से भी और ज्ञानदेव को भी इसी पन्थ का अनुवायी बनाया। सोपान और मुक्ताबाई ज्ञानदेव की निरन्तर संगति में रहने से सन्तावस्था की प्राप्ति हुए। १२१६ ईस्वी तक मुक्ताबाई ने असंख्य कविताओं की रचना की। उस समय उसकी आयु अथवा २१ वर्ष की थी। ज्ञानदेव परमारमा में तीन होन्कर जीवित ही समाविस्व हो गये। आज भी मक्तजन भ्रासन्दी में उनके समाधि-स्थान पर तीर्थ-यात्रा के लिए जाते हैं।

मुक्ताबाई का काव्य यह प्रमाणित करता है कि वह बेदास के सिद्धार्थ से पूज्य परिचित थीं। सप्त मुक्ताबाई के कवनानुसार "वही सच्चा सप्त बहमा एकता है जो दया और क्षमा का मण्डार है और जिसके हृदय में लिप्ता तथा अहंकार का भोग मात्र भी नहीं है। ऐसी महान् धारणाएँ ही सच्ची त्याग-मूर्तियाँ हैं।" मुक्ताबाई ने सिद्धा की है कि एसे लोक ही इहलोक और परलोक दोनों में मुक्त पाते हैं जिनका हृदय पवित्र है उनसे भगवान् डूर नहीं।" वह अपनी एक कविता में लिखती हैं—  
परमेश्वर हाट और बाजार में पत्र से नहीं मिलता। उसे पाने का अपिहार

तो सन्ने घोर सदाचारी जीवन को ही है। ईश्वर-प्राप्ति किसी गिना से उपलब्ध नहीं होती। किन्तु मनुष्य स्वयं उसे प्राप्त करता है।”

मुस्ताबाई म १२६७ इस्वी में बरुता के पास माणगाँव में निर्वाण प्राप्त किया। श्री धर्मगाँवकर ने जिस दूसरी सन्त महिमा का बयान किया है वह है पानी जिसका उल्लेख पहले जमाबाई के नाम से किया जा चुका है। यह महिला बहुत प्रभु की उपासिका थीं। इसके परचात् सोमराबाई का उल्लेख आता है। ये भक्त जोसा योता की धर्म-पत्नी थी जो धन्यजों में परिगणित है। यह महिमा भक्ति-भाव से मोठ-मोठ की घोर पति क पर-बिहूँ पर बसते हुए सन्त बनी। पद्य-नाम्य के रूप में प्रचुर भक्ति-साहित्य का निर्माण इन्होंने किया है। जोशामेता जन महाम् हरिजन सन्तों में से हैं जिनका सम्मान आज तक है। यद्यपि सन्त सोमराबाई ने अनेक कविताओं की रचना की किन्तु धर्म केवल उनकी ६२ कविताएँ ही ज्ञात हैं। उनकी गिता है 'दोप केवल कामा में जगता है धारता तो सब ज्ञान स निर्मल रहती है। मानव काया तो पैदा ही गन्धी होती है फिर कोई इसे निर्मल कैसे कह सकता है किन्तु काया की यह मसिनता काया तक ही सीमित रहती है। धारता को यह कमुपवा स्वर्ग नहीं करती। महार जोशामेता की धर्मपत्नी माहरी का यही कथन है।

बहु नियमित रूप से प्रति वर्ष शीम-यात्रा के लिए पण्डरपुर जाती थीं। कट्टर वर्मान्ध ब्राह्मण वर्ग ने इस दम्पति को अनेकों कष्ट दिये किन्तु इन भक्तों की मिष्टा घोर मन-आन्ति में कोई अन्तर नहीं आया घोर अन्ततोरता से उनके धर्याचारों पर बिजयी हुए। जोशामेता के समाधि स्थल मंगलबेडा में उनकी पुष्प स्मृति में पक्की समाधि बनायी गयी है।

जोशामेता की छोटी बहन निर्मला दूसरी प्रसिद्ध सन्त मानी-जाती है। सोमरा घोर निर्मला की क्याति विशेषकर इस कारण भी हुई कि वह सन्त जोशामेता से सम्बन्धित है। माहर जाति में उत्पन्न होनेवाले जोशामेता धारि व्यक्तित्व भी उत्कृष्टतम समाज में इतने प्रसिद्ध सन्त माने जा सकते हैं, इससे स्पष्ट है कि उस समय भी जनता म सहिष्णुता एवं उदारता की कमी नहीं थी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सन्त जोशामेता सांगली के निकट मयलबेडा स्थान पर पैदा हुए जहाँ उनकी समाधि आज भी स्थित है।

दूसरी सन्त महिमा काम्बोनामा एक गर्जकी की पुत्री थी। इनका शीर्षक धर्मीकिक था। जोय चाहते थे कि वह उत्कृष्टतम मुगल सभ्राद् के रतिबाध में स्थान प्राप्त करे किन्तु इस बेबी को यह पसन्द नहीं था घोर अपने को अग्रहायाबम्बा में पाकर वह पण्डरपुर बसी गयीं। जहाँ उसे यह जानने की उत्कृष्टा हुई कि क्या

बिठोबा प्रभु जो रवाना प्रभु माने जाते हैं, उसे अपनी उपासिका के रूप में स्वीकार करे ? उसे बताया गया कि बिठोबा भयवान् उस सहर्ष ग्रहण कर लेंगे क्योंकि वह तो पमानु तथा अनाथों पर कृपानु प्रभु हैं। वह ठा दीन धीर अनाथों के स्वामी धीर एक ही हैं। धन वह मन्दिर सर्वसाधारण के लिए लोभ दिया गया है जहाँ अत्यन्त प्रावि समी बर्ग के लोग जा सकते हैं। यह सब जान लेने पर सन्त कान्होपाभा अपने जन्म-स्थान मंगलबन्धा को छोड़ कर पण्डरपुर बिठोबा मन्दिर में चली गयीं। कहा जाता है कि वहाँ पर सत्कामीन मुगल सम्राट् के सम्बन्धवाहक उग सम्राट् के रनिवास में अपने के लिए बाध्य करने लगे। उसने सन्देशवाहकों से प्रार्थना की कि उसे पहले इष्टदेव के दर्शन करने की अनुमति दी जाये। इनका कहकर यह सन्त महिला बिठोबा प्रभु की मूर्ति का आसितन करके वही निष्पन्न धीर भूमिसात् हो गयी।

प्रभाबाई नामक सप्त महिला विद्यवा थी। वह कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध प्रसिद्ध हैं किन्तु उन्होंने मुख्यतः भक्ति रस की कविताएँ लिखी हैं। इस महिला के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है किन्तु उसकी कविताएँ उपलब्ध हैं।

बहिषाबाई एक धीर सप्त महिला प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म सन् १७०० ईस्वी में।

सप्त बहिषाबाई के पश्चात् जिसका पर्याप्त साहित्य अब भी उपलब्ध है एक पुत्री सप्त महिला हुईं जिनका नाम बेजाबाई था। यह महिला सप्तहृषी प्रतापी के मदास सप्त समर्थ गुरु रामबास की शिष्या थी। बेजाबाई बेजा स्वामी रामबासी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनका गुरु रामबास के प्रति ऐसा अनुराग धीर एनी निष्ठा थी कि उसके कारण इन्हें अपने मातृभूत में अन्न-मातनाएँ सहनी पड़ीं क्योंकि उन्होंने इन दोनों परिवारों को गुरु रामबास की भक्ति के कारण छोड़ दिया था। अनुमानतः यह १६२० ईस्वी में पैदा हुई थी। रामदासी साहित्य के प्रभु सत्यान-विरोध भी भीष्मक देव ने इन सप्त महिला के बारे में उल्लेख किया है। नि-सग्देह यह बेबी समर्थ गुरु रामबास की अनन्य उपासिका थी क्योंकि रामबासी स्वयं एक उल्लेखकोटि के सन्त थे। उन्होंने बासबोध तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों की रचना की है।

एक धीर सप्त महिला रामबास सम्प्रदाय की बयाबाई उपनाम बयाबाई रामबासी हुई हैं। यह महिला ८४ वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। यह बड़ी प्रख्यात थी। इनका एक शिष्य मिरभर था। इनको उर्दू धीर मराठी शान्ति भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था। इन्होंने प्रभु की भक्ति धीर उनकी प्रसंगा में बहुत-सी उर्दू कविताएँ लिखी। इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है।

परिच्छेद ६

## बहिणा बाई

समय की विप्लव बचतिका उन्नी धीर विरस-मथ पर लगभग तीन पाठाप्यी पूर्व सन् १९२८ में बहिणा बाई का जीवन-चरित्र प्रकाश में आया। सुप्रसिद्ध एमोरा की गुलामों वाले शेर बेइम के निकट देवगांव से यह जीवन-कथा आरम्भ होती है। यह स्थान देवताओं की नगरी कहलाता है। शिव नदी पास ही बहती है। स्नान के लिए यह स्थान अन्य पवित्र तीर्थ-स्थानों के समान ही महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए इसे सज तीर्थ के नाम से पुकारा गया है। महर्षि धर्मस्य ने बरदान दिया था कि 'स तीर्थ' पर धाकर स्नान-पूजन आदि करने वाले मकतगम धरणी मनो वासित सिद्धि प्राप्त करेंगे।

इसी देवगांव में धाऊजी कुसकर्णी नामक एक ब्राह्मण रहता था। यह सीमा-शाखा किन्तु साम्यवादी व्यक्ति था। उसकी पत्नी जानकी बाई एक सद्गृहिणी थी। इस दम्पति के कोई सन्तान न थी। सन्तान-प्राप्ति के लिए ब्राह्मण-दम्पति ने सज तीर्थ पर पूजन किया।

इसके फलस्वरूप धाऊजी को तीन बार स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न में उन्होंने ऐसा कि एक पूज्य ब्राह्मण उन्हें दो पुत्र धीर एक पुत्री का आशीर्वाद दे रहा है। एक घाम में ही धरणी सन् १९२८ में उनको एक कन्या-रत्न प्राप्त हुआ। कन्या का नाम बहिणा रखा गया।

हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार कुस-पुरोहित विद्वेश्वर ने कन्या की जन्म कुशुभी बनाई धीर भविष्यवाणी की कि यह बहुत भाग्यवान होगी। बहिणा धरणी केवल चार वर्ष की ही थी कि उसकी सयाई कुसकर्णी-परिवार से सम्बन्धित बंगालर पाठक नामक ३० वर्षीय व्यक्ति से कर ली गई। बंगालर पाठक शिवपुर में रहते थे।

चार वर्ष धाम्निपूर्वक बीत गए, किन्तु कामाखर बहिणा के पिता पारिवारिक सम्पत्ति के क्षय में पड़े गए धीर इसके फलस्वरूप परिवार को घरीबी तथा पारिवारिक कलह के कुपरिणाम भुगतने पड़े। बंगालर उसकी सहायता के लिए आए। उन्होंने सोच-विचार कर यही निर्णय दिया कि ब्राह्मण दम्पति के लिए गोप छोड़ कर धर्म्य बने जाने के प्रतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आखिरकार

एक दिन रात के समय घाऊनी परिवार ने बेबगॉब छोड़ दिया। उन्होंने रास्ते में बड़ी कठिनाइयाँ सही। यहाँ तक कि उन्हें मिछा भी माँगनी पड़ी। कहा भी तो गया है—सर्घाई का मार्ग सहज-सुखम नहीं होता। अपनी माभा में इस परिवार ने कई तीर्थ-स्नानों के दायम किए और पवित्र नदियों में स्नान किया। जब कभी वे किसी पवित्र स्थल पर जाते तो बहिषा यार्ई को बड़ा सुख मिलता था। महाराष्ट्र की बाराबसी पंढरपुर में वे पाँच दिन ठहरे। भगवान् पाश्चुरंत की प्रतिमा को बेच कर बहिषा को बड़ा सुख मिला। इसके उपरान्त वे भगवान् शिव की चरच-रज से पवित्र हुए महादेव बन को गए। ब्राह्मण होने के नाते वे भोग भिक्षा में पकाया हुआ भोजन नहीं ग्रहण करते थे। केवल घन बिना पकाया ही सेते थे। इस प्रकार बसते-बसते वे रहिमत-पुर में यशने के लिए विद्यम हुए। सीभाम्य से गाँव का पुजारी कहीं गया हुआ था भत गंगावर को उसकी धनुपस्थिति में पुजारी का काम सौंपा गया।

बहिषा घन प्यारह वर्ष की थी किन्तु उसे सामु-संन्यासियों के प्रबचन सुनना तथा उनका उत्सर्ग करना बहुत रचिद्ध लगता था। पडोस की बड़कियाँ जब उसके साथ सेमने को घाठीं तो वेकती कि वह प्रनु का चिन्तन कर रही है। सपता था कि पूर्व जन्मों में ईश्वर-प्राप्ति के यत्न से धतुप्त बहिषा अपने इस जीवन को ईश्वर के ध्यान में बिताना चाहती थी। ईश्वर प्राप्ति की इच्छा ही उसके लयसे बड़ा सेल था।

गाँव के पुरोहित के बाराबसी से लौटने पर गंगावर को अपने लव-प्राप्त काम से छुटकाय मिस गया। घन कमाने का और कोई मभा गंगावर को नहीं मूझता था। तब यह परिवार सुप्रसिद्ध बामिक स्थान कन्ह्यापुर गया। यहीं से बहिषा की जीवन-माभा धारम्भ होती है।

कास्हापुर में ब्रह्म मट्ट नाम का ब्राह्मण रूठा था। जम बेद और शास्त्रों का बहुत ज्ञान था। उसने बया करके घाऊनी परिवार को घाभय प्रदाय किया। ब्रह्म मट्ट के मकान में रहकर पुराय की कबा सुनने तथा हरि-कीर्तन का सुप्रबसर घाऊनी परिवार को भी प्राप्त हुआ। इसी नगर में जयराम स्वामी रूठा करते थे जो भागवत पुराय की कबाएँ गाते थे। इनम पौराणिक कबाएँ सुनकर बहिषा के हृदय म पूजन ध्यान धारि की इच्छा बसवती हुई।

किसी पव पर ब्रह्म मट्ट को एक गहरे काने रंग की गऊ दान में मिसी। उसके सीब मुसम्मा से मड़े हुए थे। नुरों पर बारी बड़ी हुई थी। उसकी पीठ पर पीसी रेधमी मूल पड़ी हुई थी। तात्कालिक दान की परम्परा के धनुगार यह विधिष् मेट थी। इस गऊ ने एक बाला बघड़ा भी बिया। बघड़ के जम के हस दिन

बाद बहू मट्ट को मन में यह विचार धाया कि वह यह गऊ गंगाधर को दान कर दे। मस्तू, जतने गऊ दान कर दी। गऊ को पाकर ब्राह्मण परिवार बड़ा प्रसन्न हुआ। बघड़े को बहिष्ता से बड़ा प्रेम हो गया। वह जहाँ भी जाती बहूड़ा उसके साथ जाता। यहाँ तक कि बहूड़ा जाउ-मानी भी बहिष्ता के हाथों ही काटा-मीटा था। जब वह बाल मरने वाली बघड़ा रैमता धीरपूज उठा कर बहिष्ता के साथ हो गया। बहिष्ता अपने इस बघड़े की प्रत्येक बात उसी प्रकार समझ लेती थी जिस प्रकार कोई बच्चा अपने पालतू पशु की भाषा समझ सकता है। यदि हम में धवाध प्रेम हो तो हम किसी भी पशु की भाषा समझ सकते हैं। बहिष्ता को पता चल गया कि बघड़े को कीर्तन के प्रति यत्ना-सी है, क्योंकि जब कभी भी वह कीर्तन में जाती बहूड़ा उसके साथ जाता था। वह इस संस्यं में बहुत सावधानी से बैठा रहता। छिटी को भी बघड़े के कारण कष्ट नहीं होता था। विचार करने के उपरान्त बहिष्ता धीर धन्य मकत-जनों में यह मान लिया कि बघड़े में किसी योग-घट्ट व्यक्ति की धारणा है।

कोल्हापुर में जयराम स्वामी का कीर्तन बहुत जनप्रिय हो गया था। बहिष्ता कीर्तन में भाग लेती थी। वह धीर उसका बघड़ा मगर मैं बर्बा का विषय था। बघधि उसका पति मक्ति भावना रखने वाला व्यक्ति था किन्तु वा स्वभाव का बराबर। उसकी पत्नी की समझ में बर्बा ही यह बात उसे सझ न थी। ऐसी ही बर्बा सुमकर एक दिन उसे बड़ा क्रोध धाया। वह दीड़ता हुआ घर गया धीर बहिष्ता के बाल पकड़कर उसे बहुत मारा। बहिष्ता को बहुत दुःख हुआ। दान धीर उसका बघड़ा भी रैमने लगे। बहिष्ता को केवल म्याहू बर्ष की बालिका थी अपने ३७ वर्षीय पति का विरोध कैसे कर सकती थी। वह सोचने लगी कि धालिर उसने कौम-सा कुछ काम किया है। उसके माता-पिता भी उसके पति को शांत करने में असमर्थ रहे। उन्होंने उसके क्रोध का कारण जानना चाहा। ईश्वर पति ने क्रोधित होकर उत्तर दिया—“जयराम स्वामी की विशेषता क्या है? इति-कीर्तन की इतनी अधिक किम्ता कौन करता है? मैं उसे फिर पीढ़ूंगा यदि उसने दुबारा कीर्तन में जाने के लिए कदम उठाया!” तब से वह धन्य बहिष्ता को मारा-मीटा करता था।

घण्ट में बहू मट्ट से को परिचार का मुँहिया था वह सज्ज नहीं हुआ। जतने एक दिन गंगाधर म घर छोड़ कर उत्काल चले जाने को कहा। इसके बाद घर में लगभग एक पता तक कुछ धाम्ति बनी रही। धनानक गाम का बघड़ा बहुत बीमार पड़ गया। सभी निराश हो गए, उसे बचाने की बहुत कोशिश की गई, उसके धोंठ कड़कड़ा रहे थे। बहिष्ता को उससे बहुत अधिक प्रेम था अतः वह उसके धन्तिम धर्मों



की मयम रही थी। उन अपनी काम-बुद्धि के अनुसार गंगा जगा मानो बछड़ा ईश्वर म प्रार्थना कर रहा है। दूसरे दिन बछड़ा जल गया। बहिष्वा के हृदय पर इस घटना का बहुत बड़ा प्रसर पड़ा। वह तीन दिन तक बंहाव्य पड़ी रही। चौथे दिन उने ऐसा आभास हुआ मानो एक ब्राह्मण उसे जगा कर कह रहा है—“बहिष्वा उठा! विचार करना प्रारम्भ करो! तुम्हारे म ज्ञानोदय हुआ चाहिए।”

जब उमने धार्मिक ज्ञान का देखा कि दीपक जल रहा है। धर्म राशि का मयम था। उमके माता-पिता माई और पिता बरगाण हुए उमके पाम बैठे थे। स्वप्न में जिस ब्राह्मण का बहिष्वा ने देखा था वह पण्डितपुर के पाण्डुरंग क प्रतिश्रिम्भ-भा था। इसके उपरान्त उमकी स्मृति में केवल देवताया और सत्ता की प्रतिमाएँ, उमकी कहानियाँ और पद ही रोप रहे थे। वह महाराष्ट्र के तात्कालिक श्र्याति प्राप्त सप्त तुकाराम के दर्शन के लिए जालामिन हा उठी। उमने यह वापसा कर दी कि तुकाराम ही मर नुठ है। उमम बीजा पाण बिना वह पानी के बाहर पड़ी मछली की तरह उड़पगी।

उसे याद आया कि तुकाराम ने किसी ब्राह्मण की इच्छा रखने क लिए अपनी काम्य-मुस्तक की पाण्डुसिपि गहरे जल में बहा दी थी और ठेक दिन के उपरान्त जब वह पाण्डुसिपि निकाली गई तो ज्यों की त्यों प्राप्त हुई। विभिन्न विचारकों और सत्पुरणों में केवल उम्होंने मराठी भाषा म जल-भाषारण के लिए बेराम्त का सार प्रस्तुत किया। अपने मुक के ध्यान में बहिष्वा फिर धबेठ हो गई। बछड़े की मृत्यु के सप्तहर्षे दिन बहिष्वा ने सप्त तुकाराम के दर्शन स्वप्नावस्था में किए। मन्त्र ने बहिष्वा को पर्वे दिसाठे हुए ‘राम इत्ये हरि’ का मंत्र दिया।

आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के हिन सप्त तुकाराम ने बहिष्वा बाई का पय प्रदर्शन किया। उन दिनों जब उमकी बेतमावस्था थी जयराम स्वामी उस दमने आए। बहिष्वा की धीया के मसीप बैठे-बैठे जयराम स्वामी तनिक बर क लिए समाधिस्थ हो गए। लेकिन ध्यानक ही बहिष्वा ने ऐसा अनुभव किया माना मन्त्र तुकाराम उतते कह रहे हैं “मै स्वामी जयराम ने मिमल धाया ह। बहाँ मैने मुम्हें बया। मुक्ति के लिए तुम्हारी उलकट इच्छा की मै प्रथमा करणा ह। धर महा मत दका। धारम ज्ञान और अनुभूति क लिए मल करा।” उठी प्रकार धनका बार बहिष्वा को मन्त्र की छवि दिनाई की किन्तु धबिधान मागा क लिए यह केवल पागतपन ही था। माग मुक बना कर धार और उमके बार में पुछने-बाचन। कुछ बहिष्वा के मास्त्रिक जीवन क प्रान्तक भी थे। मयापर निर्मय और ईर्ष्यानु स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपनी पत्नी क बार म उम्हक जल-ममूह का घाना जाना

बिनाकुल पसन्द नहीं करता था। वह वह भी पसन्द नहीं करता था कि उस जैसे कर्मकाण्डी ब्राह्मण की पत्नी का मुख तुकाराम जैसा घृष्ट हो। उसे ऐसा लगा कि तुकाराम ने उसके पारिवारिक जीवन की जड़े हिला दी हैं। अपनी पत्नी की शोक-श्रियता धीरे धीरे के सामने अपनी उपेक्षा वह सह नहीं पाता था। पति का महत्त्व स्वामिमान पत्नी की क्वालि के घाने मुकने को तैयार न था। ऐसे घर में जहाँ उसका प्रभाव दिन-मतिदिन सीम होता जा रहा था ठहरना अब उसके लिए असंभव हो गया था।

एक दिन उसने बड़े विनम्र भाव से अपने स्वयं स कहा— “आपकी पुत्री पानी मेरी पत्नी यद्यपि अब गर्भवती है फिर भी मैंने उसे आपके पास धाव देने का निश्चय कर लिया है। मैं अब वीर्य-यात्रा के लिए जाऊँगा। इसका कारण है पत्नी की ईश्वर-भाषि की प्रबल इच्छा तथा तुकाराम मुख के प्रति अनासक्त्यक श्रद्धा। मैं अब नहीं लौटूँगा। मैं अब उसका मुख नहीं देखूँगा। अपनी ही पत्नी द्वारा धनया अपमान सहने के लिए कीम तैयार होया।

अचानक ही विदाई के दिन संभावर बीमार हो गया। वह सात दिन तक ठंड बुखार में पड़ा रहा। उसने न तो भोजन ग्रहण किया और न दवा ही। बहिष्ता रात विम सेवा में रहती। संगावर को बड़ा कष्ट हो रहा था। अन्त में उसे बड़ा वचचाताप हुआ। उसे लगा कि यह धारीरिक कष्ट उसे भयवान् पाष्करन एवं उसके अन्त तुकाराम के अपमान के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में ममवत उसकी आत्मा ही कह रही थी 'तु क्यों मर रहा है? अथवा तु बीधित रहना चाहता है तो अपनी पत्नी को अंगीकार कर से। उसने तेरा क्या विमाड़ा है? वह तो लक्ष्मी ईश्वर-अन्त है। तुम्ह भी उसके साथ मिलकर ईश्वर मन्त्रि में जुट जाना चाहिए। यह अन्वेष्य अन्त बहिष्ता की उपस्थिति में ही मृदा। इसके बाद ही बहिष्ता को बह् चान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसका पति स्वस्थ हो रहा है। संगावर को लगा कि उसका पुनर्जन्म हुआ है और वह हरि की मन्त्रि में लय गया। उसने अपने स्वयं से कहा कि ये बेबलाब मीठ जाएँ तथा उसे धीरे उसकी पत्नी को मन में तपस्या करने की धारणा से।

इस घटना के उपरान्त इस ब्राह्मण-परिवार ने पूजा के निष्कन् बहु नामक तीर्थ-स्नान पर जाकर अन्त तुकाराम के दर्शन की ठानी। वह भी उनके साथ गई। इन्द्रमानी में स्नान करने के उपरान्त उन्होंने अन्त तुकाराम के दर्शन किए। अन्त अन्त समय मन्त्रि में बैठे पूजा कर रहे थे। बहिष्ता को अन्त तुकाराम के दर्शन करके जिन्हें उसने कोम्हापुर में आनाकरसा में देखा था बड़ी आत्ति हुई। दर्शन करते ही उनमें

मावनारमक परिवर्तन हुआ। सभी बन्दुएँ बरसी-बरसी-सी बिछाई देने लगीं। ईश की भावना मिट गई। उसकी बुद्धि स्थिर हो गई और हृदय निष्काम हो गया। उस क्षण का वर्णन करते हुए बहिष्मा ने कहा है कि 'तुकाराम के दर्शन पाते ही मेरा घड़ और सांसारिक व्याभिर्यों का बोझ गल्ट हुआ।'

देह में उसके लिए कौशाजी नामक ब्राह्मण द्वारा भोजन की व्यवस्था का बचन मिला किन्तु घावास की व्यवस्था न हो सकी। माम्बाजी स्वामी से जो पत्रोत्तर में ही रहते थे और बहुत बड़े मकान के स्वामी थे गंगाधर ने स्वामि देने की प्रार्थना की। उन्होंने गंगाधर को बंधे मार कर निकाल दिया। तब वे मन्दिर में यात्रियों के ठहराने के स्थान में ही रुक गए। वहाँ वे बहुत शान्तिपूर्वक रहते और सप्त तुकाराम का हरिकीर्तन सुनते।

माम्बाजी कोषी ईर्ष्यासु और घर्हकारी था। वह अपने को देह का प्रमुख नागरिक समझता था। तुकाराम से जो किसी भी विद्या का ज्ञाता होने का शम्भ नहीं करता था कई व्यक्ति मिलने-जुलने पाते थे। माम्बाजी को यह सब देख कर असन होती थी। उसने गंगाधर और उसकी पत्नी से अनुरोध किया कि वे उसके शिष्य बन जाएँ। इस पर उत्तर मिला कि गंगाधर और उसकी पत्नी तो तुकाराम को अपना गुरु मानते हैं। उत्तर सुनकर माम्बाजी भर्त्सना मरे स्वर में बोला—“धरे! तुम ब्राह्मण होकर भसा भूइ तुकाराम को अपना गुरु कैसे मानते हो? क्या सब गुरु को भी यही ज्ञान प्राप्त हो रहा है? याह रत्नो इसके कारण तुम्हारा पाठि-बहिष्कार होगा” इसके बाद वह इस परिवार का विरोधी हो गया और हर समय गंगाधर तथा उसकी पत्नी को बुरा-भसा बफता रहता। बहिष्मा ने इससे प्रेरित होकर कहा था—“परीला की दृष्टि से प्रमु हमें कई प्रकार से कष्ट भोगने पर विवश करता है।” बहिष्मा का कथन ठीक है। हम यह शक्यत भी देखते हैं। सत्तों और महापुरुषों को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बड़ी परीक्षाएँ देनी होती हैं। तुकाराम को भी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा था।

तुकाराम जैसे भूइ की बड़ती हुई स्याति को देखकर माम्बाजी ने पुता के भप्या की स्वामी को पत्र लिख कर सूचित किया कि तुकाराम जैसे भूइ की इतनी हिम्मत बड़ गई है कि वह मन्दिर में कीर्तन करता है। मन्दिर में ही रहने वाला ब्राह्मण परिवार उसको पुरय मानता है। पत्र में माम्बाजी ने बहिष्मा तथा गंगाधर के नाम का उल्लेख किया और भप्याजी स्वामी से अनुरोध किया कि वे तुकाराम के लिए दण्ड की व्यवस्था करें।

एक बूढ़ बाह्यम का गुह है, यह समाचार प्रगोसा था। ऐसी खबर पाकर भयभीती स्वामी बहुत शोभित हुए। उन्होंने बहिष्ता के परिवार को जाति से बाहर करने की घोषणा की। इसका माम्बाजी ने भयना विरोध जारी रखा और बहिष्ता के परिवार को धांसा दी कि वह किसी भय स्वान को बल जाए।

बहिष्ता के परिवार की दृष्टि से गाय उनके साथ ही थी। एक दिन माम्बाजी ने उन्हें परेशान करने की दृष्टि से गाय चुरा ली। उसने उस गाय को बड़ी निरभ्रता से बांध कर अपने घर के किसी कोने में छिपा दिया। गाय को तीन दिन तक बाध-पानो कुछ भी नहीं दिया गया। यही नहीं वह बंधी गाय को पीठला भी था। बहिष्ता धीरे-धीरे हो गई। गंगाधर ने गाय की सोज के लिए कोई भी प्रयत्न बाकी न छोड़ा। इसका गाय स्वतः तुकाराम को स्वप्न में दिखाई दी और छुटकारे के लिए माचना करने लगी। जब भी गाय को मार पकड़ी धारियक एक रूपता के कारण तुकाराम के घरीर पर सूजन आ जाती।

प्रधानक माम्बाजी के घर में घायल गाय गई। गाय के सोज सहायता के लिए बोड़े और घायल बुझा दी गई। सहायता के लिए नहीं गए धारिमियों ने गाय को धारिण में पकी रैमादे देखा। गाय को बसने से बचाया गया। सोमों ने यह देखकर धारिण्य कि क्या कि जैसे निघाम गाय की पीठ पर है जैसे ही सप्त तुकाराम के सरीर पर भी है। लोग सप्त तुकाराम की तुलना सर्वभ्यापी प्रभु पारुंरंग से करने लगे। सभी बहिष्ता ने एक कन्या को जग दिया जिसका नाम काशीबाई रखा गया। बहिष्ता को ऐसा धामास हुआ कि उसकी कोल से काले बछड़े ने पुनर्जन्म लिया है। वह को जग पर हर मां प्रसन्न होती है परन्तु बहिष्ता अपने स्वभाव के अनुसार उदासी ही बनी रही। उसके मन में विचार आता कि स्त्री होने का नाते का संसार के संसार से छुटकारा नहीं पा सकती और इसीलिए वह मनचाहे धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति करने में प्रयत्न है। उसके बापों और ऐसे सम्बन्धियों और साक्षियों का बेटा पड़ा हुआ है जो धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही जाने जानी वपस्या के विरोधी है। उसके पति यद्यपि बेदामी है किन्तु ईश्वर-प्राप्ति की सच्चा सगन जगमें भी नहीं है। उस विरोधी बातावरण को प्रसन्न समझ कर बहिष्ता धार्मिकता पर उठारू हो गई। उसकी धात्मा देह के बगल में मुक्त होन के लिए धारुत भी। उसे लगा कि धार्मिकता ही उसे मानसिक बेदना से छुटकारा दिला सकेगा। उसका मन होता कि वह नदी के घड़े पानी में डूब जाए भयना बिठा पर बड़ कर मस हो जाए। इस प्रकार जब उसकी बेदना बड़ी तो उसने प्रभु (नि प्रार्थना की—“हे प्रभु! तुम मुझे पति के माध्यम से बिड़ा रहे हो किन्तु मैं गुंहापी भक्ति

नहीं छोड़नी चाहे मेरा प्राण ही क्यों न निकल जाए। प्रभु। मेरी सहायता करने जिससे मैं ज्ञान असुधा द्वारा तुम्हारे निराकार रूप के दर्शन कर सकूँ। अगर व्याकुल होकर मैं आत्मबाध कर भूगी तो जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। इसभाँव अपने बच्चे की रक्षा करो ममबान् !

बहू तीन दिन की समाधि लेता चाहती थी परन्तु ऐसा करने का उसे धनमर ही नहीं मिसला था। एक दिन किसी कार्यवश गंगाधर को पूजा जाना पड़ा। तभी उसे धनमर मिस गया। बहू पटा एक ध्यानावस्था में बैठी रही। उस समय बहू हृदय में श्रीराम का ध्यान कर रही थी और सामने थी बिठोबा की मूर्ति। उसके नेत्र बन्द थे। ध्यानावस्था में उसने देखा कि सन्त तुकाराम उसे कवित्व धक्ति प्रदान कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि 'बहिषा ! यह तेरा सेरहूबाँ और धन्तिम जन्म है। तूने अपनी सभी इच्छामों को पूरा कर लिया है। यही नहीं अपने पिछले जन्मों का प्रतिफल भी मुगठ किया है। अब जिस पुत्र को तू जन्म देगी वह पिछले जन्म में तेरा साथी ही था। उसे सन्त के स्पर्श का आभास हुआ और उसकी इच्छायाँ धिधिम हो गई। उसे ईश्वर की उपस्थिति का आभास हुआ। ऐसी ध्यानावस्था में—जबकि उसकी धारणा कुसी के मार नाथ रही थी—उसने इन्द्रवानी नदी में स्नान किया और मन्दिर में जाकर बिठोबा की मूर्ति का पूजन किया। तभी उसने पाँच कविताएँ लिख कर बिठोबा को अर्पित कीं। काव्य की दृष्टि से ये अक्षरी पद्य ही रचनाएँ थीं।

बेहू छोड़ कर यह परिवार शीघ्र में बस गया। इस बीच बहिषा ने मौन व्रत बारन किया। बहू आध्यात्मिक चिन्तन में इतनी व्यस्त रहती थी कि संसार की बातों की तरफ ध्यान देने की उसे चूर्ण ही नहीं मिसती थी। इन दिनों कोई अस्नेहनीय बटना नहीं बटी। बहिषा का जीवन शान्तिपूर्वक चलता रहा। उसके पति और माता-पिता की मृत्यु कर हुई इसका पता नहीं चलता। सन् १६४६ में सन्त तुकाराम का स्वर्णवास हो गया। बहिषा को जब अपने मुँह की मृत्यु की सूचना मिली तो वह बहुत दुःखी हुई। वह बेहू आई और उसने १८ दिन तक उपवास किया। उसकी मनोकामना, पूर्य हुई। सन्त तुकाराम ने उसे दर्शन देकर घासीबाँद दिया।

उन दिनों महापण्डु उन्नति के दिग्दर्शक पर था। धिबाजी की क्याति दिन दूनी राठ बीगुनी फैस रही थी। बिलास महापण्डु साभ्राज्य की स्थापना में उन्हें तुकाराम और रामदास जैसे आत्मिक नेताओं का सहयोग प्राप्त हो रहा था। बहिषा ने किसी गुभीजन के सहयोग की आवश्यकता अनुभव की। रामदास उसकी दृष्टि के महारामा थे। धन-बहिषा ने रामदास को ही बाँध बाँध दिया किन्तु वे भी १६८१ में स्वर्णवासी

हो गए। इस प्रकार बहिष्का अत्यधिक दुखी हृदय लेकर सीउर लौटी। इसके बाद का उसका जीवन-कर्म प्रज्ञात है। क्योंकि अपने बाद क जीवन में बहिष्का मानसिक इन्द्र और व्याकुलता का अनुभव करती रही थी।

एक बहिष्का जो ७२ वर्ष की थी अपने पीछे मृत्यु की छाया देख रही थी। उसकी पुत्र-वधु इकिमपी की मृत्यु हो गई थी और इकिमपी का पति जिठोबा बब गोबाबरी के तट पर स्थित मुकलेस्वर में अपनी पत्नी का अन्तिम संस्कार कर रहा था तो उसे अपनी माँ का पत्र मिला। उसमें लिखा था— 'तुम शीघ्रातिथी प्रसूत प्राप्ति क्योंकि प्राय से पाँच दिन बाद मेरा अर्पणित अन्त था जाएगा किन्तु तुम्हारे जाने तक मैं उसे आत्मसंयम द्वारा रोके सुपी। पत्र पाठे ही जिठोबा ने गोबाबरी के तट पर बहिष्का की समाधि के लिए स्वाम बुता तथा शीघ्रता से घर लौटा।

उसने बर धाकर माँ को बताया कि स्वप्न में उसने भी उसकी मृत्यु की सूचना पाई थी और ज्यो ही उसे पत्र मिला वह शीघ्र बर लौट आया। समाधि के लिए बहिष्का संभम को परम्व करती थी इसलिए बहिष्का ने कहा— "तुमो मेरे बेटे! हम दोनों ने मिस कर पत बाएह जम्मो में नामिक इत्य किए हैं। तेरहनें जग्य मे तुम मेरे बेटे बने हो। यह मेरा अन्तिम जग्य था क्योंकि मनोकामनाओं का जो पुनर्जन्म के कारण होती है मैंने अन्त कर दिया है।" जिठोबा को मृत्युपूर्वका जो पढ़ी बहिष्का बाई का यह कथन सुनकर आश्चर्य हुआ। वह पूछे तरह होश में थी। जिठोबा के लिए अविस्वास की कोई गुंजाइश नहीं थी क्योंकि बहिष्का ने जीवन भर उससे कभी झूठ नहीं बोला था।

"माँ! उसने कहा— "मुझे ठनिक संका है।"

"क्या है बेटे? बोलो।"

"माँ! तुमने मेरे पूर्व-जन्मों का उल्लेख किया पर क्या तुम उनके बारे में सविस्तार कुछ जानती हो?"

"हां बेटे! क्यों नहीं। यद्यपि मैं किसी को भी यह नहीं बताना चाहती थी पर तुम्हारी इच्छा है पत बताती हूँ।" इतना कहकर बहिष्का ने अपने पूर्व-बाएह जन्मों की कहानी कही और बतसाया कि वह तेरहनें और अन्तिम जग्य को कैसे प्राप्त हुई।

जैसे ही मृत्यु का समय निकट आया बहिष्का ने अपने पुत्र से कहा कि ब्राह्मण नुमबा कर बेद संर्ष का पाठ कराओ। एक वह धार्मिक माद को सुन रही थी। मृत्यु के समय होने वाली स्थिति का उन्होंने बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया और अपने बाह-संस्कार आदि के बारे में आदेश दिया।

अपने ठरहूँ जन्म में मोक्ष के लिए कठिन साधना कर सन् १७०० में बहतर वर्ष की आयु में यह भक्त महिला शान्तिपूर्वक स्वर्ग सिधायीं ।

बहिष्ता साधारण कोटि की कवयित्री नहीं थी । उनकी आत्मकथा कविता में है । अपने गुरु तुकाराम के समान उनकी धैर्य भी बड़ी स्पष्ट किन्तु सार समित थी । तुकाराम के समान इन्होंने भी 'धर्मग' छन्द का प्रयोग किया था । सहाज मुसम वाच-प्रवाह पद्य उनकी कविता का परिचायक है । आत्म ज्ञान जीवन धर्म सद्गुरु; सत्यवृत्ति ब्राह्मणत्व भक्ति आदि उनकी कविता के विषय थे । उनके काव्य में बरेलू और आरिथिक शिक्षाएं भी हैं जिससे सामान्य पाठक बड़ी प्रेरणा प्राप्त करते हैं । आध्यात्मिक चिन्तन के लिए धार्ययिक समाज और सांसारिक पदावर्षों के प्रति उपेक्षा के कारण इस महिला के पारिवारिक जीवन के बारे में बड़े घनोबे विचार हैं । पत्नी के कर्तव्यों पर तो इनके विचार उत्प्रेक्षणीय हैं । इन्हीं विचारों में तीन ही सप्त पहले की भारतीय नारी की रक्षा का सबीब विषय हो जाता है । उन दिनों पत्नी का पति से परे कोई महत्त्व नहीं था । बहिष्ता कहती है कि 'एक कर्तव्यपद्ययथा पत्नी अपने पति और धर्म दोनों के प्रति समान रूप से जानरुक रहती है । ऐसी पत्नी तो स्वर्ग को अपनी मुट्ठी में रखती है । कर्तव्य परायणता पत्नी बड़ी है जिसके मन में श्रेय और घृणा का कोई स्वान नहीं है जिसकी ज्ञान का समर्थ नहीं है जो कुटुम्बों से बचती है और आशाकारिणी है जिसने काम-वासनाओं पर नियंत्रण कर लिया है जो सामुग्रो की सेवा के लिए सबैव तैयार रहती है और बिना किसी घानाकामी के पति की आज्ञा पामटी है । ऐसी पत्नी अपने सांसारिक जीवन पर विजय प्राप्त कर स्वयंभाम जाती है । पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह अपने पति की इच्छा की पूर्ण सद्भावना से स्वीकार कर अपनी गृहस्त्री को सुखमय बनाए । ऐसा करने में चाहे उसकी मृत्यु ही क्यों न हो जाए, परन्तु उसे इन बातों का उन्मौदन नहीं करना चाहिए । ऐसी स्त्री उसकी जाति और उसका परिवार धन्य है ।'

बीसवीं शताब्दी की महिलाएँ, जो स्वतंत्रता और समाजता के लिए पुरुषों से लयक रही हैं इत प्रकार के विचार सुन कर मुंह बिचकाएँगी किन्तु बहिष्ता आई ने यह सब बेचान्त से प्रभावित होकर तात्कालिक समाज के धनुष्य चरित्र-निर्माण और जन-सेवा की भावनाओं की शिक्षा देने की दृष्टि से कहा था । इसलिये उनका जीवन-चरित्र जहाँ हमें धार्मिक सिद्धान्तों की गिदा देता है वहाँ जीवन को सुखमय बनाने का मार्ग भी सजाता है ।

## गौरीबाई

भारतवर्ष में महापुरुषों और सत्तों की बीबनियाँ लिखने की प्रथा नहीं रही। राज-बरबारी नबि राजाओं के बन-बैनब और बीरता के यद्योगाम में कबिताएँ और पुस्तकें मिलते रहे हैं। परन्तु ये रचनाएँ बड़े-बड़े पुरस्कार पाने के सोम से प्रेरित होकर लिखी जाती थी। यद्यपि इनमें बस्तु-स्थिति तथा राजा-महापुरुषों के गुणों के प्रतिशयोक्तिपूर्ण विवरण ही अधिकतर पाए जाते हैं वास्तविकता कम। सत्ताओं के जीवन-चरित्र और वातावरण का समर्थ चित्रण नहीं मिलता। मुसलमान शासन-काल में मुसलमान लेखकों द्वारा जो ऐतिहासिक जीवन-चरित्र लिखे गए हैं उनसे उत्कामीन जीवन और शासन-म्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है किन्तु सत्तों के जीवन-चरित्र के बारे में जो भी ज्ञान प्राप्त होता है उसका आधार किंवदन्तियाँ तथा बँध-बरम्परासुगत जमीन ही रही कहानियाँ ही हैं। यह सीमाम्य की बात है कि गुजरात की सत्त कन्नयित्री गौरीबाई के विषय में जो कुछ भी जानकारी प्राप्त हुई है वह उसके जीवन-कालों और कृतियों के बहुत निकट है कपोल-कल्पित सपना निरन्तर नहीं। कारण यह है कि यह सत्ताधी में जब उसकी बीबनी लिखी गई तब गौरीबाई के दो सम्बन्धी स्वयं उपस्थित थे और उन्होंने अपने सत्त पूर्वजों से सम्बन्धित कुछ बातें बताई थी। किन्तु फिर भी वैसे कि हर देश के सत्तों के विषय में होना थाया है हमारी सत्त कन्नयित्री की बीबन-माया में तथ्यों के साथ कुछ किंवदन्तियाँ भी जोड़ दी गई हैं। फलतः उसके चरित्र का वास्तविक चित्रण दुन्दुर् हो गया है।

गौरीबाई का जन्म संवत् १५१५ (सन् १७१६) में गिरिपुर (जिसे बृंगपुर भी कहा जाता था) में हुआ था। वह त्याग राजपूताना और गुजरात प्रदेश की सीमा पर स्थित नगर में है। वह, बदनगर नगर गृहस्थ जाति की थी। यह गुजरात की प्रमुख जाति है जिसकी स्त्रियाँ भी पद्य-प्रतिष्ठत सुधिसिध होती हैं। इस जाति को यह गर्व है कि इसमें कारखी तथा गुजराती के विषय साहित्यकार उत्पन्न हुए जो हिन्दू और मुसलमान शासन-काल में उच्च पदाधिकारी रहे।

गौरीबाई के माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं किन्तु यह निश्चित है कि उनके एक बहन थी जिसका नाम धाम्पु था। धाम्पु का पूतर्गकर नाम का पुत्र तथा



घातुरी और जमुना का पुत्रिया थीं। इनमें से घातुरी विवाह के दो वर्ष पश्चात् विधवा हो गई। जमुना का विवाह ब्रह्मचर नामक सम्मन से हुआ और उसके तीन सन्तान थीं—दो पुत्र प्रभासंकर और ब्रह्मचर तथा एक पुत्री तुलजा। तीनों में प्रभासंकर ने ममकुंवर से विवाह किया। प्रभासंकर के दो पुत्र यमताम और कृष्ण नाम हुए जो बंगाल में रहते थे। इसके पश्चात् ११वीं सताब्दी के उत्तरार्ध में गुजरात में भी कुछ समय तक रहे। सन्त गौरीबाई की जीवन की कृतियों के बारे में मिलने के लिए मेराक ने इनसे विस्तृत विवरण प्राप्त किए हैं।

सत्कामीन प्रभासंकर के अनुघार बालिका गौरीबाई का विवाह ५ या ६ वर्ष की अवस्था में ही निश्चित हो गया था। विवाह के चार दिन पहले बालिका की धाँस धा गई और धाँसों पर पट्टी बाँधी पड़ी। विवाह-कार्य भी इसी अवस्था में सम्पन्न हुआ। किन्तु बालिका गौरीबाई का मामू ने साह नहीं दिया। विवाह हुए घण्टी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि घर को किसी मयंकर बीमारी ने घा बेरा और वह कुछ बंटों में ही मृत्यु का शिकार बन गया। सारा घर दुःख-सागर में डूब गया। परिवार के कष्टों की कोई सीमा नहीं थी परन्तु गौरीबाई न ता माता बाल्यकाल से दुःखों से डार मानना नहीं सीखा था। जब भी कोई सम्मन्धी उसके पति की अवस्था मृत्यु पर सहाय्यभूति प्रकट करने आता तो वह तुरन्त कहती— 'मेरा तो पति मेरा परमात्मा है। उसी के चरणों में मेरा जीवन अर्पित है। ऐसी अवस्था में प्रकथित रीति-रिवाजों के अनुघार गौरीबाई अपने माता-पिता के साथ रहने लगी।

गौरीबाई चौंसठ-काल से ही बड़ी चतुर बालिका थी। उन दिनों बालिकाओं की विविध विद्या के लिए कोई पाठशाळा नहीं थी किन्तु इस बालिका ने प्रत्येकाल में ही घर पर ही पढ़ना-लिखना सीखा लिया। जैसा कि युवती विधवा के लिए उचित समझा जाता था गौरीबाई जब अपना समय गृह-व्यवस्थाओं की पूजा करने मधवद-मन्त्र गाने और धार्मिक साहित्य के स्वाध्याय में व्यतीत करती। सर्वसक्तिमान परमेश्वर में समझी अटूट यथा थी। वह ईश्वर की आराधना में कबिताएँ मिलाने लगी।

हिन्दू समाज के उच्च वर्ग में यह उचित नहीं समझा जाता था कि विधवा पुनर्विवाह करे। उनसे यही आशा की जाती थी कि वह पवित्र बालिका जीवन व्यतीत करे। तेरह वर्ष की बाल्यावस्था में ही गौरीबाई ने यह धर्मीमूर्ति समझ लिया था कि उन परिस्थितियों के अन्तर्गत यही अर्जुन था कि वह किसी भी संघर्ष में न रह कर धार्मिक कार्यक्रम में लक्ष्मी रहें। वह अपना समय प्रायः घर के भीतर ही 'इत में लगाई का धर्मिण्य।

गुजराती घोर सर्वत्र धार्मिक पुस्तक पढ़ने में तथा प्रभु भक्ति में सर्गी रहती। मिररिपुर में उस समय राजा शिवासिंहजी राज्य करते थे। वे बड़े कठम्यपरायण विद्वान घोर सदाचारी राजा थे। इन्होंने अपने राज्य में जनता को सब धन्यामयुक्त करों से मुक्त कर दिया था। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि व्यापारी विभिन्न माप तोस की प्रथासिमा अपना कर जनता का धोषण करते हैं तो उन्होंने इस कुप्रथा का अन्त करने के लिए राज्य-भर में एक निर्धारित माप-तोस की प्रथासी "सिख साह तोस" नाम से प्रचलित की जो आज तक बड़ा नाम है। इस ब्याप्तु राजा ने अपने कोष का सब जन-कल्याण के कार्यों में व्यय किया हुए घोर तालाब बनवाए, घण्टियों के लिए निःशुल्क विद्यामन्त्रालय घोर मन्दिर धारि बनवाए। इन परोपकारी कार्यों के लिए इस राजा को धाज भी लोग भद्रा से स्मरण करते हैं।

राजा ने जब गौरीबाई के पवित्र बीजन की क्पाति सुनी तो वह उसके बर्चानामें उसके निवास-स्थान पर स्वयं गया। धार्मिक बाद-बिबाद करते हुए राजा गौरीबाई के बर्म सम्बन्धी ज्ञान घोर धार्म्यात्मिक प्रकृति से बड़ा प्रभावित हुआ। इस सन्त महिमा की भद्रा भक्ति घोर पवित्रता का राजा पर इतना महत्त्व प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसके प्रति भद्रा प्रकृत करने के लिए उसकी प्रतिष्ठा में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कर उसके पास एक बावसी भी बुदबा ही। गौरीबाई अपनी समस्त प्रतिभामें घोर ध्यामन्त्रित इस मन्दिर में ले गई घोर संवत् १८३६ में

माम कृष्णा पष्ठी के दिन बड़ी बुमबाम से पवित्र धार्मिक समारोह सम्पन्न हुआ। धम गौरीबाई ने अपने घर का सरा के लिए त्याग कर मन्दिर में रहना प्रारम्भ किया। उसके बीजन का एकमात्र उद्देश्य भगवद् भक्ति थी। उसकी विचारा मीची बाबुपी भी उसी के पास रहने लगी। कुछ समय पश्चात् उसकी बूखपी भी लगी जमुना घोर एक धम्य बूडा हरियम जो उसके सम्बन्धियों में से थी भी वहाँ आ गई। गौरीबाई बड़ी भद्रा घोर परिश्रम से उस पावन स्थान को साफ-सुधरा घोर प्राकल्प का केन्द्र बनाने में लगी रहतीं। जब उसकी क्पाति सर्वत्र फैल गई थी। दूर-दूर से सन्त विद्वान् घोर भक्त बाजियों की भीड़ बहाँ घाने लगी। धार्मिक बाद-बिबाद होते रहते घोर गौरीबाई के धार्म्यात्मिक ज्ञान की बुद्धि होने लगी। एष बाधायरण को पाकर गौरीबाई की नैतिक प्रतिभा को काव्य-रचना की प्रेरणा मिली। जब वह धार्मिक कविताएँ लिखने में व्यस्त रहतीं।

राजा शिवासिंह जी ने मन्दिर में मिश्रुपों के लिए सदाबत खोल दिया था। सद्मों मिश्रु बहाँ उस दाज से साम जटाने के लिए एकत्र होते। एक बार एक घानी नामु बहाँ धाए। वह गौरीबाई की भद्रा भक्ति तथा ज्ञान से इतने प्रभावित

हुए कि उन्होंने ये शब्द कहे 'हे देवी ! तुम तो बस्तुतः भीरा की शाखाएँ बनती हो । भीरा मद्यपि महान् भक्त थी परन्तु उसमें ऐसे ज्ञान की कमी थी जिसका एक महान् सन्त में होना आवश्यक है । तुम्हारा जन्म उस कुटि की पूर्ति के लिए हुआ है । मेरा भ्राना भी कदाचित् इसी उद्देश्य को लेकर है । मैं तुम्हें इस विद्या में आवश्यक और भक्तिरिक्त ज्ञान देना चाहता हूँ ।" परन्तु वह उसे प्रसन्न से गए और ब्रह्मज्ञान तथा आत्मज्ञान की शिक्षा दी । इस सन्त ने महिमा को उस पद का प्रदर्शन करवा जो एक सच्चे सन्त के लिए अभीष्ट है । उन्होंने उसे बालमुकुन्द (बाल कृष्ण) की प्रतिमा लेकर सेवा के लिए बिदा भी ।

बैते-बैते गीरीबाई के धार्मिक ज्ञान की वृद्धि होती गई वह धार्मिक मोह-माया से विमुक्त होती गई । कहा जाता है कि कभी-कभी यह महिमा समाधि में ऐसी जो जाती कि पन्द्रह दिन तक अनचल रही भवत्वा में रहती और इस अवधि में भ्रम-बल भी नहीं छूटी थी । उस ध्यानावस्था में वह ऐसी जो जाती थी कि उसे अपने पास-पास के वातावरण की अनुभूति ही न रहती और वन कमरे में बैठी रहती ।

इसका उत्सव जाता है कि बृद्ध हरियन को जो अब गीरीबाई ने साध रहे सती थी इस बात की खबर हुई कि क्या गीरीबाई की समाधि केवल स्वयं मात्र थी और इसमें आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य का प्रश्न है । इस सत्य की परीक्षा लेने के लिए एक बार जब गीरीबाई समाधि में गयी थी तो बृद्ध हरियन चुपके से उसके पास गई और उसके शरीर में सुइयाँ चुभानी शुरू कीं किन्तु गीरीबाई उस से मस नहीं हुई । इस पर क्रुमटा हरियन सन्त महिमा के शरीर में सुइयाँ झाड़ कर स्वयं भाग गई । समाधि की अवधि पूर्ण होने के बाद जब गीरीबाई को आसुरी स्नान करा रही थी तो उसके शरीर में सुइयाँ देकर शक्ति रह गई । जब पूछताछ प्रारम्भ हुई कि अपराधी कौन है ? किन्तु किसी ने इस पाप-कर्म को स्वीकार नहीं किया । इतिहासकार के कथनानुसार कुछ समय के बाद कुछ रत्न के रूप में इस मुकुन्द का उपयुक्त बन्ध क्रुमटा हरियन को मिला । उसने जब गीरीबाई के चरणों में गिर कर पश्चात्ताप में पाप स्वीकार करके हुए क्षमा-याचना की । सन्त महिमा बड़ी उत्तरा हृदय और क्षाम्य थी । उसने उसे क्षमा करते हुए कहा—“जामो तुम रोप से मुक्त हो जाओगी केवल कुछ रोप के शय मात्र रह जायेंगे ।

जब सन्त गीरीबाई को भविष्यवाणी करने का भय प्राप्त हुआ गया । बड़ा भक्ति तथा धार्मिक ज्ञान में वृद्धि हो जाने से उसकी काम्य प्रतिभा में भी वृद्धि हुई । कहा जाता है कि उसने हजारों भक्तिमय कविताओं और गीतों की रचना की ।

बाह्य सौन्दर्य के भक्तिरिक्त उम सन्त महिमा का व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक

था। उसने सब सांसारिक सुखा और ऐश्वर्यों का त्याग कर अपना साठ समय पूजा पाठ और ज्ञान-बुद्धि में लगाता प्रारम्भ किया। युववती दमानु और बुद्धिमती गौरीबाई बड़े संयम से रहती और किसी भी स्थिति में और बड़ी से बड़ी प्रकोपक बात पर भी क्रोध में नहीं आती थी। जैसा कि ब्रजबद्ध-भक्तों के लिए उचित समझा जाता था वह सब भीषी निपाह किए बैठती किन्तु जब भी कभी किसी भयंकर पर वह नेत्र उठती तो देखने वाले उगड़ी धाँसों की ज्योति से बिस्मित हो जाते। वह स्वच्छन्द-वैत ब्रह्म धारण करती और उसका एकमात्र धामभूषण था पवित्र तुलसी के मन्त्रों। समाधि के कारण उसने सब कोई भी ठोस भोजन सेना बन्द कर दिया था और केवल दूध ही उसका आहार था।

सन् १८६० (सन् १८०४) तक इसी प्रकार गौरीबाई ने अपना जीवन बिताया, उत्पन्नतात् उसने अपना शेष जीवन पवित्र स्थान ब्रजभूमि (गोकुल और बृन्दावन) पर बिताने का निश्चय किया। राजा को जब यह सूचना मिली तो यह स्वयं मन्दिर में आए और सप्त महिला से गिरिपुर में ही रहने की प्रार्थना की। यहाँ तक कि राजा ने उसे बहुमूल्य पुरस्कार भेंट करने का बचन दिया किन्तु गौरीबाई इन प्रभावनों में नहीं आई और अपने निश्चय पर दृढ़ रही। प्रसन्न प्रतिभा की पूजा का कार्य-भार किसी योग्य साधु को सौंप कर अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा को साध लेकर उसने अपनी माँजियों के संग बृन्दावन की ओर प्रस्थान किया।

जब यह टोमी जमपुर के निकट पहुँची तो वहाँ के राजा स्वयं उसके स्वागतार्थ आए, क्योंकि उन्होंने इस सप्त महिला की ख्याति पहले ही सुन रखी थी। इन महिलाओं का राजकीय-धार्मिकों की तरह स्वागत हुआ। जमपुर की महारानी भी इस सप्त का दर्शन करन आई और उनके चरणों में पाँच सौ विभिन्न धर्मों की किन्तु गौरीबाई ने इस राजकीय भेंट की स्वीकार नहीं किया और कहा कि वह तो एक संन्यासिन हैं जिसे इन सांसारिक उपहारों की आवश्यकता नहीं। राजा-रानी के आग्रह पर उसने वह भेंट स्वीकार कर ली तथा उस उरी समय अपने एक अनुयायी को लेकर घोड़े पर बैठा दिया कि इसे याम्य ब्राह्मणों में बाँट द।

जमपुर का महाराजा गौरीबाई के संयमित स्वभाव और विद्वत्ता से बड़ा प्रभावित हुआ। इतना होने पर भी वह सप्त महिला की भयंकरता के साथ वाचस्पत्य की परीक्षा सेना चाहता था क्योंकि उसने सुन रखा था कि वाचस्पत्य देव गौरीबाई के सम्मुख घनक बार प्रगट हुए हैं। कहा जाता है कि राजा ने अपने व्यक्तिगत मन्दिर के पुरोहित को आदेश दिया कि वह गोविन्द जी की प्रतिमा को लूट जवा कर धार बन्द कर दे। तब उसने गौरीबाई को निर्भय कर मन्दि

के बाह्य भाग में पवित्र भागवत पाठ सुनने के बहाने बिठाया। बाठ समस्त होने पर राजा ने अपनी इच्छा व्यक्त की कि वह उसकी परीक्षा लेना चाहता है और गौरीबाई से प्रार्थना की कि वह यह बताएँ कि मन्दिर में स्थित मूर्ति की बेधभूषा और धामुषण कैसे हैं? गौरीबाई को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ और उसने कहा कि वह भी भय सब की तरह नरेश्वर प्राणी हैं और किसी घसाधारण शक्ति होने का उसे कदापि कोई भान नहीं किन्तु संबंधितमान मगधान् अपने भक्तों पर सर्वत्र दया करते हैं और मेरी भी इस स्थिति में सहायता करेंगे। उस उसने ध्यानमग्न होकर एक प्रार्थना रखी और उसे पाने लयी। कहा जाता है कि इस कविता में सप्त महिला ने उस प्रतिमा की पूजा कथमूपा और धामुषणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और कहा—“मूर्ति केवल नहीं है कि स्त्रि पर मुकुट नहीं है।” यह सुनकर राजा तथा अन्य सभी यत्नामग्न बड़े आश्चर्य-चकित हुए क्योंकि धीरे-धीरे की मूर्ति कभी मुकुट के बिना नहीं रखी जाती थी। जब मन्दिर का द्वार खोला गया तो चिहित हुआ कि मन्त गौरीबाई का कहना घसरल सत्य था। बन्धुत मुकुट मूर्ति के मिर से चिम्प गया था क्योंकि पुरोहित ने उसे मानवानी स मही रखा था। इस पर राजा को भयान्त दुःख हुआ और उसने तत्काल ही क्षमा याचना की। इस सप्त महिला के हृदय स तो किमो के प्रति कोई द्वेष मही था घत उसने तुरन्त राजा को क्षमा कर दिया।

राजा ने बहुत अनुत्तर-विनय की कि गौरीबाई जयपुर स उसकी स्थायी प्रतिनिधि बन कर रहे। जिस राजमहल में वह ठहरी हुई थी उसे प्रहल करने का आह्व किता तथा यह भी बताया कि महल की देखभाल का सारा व्यय वह स्वयं करेगा। किन्तु सप्त महिला ने पूर्ववत् उस राजा को संग से इन्कार कर दिया और बुला बन जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। राजा के बार-बार प्रार्थना करने पर अपनी धाराधना की मूर्ति का राजमहल में छोड़ देना स्वीकार कर उक्त राजा स याचना की कि उसकी पधोचित पूजा का प्रबन्ध कर दिया जाए। राजा ने ऐसा करना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मधुरा गाकुल और बुन्दावन में कुछ समय तक रहने के बाद मन्त गौरीबाई अपनी माँजिया के साथ कागी (बारापसी) चली गई। बारापसी के राजा ने भी इस महिला की पवित्रता और भयवद् शक्ति की कहानियाँ सुन रखी थी। उसने सप्त महिला का बड़ा स्वागत किया। यह राजा स्वयं भी ईश्वर-भक्ति की शक्तियाँ रखने में धान्ते सेते थे। घत गौरीबाई और वह प्राय इकट्ठे बैठ कर अपनी रचनाओं के माध्यम से पारिष्कार-विवाद करत। गौरीबाई ने राजा को

ध्यान-मग्न हान की धनेक विधिमा बठाई तत्पश्चात् राजा ने इस मत्त महिला को अपना पुत्र मान लिया ।

राजा मुन्दरसिंह ने गौरीबाई को पचास हजार रुपया स्वीकार करने के लिए बाध्य किया । इस धन में से गौरीबाई ने पन्चीस हजार रुपय बनारस में अपनी ही बिरादरी में हुए कुछ विवादास्पद विषयों को सुलझाने में व्यय किए और शेष धन उसने जगन्नाथपुरी की यात्रा में खर्च कर दिया ।

पुरी की यात्रा समाप्त करने पर गौरीबाई ने काशी में ही अपना घर बनाया । एक बार वह सात दिन धनबन्धु समाधि-धरतला में रूठी और अपनी माँजियों को बताना कि एक उसकी इहसीला समाप्त होने का समय निकट था गया है । उसने जमुना के तट पर अन्तिम श्वास देने की इच्छा प्रकट की जहाँ पुरुषों के धनुषार बालक धनुष ने लप किया था । सन्त गौरीबाई ने भविष्यवाणी की कि उसकी मृत्यु रामदास नाम के जगन्-दिवस रामनवमी के पारवण (पोहार) के दिन होगी । राजा मुन्दरसिंह ने गौरीबाई की इच्छानुसार उसे वही पहचाने का प्रबन्ध कर दिया जहाँ वह अन्तिम श्वास लेना चाहती थी । वहाँ वह कुछ दिन समाधि धरतला में रूठी और तदुपरान्त संवत् १८१३ (१८०६ ई०) में रामनवमी के दिन वह चिरनिश की धमर शान्ति को प्राप्त हुई । उस समय सन्त गौरीबाई की अवस्था ५० वर्ष की थी ।

इस सन्त महिला की विषय शक्तियों पर कोई विस्वास करे मा न करे परन्तु गौरीबाई की सरलता सादगी यथा भक्ति और विद्वता की प्रशंसा किए बिना कोई नहीं रह सकता । गौरीबाई को सर्वशक्तिमान विरबेस्वर की सर्वव्यापकता और विषय-कल्याण में पूर्ण निष्कास था । उसका हृदय सदा था । ज्ञान और ज्ञेय की भावनाएँ उसे छूठक नहीं गई थी । वह भक्ति काव्य था इस सन्त महिला की रचनाएँ मागी जाती हैं उनके जन्म चरित्र का प्रमाण है । उसकी रचनाएँ रचयिता की सांसारिक ऐश्वर्यों से विरक्ति और आराध्य के प्रति पूर्ण आसक्ति से प्रोत्पन्न हैं ।

गौरीबाई की कविताएँ मुख्यतः गुजराती भाषा में हैं किन्तु उसका जन्म स्थान गुजरात और राजस्थान प्रान्तों के सीमांत पर होने के कारण जहाँ राजस्थानी मन्त्रों का समावेश भी है । इस सन्त महिला की कुछ कविताएँ हिन्दी भाषा में भी मिलती हैं । कदाचित् ये गौरीबाई के बृन्धान पोद्दुस और बाराणसी में रहने का प्रमाण है ।

गौरीबाई के एक अनुयायी ने इस मत्त महिला की उपजा पवित्र धैरा माँ से दी है जो उन सब भक्तों को पवित्र करती है जो उसकी धारण में धाते हैं । वह उपमा बस्तुतः बड़ी उपयुक्त है ।

## केरल की कुछ सन्त महिमाएँ

युग-भुगान्तरो से भारत बार्धनिक और धर्म-प्रधान बंध रहा है। मानव सम्प्रदा के लिए प्रेरणाप्रद बार्धनिक भावनामा और धारणों की रेश इस देश के जीवन का वास्तविक स्वस्व है। प्रार्थतिहासिक काल के वैदिक युग से ही ऐसे महान् विचारकों और मनीषियों का जन्म इस देश में हुआ है जिन्होंने विश्व की मानवता के सम्मुख धार्मिक और बार्धनिक धारणों को स्पष्ट रखा है। भगवान् बुद्ध धर्म, शैतन्य और रामकृष्ण धार्मिक मनेक स्वनामधेय महान् मनीषी धर्म और बर्गन के मर्मज्ञ धार्मिक संसार में धपना विशेष स्थान रमते हैं।

प्रारम्भ सही धार्मिक क्षेत्र में स्थियाँ पुरुषो की तरह ही महत्त्वपूर्ण और विशेष स्थान पाती रहीं हैं। उदाहरणतः विश्वनाथ का श्चबेद पर सुकतीष्कारण सर्वप्रसिद्ध है। उपनिषद् युग की विश्वात स्थल-मनीषी कुमारी मार्वी ने तत्कालीन महान् विचारकों की बार्धनिक बाह-बिबाह में पद्यस्थ कर जो पद्य पाया वह सद्यहीम है। बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रयाङ्ग पण्डित ऋषि याज्ञवल्क्य ने जब धपनी धर्म पत्नी मीत्रयी को धपनी समस्त सम्पत्ति सौंप कर संन्यास धारण करने की इच्छा प्रकट की तो धनरकरता के ज्ञान की जिज्ञासु मीत्रयी ने सब धन-सम्पत्ति को हेम बत्ता धिरलतन सत्य और ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। मधुर कोकिमा मीराबाई धपने गिरिधर सोपास भगवान् कृष्ण की भक्त बनी और राजकीय ऐश्वर्य को तिमिरिजि से थी। ये तथा धेय धनेक ऐसी महान् महिमाएँ हुई हैं जो सदा हर सन्ने भक्त की भयदा की पात्र बनी र्हेंगी।

दक्षिण भारत भी इस ढीङ्ग में पीछे नहीं रहा। सन्त धारणास जो स्वयं को धपन इष्टदेय भगवान् कृष्ण की परिणीता कहती थी और उसने तावात्म्य प्राप्त कर चुकी थी इसका एक उदाहरण है। धारणास की धात्म-विमोह कर देने वाली कुछ कविताओं का धेरेखी धनुबाह भोगी कवि धी धरदिकन्द धारा क्रिया गया है।

केरल प्रदेश में धनक महान् धार्मिक नेता र्थी और पुरुष रोगी हुए हैं। रामानुज एमुतञ्चन ने उरक स्तर का धार्मिक साहित्य मयवात्म भावा को किया। महान् भक्त कवि नारायण मट्टित्ठी की महान् रचना नारायणीय भक्तों और विद्वानों के हृदय को भावामिभुन कर बेती है क्योंकि यह पुस्तक भगवद्गीता

की सुन्दर समीक्षा श्रीर ईश्वर भक्ति के बारे में एक अपूर्व रचना है। पुस्तकम् की परमानन्दारमक भक्ति को ठो जतके धाराध्य देव ने स्वयं तत्कालीन नारायण मठस्थिनी की अद्वितीय विद्वत्ता की तुलना में ऊँची बताया है। इन सब महिलाओं के नाम स करल का हर भादमी भक्ति भाति परिचित है।

केरल की जिन महिला सन्तों ने बिष्नेस्वर से तादात्म्य प्राप्त किया उनमें सं तीन महिलाओं का नाम प्रमुख है। चैकराठा घम्मा बरासेरल नैम पेन्नु श्रीर ककर घम्मा। पम्पराघो से बनते आए केरल कुछ फूँकर कृत्तान्त इनके जीवन के बारे में लिखते हैं किन्तु यही कृत्तान्त यह मिश्र करने के लिए पर्याप्त है कि ये महिलाएँ प्रथम भक्ति श्रीर अमनिसलता के प्रेम में मग्न रहीं।

इनमें से प्रथम महिला एक छोटे-से मकान में रहती थी जो चैकोत्तु पर के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। यह मकान ट्रावकोर में तिरुवल्ला स्थान पर स्थित श्रीबस्तम के प्रसिद्ध मन्दिर के पश्चिम में है। इसका वर्णन महान् वैष्णव सन्तों के साहित्य में भी आता है। इस मन्दिर का निर्माण चैकोत्तु के जीवन काल में हुआ क्योंकि तम्मासवार ने भी इसका वर्णन किया है। तम्मासवार ईस्वी सन् की सवी सताब्दी में हुए। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि चैकोत्तु सम्भवतः ईस्वी सन् की अष्टम सताब्दी में रहीं होगी।

वास्तविकता से ही सप्त चैकोत्तु की विष्णु भगवान् में अपार ध्येया थी और वह अपना सारा समय धाराध्य की प्रार्थना और उपासना में बिताती। कृष्ण पक्ष और सुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत बड़ा पवित्र समझा जाता है और वैष्णव मठ बड़ी ध्येया से इसका पालन करते हैं। यह व्रत बिना किसी फल की कामना के रखा जाता है। चैकोत्तु पवित्र एकादशी व्रत वाले दिन एक बूँद पानी भी न पीती। दूसरे दिन स्नानादि से निवृत्त हो पूजा करतीं अपने हाथों भोजन बनाती धाराध्य देव को अर्पित कर एक ब्राह्मण को भोजन खिलाने के बाद स्वयं अन्न ग्रहण करतीं। वह एकदसी व्रत का पालन करते तक करती रहीं। एक बार एकादशी व्रत के प्राणामी दिन नवितन चैकोत्तु को कोई ब्राह्मण भोजन खिलाने के लिए म मिल सका। इस पर परम उपासिका किन्तु-विमुक्त-सी विजुष्ण भी पर अन्तर्गत-गत्वा एकादसी के व्रत का पूर्ण सम्भार के साथ पालन न कर सकने के कारण अपने धामरल अन्तर्गत करने का निश्चय कर लिया। भगवान् विष्णु, जो सब अपने मठों के दुःख-निवारण के लिए तत्पर रहते हैं अपनी भक्ति के सम्मुख एक बड़ा चाली के रूप में प्रकट हुए। धाराध्य के दर्शन या वह प्रेम-पुलकित हो उठी और सुपारी वृक्ष की छाँट में भोजन परोस दिया। भगवान् उद्य मन्तिन् की इस सरसता और



दृढ़ निष्ठा से धरमन्त प्रभावित हुए और प्रसन्नतापूर्वक उनके द्वारा पढाए गए प्रसाद की प्रेयीकार किया। पल्लवनि हाने में पूर्ण भगवान् न उठे मुक्ति का करवाम दिया और उसे सवा के लिए जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर दिया। जब भास-भास के निवासियों को इन प्रसाधारण घटना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने तत्काल ही उसी स्थान पर एक विशाल विष्णु-मन्दिर का निर्माण कर विष्णु-प्रतिमा को स्थापित कर दिया। तिरुवेना-स्थित विष्णु-मन्दिर के निर्माण के बारे में यही किबदन्ती प्रसिद्ध है। उस घटना की स्मृति को चिर-स्वामी बनाने के लिए मात्र भी वहाँ सुपाठी बूझा की छत्र में भाजन परोसा जाता है। इस विधि महिमा की कोई सन्तान भयवा उत्तराधिकारी नहीं था घत उसकी सारी सम्पत्ति मन्दिर की सेवा में समर्पित कर दी गई।

सन्त शैरोत्तु प्रम्या को बुझावस्था में मयवान के दर्शन हुए व सेरिन नैग पण्णु को तो कुमारावस्था में ही यह सीमाप्य प्राप्त हो गया था। तैग पेण्णु का जन्म विष्णु-नितुर के एक प्रतिष्ठित ममयामी ब्राह्मण-परिवार में बड्डकेडुतु इक्षम में हुआ जो कि कोचीन के राजकीय परिवार की यही मानी जाती थी। वीरव काम म ही विष्णु भयवान् के प्रति उसका अपार प्रेम था। वह निरन्तर विष्णु मन्दिर में जाती और अपने इष्टदेव को प्रेम-पूर्वक पूजों की माता पहना कर बापस पर घाटी तो अपने धारम्य के प्रेम में मम दिखाने देती। विन-रत्त धाराप्य की स्मृति में और उन पवित्र नाम की बार-बार भजना और निष्ठा से लेकर जीवन व्यतीत करती। उसके परिवार के सदस्य दया भक्ति और धारावना को नहीं मयल रहे। उनका विचार था कि पेण्णु भयवान्-भक्ति इष्टमिए करती है कि उसकी सांसारिक सुखों की कामना पूरी हो जाए किन्तु मन्त पेण्णु के हृदय में इन स्वार्थी कामनाया का कोई स्थान नहीं था। वह तो अपने धाराप्य की धनय भक्ति और प्रेम से बिना किमी फल की इच्छा किए, धारावना करती।

जब मन्त पेण्णु सुबती हुई तो माता-पिता न उसके विवाह का प्रयत्न किया। जा बर बुना गया वह धरमन्त सुन्दर और बनी था। विवाह के लिए निरिक्त सुभ दिन को सत्रबज से बड़ी उदारता के साथ प्रबन्ध किया गया। तत्कालीन प्रथा के अनुसार बर को बाजे-बाजे के साथ घूमघाम से बज्जत में बधु के घर लाया गया। जब धनुकुस घुम बड़ी निकट आई तो सन्त उपासिका नैग पेण्णु मन्दिर में अपने धाराप्य देव ने पश्चिम बिदा सने आई। उनका हृदय अपने इष्टदेव से पुनः होने के दुःख और विरह-वेदना से व्यथित था कि धर बह निरन्तर अपने पति के घर रहेगी और प्रति 'दूमी को' सावधी उपलब्ध नहीं हुई जिससे उसकी जन्म निधि निवारित की जा सके।

दिन धरत हृदय के उपास्य-देव का धार्मिकता उपसंग नहीं कर सकगी। इस विचार के धाते ही उसके नेत्रों से धनु-बार बह निकली। बड़ी कठिमाई से वह धारम नियंत्रण कर मरिच में प्रविष्ट हुई धीर टूट हृदय से मूर्ति के सम्मुख झुक गई। वह प्रस्तर-मूर्ति की तरह ऐसे सखी की माना उमका बापस दर जान का कोई विचार ही नहीं था—“कल स मैं इस दृश्य से बोधित हो जाऊंगी। मैं अपने धाराध्य के दर्शन बिना कैसे जीवित रह सकती हूँ। मेरी कोई धन्य इच्छा नहीं है न हागी—कमल यही कामना है कि मैं अपने उपास्य-देव के दर्शन कर सकूँ। हे देव! दया करो मैं तुम से गमा जाऊँ। उसकी यह प्रार्थना इतनी सच्ची थीर कृपाजनक थी कि भगवान् भी उसके बनीमूठ हो गए धीर उसकी यह प्रार्थना स्वीकार हो गई। कुमारी पद्म ने बेला कि प्रस्तर की प्रतिमा से भगवान् उसक सम्मुख साक्षात् प्रकट हुए, उसके निकट आए, उसे हाथ से पकड़ा धीर पुन वहीं जाकर धत्तार्थान हो गए। मह बटना सर्वत्र फैल गई। लोगों के आश्चर्य की वस्तुता की जा सकती है। जब वह लहर लर को मिसी तो वह इतना सञ्चित हुआ कि बिना किसी से बिना लिए बहाँ से मास लड़ा हुआ। माता-पिता धन्यार्थस में पड़ गए। धार भी इस बटना की स्मृति में प्रति वर्ष जैम वेणु मसा मगता है। इस मेले का सबसे धार्मिक महत्त्व पूर्ण भाग है सुन्दर बुलुस जिसमे भयवान् लर रूप में सग्न रूप पद्म के लर जाठ हैं। वहाँ भूमिधाम से स्वयं भगवान् को शकत ही जाती है धीर परिवार के धेय सदस्यों को बस्त्र धीर पुरस्कार दिए जाते हैं।

जबकि उपरिनिबधित बोना मन्त महिमाओं को एक मास धरत इष्टदेव के साक्षात्कार हुए धीर धम्म-सरण के बन्धन से मुक्ति मिसी उसी समय हमारी तीसरी धन्त महिला ककर धम्मा का जिसका दर्शन हम इस मेले के धन्त में कर रहे हैं धरने उपास्य-देव बासकृष्ण का निरन्तर साक्षात्कार होता रहता था। ककर धम्मा उन दोनों की मोक्ष प्राप्ति के बारे काफ़ी दिनों तक जीवित रही। वह अपने हृदय के स्वामी का जब चाहे दर्शन कर सकती थी।

सन्त ककर धम्मा एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-परिवार ककर इत्थप की महिषा धी बिचरु बंसज धार भी पाए जाते हैं। ये सोप कोचीम प्रदेश के प्रविष्ट नगर निचूर से चार मील की दूरी पर रहते थे। ककर धम्मा नारणम भट्टविपी धीर पूष्ठानम की प्राय समकालीन वयावृद्ध धी जिनका जन्म सत्रहवीं ईस्वी सताब्दी के प्राथमिक वर्षों में हुआ था। धत ककर धम्मा सोतहरी सताब्दी के मध्य में रही होगी। इस महिषा के बारे में विषय महत्त्व की बात ठा यह है कि सन्त ककर धम्मा की मोती मन्त्रि म्बय पूष्ठानम में भी उच्चकोटि की समझी

जाती है। उसकी भक्ति उस चरम सीमा तक पहुँच गई थी जहाँ प्रेमी-श्रमिका और प्रेम एक रूप हा जाती हैं। ऐसे प्रेम के बचीभूत भगवान् सवा बही करने को उद्यत रहते हैं जो भक्तिन् चाहती हैं। सन्त ककर धम्मा के बारे में धनेक किबदलियाँ प्रसिद्ध हैं जो उसकी धनुपम भक्ति को प्रमाणित करती हैं। एक बार एक बूढ़ ब्राह्मण उसके द्वार पर भोजन पाने की इच्छा से आया। संयोगवत् उस समय कोई पुरुष घर में उपस्थित नहीं था और इतिबादी स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। परंपुरय के सामने नहीं जाती थी। परंतु उसने निम्नक से कहा कि भोजन तो प्रस्तुत है किन्तु उसे बह स्वयं परोचना पड़ेगा। जब भोजन तैयार होने पर मन्वान् स्वयं एक बालक बह्मचारी के रूप में प्रकट हो भागन्तुक धतिवि की सेवा में जुट गए तब सब लोग धारधर्य-वर्णित रह गए। धतिवि स्वयं भी एक उच्चकोटि का भक्त था। उसने अपने धाराध्य देव को पहचान लिया। एक बार एक और घटना बटी। एक भक्त जब नमी प्रगाड़ ध्यानावस्था में अपने धाराध्य का स्मरण करता था तो बह उनका मायाकार कर मता। एक बार उसने बहुत उपासना की परन्तु भगवान् प्रकट नहीं हुए। जब कुछ दिन बाद बह प्रकट हुए तो भक्त के पूछने पर उन्होंने बताया कि बह इतने समय तक सन्त ककर धम्मा के भोजे और प्रगाड़ प्रेम के काठगार में बन्द थे। जैसे ही स्वतन्त्र हुए था गए।

जब नारायण भट्टिरी मृत्यु-सीमा पर था तब ककर धम्मा उन्ह बेमने गई। इस पर बह बहुत प्रसन्न हुए और प्रार्थना की कि—“मेरी पूज्य बहून मेरे जीवन के धन्तिम क्षण समीप हैं। जब मैं भीम ही उट्टदेव में मिलान हो जाऊँगा। प्राय तब तक मेरे पास ही रहूँ।” सन्त ककर ने उत्तर दिया—“मही नायबण की धठा की कोई बात नहीं मैं पर लौट रही हूँ किन्तु विश्वास रनो तुम्हारे जीवन के धन्तिम क्षणों में मैं तुम्हारे पास रहूँगी। किन्तु नारायण भट्टिरी को बिन्धाम नहीं हुआ। उन्होंने पाबह किया और कहा—“मैं तो धाम ही मर जाऊँगा और मरी यह इच्छा कि तुम मेरे निकट रहो धूमर रह जाएगी। इस पर भी ककर धम्मा पूज धाम बिन्धाम के माब बोमी—“मैं निश्चय ही तुम्हारे पास धा जाऊँगी। तब तक तुम्हारे धन्तिम इबाम नहीं निकलेंगे जब तक मैं तुम्हारे नमीव पुन नहीं धा जाती।” इस धान्वागत पर भी नायबण धारबन्ध नहीं हुआ किन्तु उमने ककर धम्मा को जाने दिया। ककर धम्मा ने पुन धान्वागत बकर धमने ध्याम का श्रयान किया। तीगरे दिन बह सीटी। नायबण जीविन धरबस था किन्तु मून प्राय पड़ा हुआ था। नारायण की सम्बोधित करके उमने कहा—“नारायण! समय पूरा हो गया

है, जगो मगवान् को स्मरण करो। ईश्वर तुम पर कृपा करेंगे।" तदनुसार भक्त ने तीन बार विश्वेश्वर को पुकारा और सन्त कर्कर धम्मा की उपस्थिति से अनुप्राणित होकर घान्त और प्रसादपूर्ण मुद्रा में इहलीला समाप्त की। कहा जाता है कि कुछ दिनों के पश्चात् ही इस सन्त महिमा ने भी जड़ी पष का अनुसरण किया। घासवत समाधि के द्वारा परमारण सत्ता पर अपना पूर्ण अधिकार प्राप्त कर बहु जड़ी में विभूत हो गई।

प्रचलित कथाओं के अनुसार यह सन्त महिमा स्वामी विश्वमेगल की समकालीन थी। स्वामी विश्वमेगल बहु प्रसिद्ध साधु थे जो अपने को इच्छानुसार अनेक रूपों में परिवर्तित कर लेने की सिद्धि के लिए प्रस्थात थे। श्री रामहृण्ड परमहंस के भक्त श्री निरीपचन्द्र बोध ने अपने एक नाटक में इस सन्त की सिद्धियों का उल्लेख किया है। एक बार सन्त कर्कर धम्मा मासिक धर्म की अवस्था में भी नाचगण का अप कर रही थी। संयोगवश विश्वमेगल स्वामी वहाँ आ गए। उन्होंने धार्मिक-भक्ति हो भक्तिन् से पूछा—“क्या इस प्रज्ञीभावत्सा में श्री मगवान का नाम जेंना उचित है ?” धम्मा ने उत्तर दिया—“क्या यह कोई दुइ विस्वास के साथ कह सकता है कि वह मृत्यु के समय अपनी शारीरिक अवस्था में नहीं होमा।”

सन्त धम्मा का प्यार अपने इष्टदेव के लिए ऐसा ही था जैसा कि एक वात्सल्य पूर्ण माँ का अपने सिधु के लिए होना है। कहते हैं कि जब वह भक्ति में लसीन होती तो बासङ्गम् उसकी ओर में खेतते पीठ पर चढ़ते या धम्म बाल-नीसाधों से उसे रिखाते।

कोमलम् कूबन् बेगुन् स्पामसोय्यं कुमारकः ।

बेदबेधं परं ब्रह्म भासते पुरतो मम ॥

“कोमल बेगु बजाता यह स्पाम बर्षे कुमार जो मेरे समस्त भासित है, बेद-व्यतिपादित ब्रह्म है।” तात्पर्य यह कि पक्ष अपनी भावना के धनुकूल मगवान् का रूप बसता है जैसा इस सन्त ने कहा—बेदबेध परब्रह्म मेरे समस्त कोमल बेगु बजाता समाधन कुमार के रूप में भास रहा है।

## तारिगोंडा वेणकमाम्बा

वेणकमाम्बा का जीवन पूर्ण सारंगी और कुण्ड की प्रत्यक्ष भक्ति का जीवन था। वह भारत की आध्यात्मिक संस्कृति के सुन्दरतम पुष्पों में से एक है। जैसा कि अखिल भारतीय शक्तों का रक्षक रहा है, वेणकमाम्बा ने भी अपने जीवन के सम्बन्ध में कहीं कोई चर्चा नहीं की है। जीवन-सम्बन्धी उपयुक्त सामग्री कथाभाव में हमें उसके जीवन का मेला-बोला प्रस्तुत करने के लिए उसकी रचनाओं में यत्न-तन प्राप्त स्कूट संकेतों और प्रचलित परम्परागत मायताओं का आचार ग्रहण करना पड़ता है।

वेणकमाम्बा का प्रचलित नाम वेणकम्मा भी है। वह श्री रामकुण्ड की समकालीन थी। सर सी० पी० ब्राउन के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी-तेलुगु शब्दकोष के अनुसार वह १८४० में जीवित थी। वह तम्बचारीक मठावन्तम्बी कट्टर ब्राह्मण की कुण्डल्या की सुपुत्री थी जिसका सम्बन्ध बह्मिष्ठ बंश के दामासी परिवार से था। इसकी माता का नाम वेणमाम्बा का और इसका मूल पाँच तारिगोंडा का जो त्रिभुवन के नाम से भी विख्यात है। यह पाँच दक्षिण भारत में मद्रास प्रान्त के चित्तूर जिले में बड़लपाडु से चार मील उत्तर की ओर है।

अपने समाज की प्रथा के अनुसार छोटी आयु में ही इसका विवाह कर दिया गया था जबकि वह विवाह का अर्थ भी म समझती थी। लेकिन वह धारम्य प्रतिपद्यता रही। अपने अनुपम काम्य शब्द 'भाषण-मुद्रण' के अन्त में वह कहती है कि श्रीबल्ल बंस के मुन्नेटी परिवार में जगमे पिरीमा के सुपुत्र बेंकटाचलपति के पवित्र चरणों को हृदय में धारण कर उसने उस शब्द की रचना की है। स्पष्ट ही बेंकटाचलपति उसके पति थे। उसके विवाह के अल्पकाल पश्चात् ही उसके पति का देहान्त हो गया था।

वेणकम्मा महान् ग्राह्य और स्वतन्त्र चेतना की अनुपम प्रतिमूर्ति थी। समाज की अर्थात् प्रथाओं और परम्पराओं के विरुद्ध उसने विद्रोह किया। एक विवाह के भाते उसे अपने सिर का मुग्धन करवाना था पर उसने बुद्धापूर्वक इस प्रथा को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। पवित्रात्मों ने उस पर, उसके पिता पर, हर प्रकार से दबाव डालना आरम्भ किया लेकिन उसने अपने पिता को

स्पष्ट उत्तर दिया— 'प्रिय पिता ! सांसारिक बुद्धिवाले लोगों के प्रभाव प्रभाव उनकी सम्मति की धोर धाप प्यान न हें । हम किसे प्रसन्न करना चाहते हैं ? परमात्मा के लिए हम क्यों को कटवा देने में क्या मन्थ्य हैं । जब तक हमारी चित्त-वृत्तियाँ पवित्र हैं रूपानु परमात्मा हम से कुछ नहीं होगा भले ही हम सांसारिक प्रभावों और रीति-रिवाजों को कितनी ही समान्यता क्यों न हें और यदि हमारी वृत्तियाँ कमुषित हो जाएँ, तब चाहे हम रीति-रिवाजों का कितना ही पालन क्यों न करें परमात्मा हमें कभी क्षमा नहीं करेगा । घट रूपमा मुझे मेरे हाल पर खोद हें ।' धपनी पुत्री के चरित्र की निष्कलंक पवित्रता ने उसके पिता रूपीय्या को मील कर दिया ।

इसी संकट-काल में पुष्पविरि पीठ के प्रवाल महत् तारिपोंडा पपारे धीर गाँववालों ने उनसे बेचकम्मा के व्यवहार की कड़ी बिकामत करते हुए इस बात पर बस दिया कि उसे अपने बाल कटवाने पर विवश किया जाए । थोड़ा जरा-सी बात के पीछे यह सुझन ! एक 'निष्पाप विवश' के क्यों को लेकर इतना बड़ा धान्योसन ! प्रवाल महत् ने बेचकम्मा के पिता को बुझा कर बाति से बहिष्कृत करने की धमकी देते हुए धीम्र ही बेचकम्मा के बाल कटवाने का आदेश दिया । करबद होकर रूपीय्या ने सफाई देते हुए कहा— 'देव यह मेरा शोप नहीं है । धाप उसी से बात करें ।'

महत् जी के आदेश से तुरन्त ही बेचकम्मा को उनके सम्मुख उपस्थित किया गया । पूछने पर उसने सम्मानपूर्वक कहा— 'स्वामी जी धाप धपबुध है । मैं धम्पजानी हूँ । रूपमा मुझे बताएँ—कौन-से बेब में यह सिखा है कि विवश को लिए केस रसना मना है । एक नाटी क्यों धपमा सिर मुंडा कर धपने को कुक्ष बमाए ? क्या हमारी स्मृतियों में यह नहीं सिखा है कि वहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वहाँ सभी कर्म धीर प्रयत्न निष्कल हो चाते हैं । धपर एक विवशा की चित्त-वृत्तियाँ कुछ हैं तो उसके केस धारण करने प्रभाव धामुपन धारण कर लेने में भी क्या हानि है ? मे केस रूपानु परमात्मा ने मनुष्य को उसके जन्म के साथ दिए हैं । एक बार मन्थन करवा लेने के बाद भी वे फिर जग प्राएंगे । यदि धाप धपनी धक्ति से इनका फिर जगता बन्य कर दें तो धाप धपनी मेरा मुष्कन करवा सकते हैं । मैं यह धनुषित समझती हूँ कि परमात्मा की इस रेल को स्वयं धस्वीकार करें । बेचकम्मा का यह विद्रोह नाटीत्व का नहीं धपितु मानवता का महत्त्वों के प्रति विद्रोह था । उसके उत्तर से शोक में धरे हुए प्रवाल महत् ने नाई को बुझवा कर बसपूर्वक उसका मुष्कन करवा दिया । शोक धीर लज्जा से बधीमूठ होकर

तहीं वरन् भक्ति-बिह्वल होकर बेगकम्मा निकट ही नदी में गई और अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की धर्मना करते हुए उसी नदी में डुबकी लगाई। जब वह बाहर निकली तो उसके सिर पर पहले जैसी ही सुन्दर और लम्बी केश-राशि सहज रही थी। इस अमलकारपूर्व बटुना को देखकर प्रधान महन्त और सभी उपस्थित लोग आश्चर्यचकित रह गए और सबने बेगकम्मा से क्षमा माँगनी धारम्भ कर दी। अभिचार और ज्ञान की हठभाविता पर भक्ति और बुद्धि की प्राप्तिता की विजय का यह एक अनुपम उदाहरण था।

बेगकम्मा की भावनाएँ विवेकात्मक ने शब्दों में सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रतिध्वनित हुई हैं। वे कहते हैं "स्त्रियों को शिक्षा दो और उसके पश्चात् उन्हें स्वतन्त्र छोड़ दो। तब वे स्वयं अतलापनी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है। उनके सम्बन्धित विषयों में आप हस्तक्षेप करने वाले कौन हैं?"

"स्वाधीनता उन्नति की प्रथम आवश्यकता है। अगर आप से कोई कहता है कि मैं इस बालक अथवा स्त्री की मुक्ति के लिए कार्य करूँगा तो यह गमत है—हजार बार गमत है। मुझ से प्रायः पूछा गया है कि स्त्रियों के प्रश्न पर मैं क्या सोचता हूँ अथवा विधवा-समस्या के सम्बन्ध में मेरे क्या विचार हैं? मेरा सबैक के लिए यही अन्तिम उत्तर है—क्या मैं विधवा हूँ जो तुम मुझसे यह बेहूरा प्रश्न पूछते हो? स्त्रियों की समस्या का समाधान निकालने वाले तुम कौन हो? क्या तुम परमात्मा हो कि तुम प्रत्येक विधवा अथवा स्त्री पर शासन करोगे? तुम अपने को उनसे भलग रखो। वे स्वयं अपनी समस्याएँ सुलझा लेंगी।

स्त्रियों के अभिचार और उनकी सुविधाओं के सम्बन्ध में तथाकथित पंडित और पुजारियों के इस क्रूर हस्तक्षेप के कारणों की जोख में दूर नहीं आना पड़ता। भारतीय इतिहास के पतनोन्मुख काल में ही स्त्री और साधारण जन के प्रति संकुचित दृष्टिकोण रखने वाले स्मृति-ग्रन्थों की सृष्टि हुई। लेकिन वेद और उपनिषद् काल में परिस्थितियाँ नितांत भिन्न थी। उस समय समाज और धर्म में तारी का स्थान किसी भी पुरुष से कम नहीं था। वैदिक ऋषियों की परम्परा में हमें विद्वत्वारण अथवा मोपमुहा और धोया जैसी अनेक महास्त्री महिलाओं के नाम भी मिलते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा की समाप्ति पर जब अपने शिष्यों को अन्तिम उपदेश देते हुए सगभन धारम्भ में ही कहता है—“तुम्हारी माता ही तुम्हारा ईश्वर हो—और अब जबकी प्रसन्न होती है तो वह कस्यालकारिणी होती है और मनुष्य की स्वतन्त्रता का कारण बनती है।”

जो भी हो वेणकम्मा के कोमल हृदय पर गाँववालों और महत्त्व के व्यवहार स गह्वर घाघात पहुँचा। परमात्मा के धामात्कार के लिए उसकी भावनाएँ तीव्रतर होती जा रही थी और अन्त में उसने बिपूर के मदनपत्नी गाँव के सुबिख्यात गुरु कपावतारम् सुब्रह्मण्य धास्त्री से मुक्त-वीक्षा ली। अपनी उत्कृष्ट काव्य-रचना बेंकटाचल-माहात्म्य में वेणकम्मा अपने गुरु के प्रति अपनी यज्ञचित्ति इस प्रकार अभिव्यक्त करती है— 'मैं अपने गुरु के चरण-कमलों की बन्धना करती हूँ। सुब्रह्मण्य ने मुझे ज्ञान को ब्रह्म के रूप में देखने की कृष्टि दी है।' अपनी प्राध्यात्मिक साधना के लिए एकाग्र की आज में वह अपने गाँव में मुसिह मन्दिर में गई और हनुमान की मूर्ति के पीछे एक श्याम स्वान पर उसने अपना धासन बनाया और समाधि में सीम हो गई। उस अवस्था में वह धार्मिक धासन बनाया ही वह अपनी समाधि छोड़ती और बोझा-बहुव प्रवाह पा लेती। एक महा-कथा ही वह अपनी समाधि छोड़ती और बोझा-बहुव प्रवाह पा लेती। एक बिन मन्दिर के पुजारी ने उसे देख लिया और यामिर्चा केंते हुए उसे उस स्वान से बाहर निकाल दिया। बेनकम्मा ने हरि-वन्दना समझ कर प्रभु के प्रति पूर्ण धारण-समर्पण की भावना के साथ इस अपमान को पी लिया और विरोध में एक शब्द भी न कहा। अपना कर वह छोड़ ही चुकी थी। अब उसने बर्द गाँव भी सदैव के लिए छोड़ दिया और तिरुपति क मुख्य देवता बेंकटस्वर के चरणों में स्वान पाने के लिए तिरुपति चली गई। बेनकम्मा के धनुषार बेंकटस्वर कलिपुत्र में धामात् परमात्मा का ही रूप है। बेंकटाचल-माहात्म्य में बहू इस नगर का— सूर्य के प्रकाश में दमकठ हुए सुनहरे मन्दिर-कमलों रणों मठों बागों हाथियों और और तीर्थों का— सुन्दर वर्णन करती है। सात पर्वत-धिलारों पर बसा हुआ यह नगर एक सुन्दर रमणीक स्वान है जहाँ प्रकृति का प्रतीकिक सौन्दर्य सम्पत्ता के कौशल के साथ मिथित मिसता है।

पर्वतमासाधों का अभिवेक करते हुए मक्त मन्दिरों क साथ तिरुपति जो सम दिनों बेंकटाचलम् कहलाता जा परमात्मा के साथ तादात्म्य पाने के चरण लक्ष्य की ओर उन्मुक्त धात्मा की जीवन-यात्रा का वास्तविक प्रतीक है। प्रतिबिन् सीकड़ों यात्री समस्त भारत से तिरुपति की यात्रा करने आते हैं। प्रतिबिन् नहीं पहुँच कर बेनकम्मा ने वहाँ के मुख्य देवता की पत्नी की ओर लीज ही अपनी प्राध्यात्मिक साधना के लिए किसी उपयुक्त स्वान की आज में लग गई। वहाँ के सोय और मन्दिर के पुजारी उसक धार्मिक उस्ताह से धारण्य प्रभावित हुए और उन्होंने उसके निवास के लिए एक छोटी-सी कृष्टिमा दी और प्रतिबिन् के बाहार के



लिए थोड़े-से पाबलों की व्यवस्था कर ली। कुछ समय पश्चात् उसको बेवता की कुछ विशिष्ट सेवा करने की भी प्रणति प्राप्त हो गई जो प्रायः भी उसी काम से सम्पन्न की जाती है। कामान्तर में उसे अपनी मोक्षप्रियता का मूख्य भी चुकाना पड़ा—उस कुछ ईर्ष्यानु पुकारियों का कोप-भाजन बनना पड़ा जिन्होंने उसे हर तरह से तंग किया। लेकिन उसने अपने अद्भुत प्रेम और भक्ति के बल पर उन सब पर विजय पाई। एकान्त की चाह उसके मन में फिर बलवती हो उठी और उसने तुमुमुस्कोज नामक पर्वत-खाटी में सुन्दर विश्व-विभिन्न प्राकृतिक वृक्षों के बीच एक अनुकूल स्थान कोज सिमा जहाँ उसने ब्रह्म के साथ तादात्म्य पाने की साधना आरम्भ कर दी। वामू चट्टानें जिनकी ऊँची चोटियाँ मागो स्वर्ग के चट्टानों की मेढ़ रहीं थीं फलों के बूझों और विद्याल भूखण्डों को अपनी मृगच्छि से भर देने वाले पृथ्वी के पीपों लकी-खाटियाँ हरे-अरे मैदान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र जो अपनी किरणों के हाव फैलाए पृथ्वी और स्वर्ग की हर वस्तु को धार्मिक-बद्ध कर भूम रहे थे—ऐसा प्राकृतिक रूप बेजकम्मा को अपने गहन सौन्दर्य बोध के कारण प्रतीव प्रिय था। वार में हम उसे अपनी कविताओं में इन प्राकृतिक वृक्षों को अत्यन्त प्रभावशाली रूप से चित्रित करते हुए पाते हैं। छ वर्ष तक वह वहाँ अपनी साधना म रत रही। इस बीच उसने अनेक उच्छकोटि की सिद्धियाँ प्राप्त की। इसके पश्चात् उसने स्वामी-गुफरिणी नामक झील के उत्तर में एक छोटे-से मण्डप की ओर प्रस्थान किया और अपनी रचनाया के माध्यम से संसार को धातम-साक्षात्कार की अनुभूतियाँ प्रदान करने लगी।

बेजकम्मा ने अनुभव किया कि मातृभूमि धान्य प्रदेश के सभी स्त्री-गुरुओं के उद्धार के लिए साधारण रीति में नैतिक धार्मिक और शारीरिक शिक्षाओं का प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक है। उन दिनों पुस्तकें साधारणतः सर्वपूर्ण रीति में घिसित बर्त के धान्य के लिए मिली जाती थी न कि धन-साधारण के लिए। और सम्मान एवं धन की प्राप्ति की कामना से वे पुस्तकें प्रायः राजाओं और जमींदारों को समर्पित की जाती थी। लेकिन बेजकम्मा का सख्य था—मनुष्य-मान की सेवा के माध्यम से परमात्मा की सेवा। उसने अपनी समस्त रचनाएँ अपने इच्छेक का समर्पित की। 'विशिष्ट रामायण' के प्रत्येक अध्याय के अन्त में वह कहती है— 'हे प्रभु बेंकटेश्वर ! तारिणोंका के नृसिंह रूप ! मैं इसे तुम्हारे पवित्र चरण कमलों में समर्पित करती हूँ। या भी स्त्री या पुरुष सबके मन से इसे पढ़ता मुनवा धपवा इसकी प्रतिमिति करता है वह इस मध-मागर के प्रपंचों को पार कर भक्ति का भागी बनता है।'

बेचकमाम्बा की रचनाएँ प्रायः पद्य में हैं और उसने कविता के प्रायः सभी रूपों—महाकाव्य प्रपीठ गीत लच्छ-काव्य नाटक घादि को अपनाया है। भागवतपुराण के पद्य में उसने अपनी समस्त रचनाओं की सूची दी है। बाद में उसने ग्रन्थ ग्रन्थ भी लिखे। उसकी तीनों रचनाएँ 'बिकटाचल माहात्म्य' 'राजयोग सार' और 'बहिष्ठ रामायण'—मूल संस्कृत ग्रन्थों के आभार पर हैं और प्रकाशित हो चुकी हैं।

'बहिष्ठ रामायण' संस्कृत का ग्रन्थ है। यह कई सहस्र पृष्ठों का एक विद्यामकाय ग्रन्थ है जिसका मूल विषय है बहिष्ठ का श्रीराम की उपदेश। यह ग्रन्थ न केवल भारतीय चेतना की अपितु विश्व की विचार-परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रावितीय कृति है। बेचकमाम्बा ने अपनी 'बहिष्ठ रामायण' में इस विद्यामकाय की विधाओं को अपनी मधुर काव्य-शैली द्वारा लोकप्रिय बनाने का उत्कल प्रयत्न किया है। सृष्टि के सिद्धान्तों और गूढ़ दार्शनिक तर्क-वितर्कों को समझाने का प्रयत्न उन्होंने केवल कथामौलिक रूप में ही नहीं किया है बल्कि सावधान शिल्प की ध्याख्या की है। वह जानती थी कि मधुर और सज्जित भाषा में उपयुक्त धर्मकार्यों और उदाहरणों के साथ उसने जो कुछ कहा है वह सीधे पाठक के हृदय में समा जायेगा और पानी के तल पर पड़ी तेल की बुद के समान फैल जायेगा। जिस प्रकार रूप में आकर्षक और रंग में चटकीली न होवे हुए भी सावनी सदा मधुर और म बिलरती है उसी प्रकार उसकी व्यक्तित्वपूर्ण मधुर शैली अपनी सुमन्य से पाठकों का मन मोह लेती है। लेकिन अनिश्चित के शीर्षकी प्रपेक्षाओं की सुकुमारता के प्रति वह अधिक सजग रही है। उसकी पृष्टि में कविता दर्शन की अनुगामिनी थी। उसके मतानुसार काव्य-शास्त्र के सिद्धान्त कविता के लिए बने थे न कि कवि उसका सिद्धान्तों के लिए था। उसने अनुभव किया कि नियम उसके लेखक से न कि स्वामी। हम उसकी रचनाओं में यत्र-तत्र ध्याकरण और छन्दों के नियमों की प्रवृत्तता पाते हैं। जहाँ भी ध्याक्यक हो वह बोलचाल के छन्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करती है। उसकी प्रत्येक रचना में हमें 'द्विपद' नामक छन्द का प्रयोग मिलता है जो मुक्त छन्द से मिलता-जुलता है। पालकुरिकी योगदान जैसे प्रसिद्ध कवियों ने इस छन्द की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

बेचकमाम्बा के किरतने ही शीघ्र लोक-गीतों के रूप में प्रचलित हैं। बीरेघसियम् पान्दुनू और प्रसाकर घास्वी जैसे प्रसिद्ध कवि और आसोचकों ने उसकी रचनाओं की बहुत प्रशंसा की है।

बेनकम्मा ईसी प्रस्था सम्पन्न कवयित्री थी। हृदय जब भावों से पूर्ण हो तो विह्वल मुक्त हो उठती है। उसी प्रकार प्रेम और भक्ति की पूर्णता से वह कविता के रूप में फूट पड़ी थी। प्रत्येक वर्ष में कविता उसके लिए एक ईसी रैन थी। बेंकटाचलम् माहारम् में वह कहती है— 'मैंने बचपन में किसी पुत्र से बर्च-भासा नहीं सीखी। काव्य-शास्त्र का 'क' 'ख' भी नहीं पढ़ा। कोई साहित्य-रचना भी मैंने नहीं पढ़ी। एक संगीतकार के हाथों में तन्त्री की भाँति मैं गा उठती हूँ। मेरा प्रभु मेरी जिह्वा पर बैठ कर अपनी धसीम कृपा से मुझे जिस प्रकार बजाता है, मैं गा बेती हूँ। मौलिकता का मेरा कोई दावा नहीं है।'

"मैं सदैव सरस्वती के प्रति झुठल हूँ। विद्या की बेबी सरस्वती एक पवित्र बोपहरी में मेरे सम्मुख प्रकट हुई और उसने मुझे भादि बीच और मेरे बुद्ध के दर्शन कराए। जब मैं बुरी तरह बक चुकी थी तब वह स्वर्ग से अवतरित हुई और भक्तों की उज्ज्वल पक्ति के रूप में उसने स्वयं को मेरे सम्मुख प्रकट किया।

"मैं भगवान् हृष्य की उपासना करती हूँ जिन्होंने मुझे अपना मोहिनी रूप दिखा कर अपनी प्रेम-जीलाघां को प्रेमपूर्व एवं प्रतीकारमक भावा में कविताबद्ध करने का आदेश दिया। जब मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की तो उन्होंने मुझे कौपमरी दृष्टि से देखा और जब मैं उनके चरणों पर गिर पड़ी तो उन्होंने स्वयं ही उन जीलाघां को इन शब्दों में बाँप दिया।"

महान् व्यक्ति उपदेशों की अपेक्षा अपने निजी उदाहरणों द्वारा अधिक शिक्षा देते हैं। कला के आचरण में उपदेश उपबल नहीं रह जाते। सासक आर्षा और निर्दोष बने रहें मित्र सम्पत्ति और तर्क देते रहें परन्तु प्रेमसी मयूर और सुदम बंध से अपना मन्तव्य व्यञ्जित कर अभीष्ट सिद्ध करवाती है। बेनकम्मा ने कान्तासम्पत् उपदेशों की भाँति अपने नाटकों नीतों और काव्य-ग्रन्थों के द्वारा अपने विचार और आदर्शों को जन-समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

नैतिक अनुशासन समस्त प्राध्यात्मिक साधना का मूल आधार है। अथर्व बचकम्मा ने अमत्कार प्रकट किए तो वे केवल उनके मन्त-जीवन के प्रभाव के कारण ही थे। सन्तत्य का मापदण्ड अमत्कारों का प्रदर्शन नहीं अपितु अर्थ की पवित्रता है। एक बाजीगर कितने ही अमत्कार क्यों न दिखाता रहे पर वह सन्त नहीं कहलाता। बेनकम्मा इस सत्य को इस प्रकार प्रकट करती है—

कुल भोग सिद्धि जाने की आकांक्षा से मन्त्रयोग हृद्योग और सपयोग भादि

अनेक प्रकार के योगों की शोधा कर अज्ञानी लोगों को अपने बमत्कार दिखाते फिरते हैं। ये सब निरबेक और पातोंकी घोषी हैं। जो परमात्मा के ज्ञान में दख हैं वे क्षीर के रोम बुझावना और मृत्यु से बचने आदि की व्यर्थ की बातों की अभिधाया नहीं रखते। (राजयोग सार)

समस्त धर्मका ही ही पुरुष वे हैं जो क्षमार्जुन पत्राओं में प्राप्त किये गये इच्छा का परित्याग कर धर्मद्वारे, सत्य पवित्रता मन की शान्ति और समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव के बली होते हैं। (बौद्धाचार्य महाप्रभु)

योग का अभ्यास निर्बाध होना चाहिए। निरन्तर अभ्यास के बिना मन क्रोध और वासना जैसी दुष्टवृत्तियों का चर बग जाता है।

जो विवेक सम्पादित धर्म-विग्रह सहजपीसता नियम मन्त्रों का अभ्यास और बुद्ध एवं वेद-ग्रन्थों पर विश्वास करता है जो परस्त्री को माता के समान मानता है जो परब्रह्म की कामना नहीं रखता—जो प्रभु के चरणों में शरण लेता है—ऐसा कोई बिरला ही इसी जीवन में ज्ञान और मुक्ति का प्रबिधापी बनता है। (राजयोग सार)

मुक्ति का प्रासाद अक्षय अस्तव्य और ध्यान इन चार द्वारवालों द्वारा मिलता है। (वसिष्ठ रामायण)

हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में योग बसिष्ठ के समाग कोई भी ग्रन्थ अथवा मनुष्य के प्रयत्न पर इतना अधिक बल नहीं देता। वेदकाम्या में बड़ी कुशलता से योग बसिष्ठ की मूल शिक्षाओं को अपनी रचना 'बसिष्ठ रामायण' में प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर बेमोट और पत्थर की पत्थरों स्मरण हो जाती है—

मनुष्य स्वयं शपता बसव है

और वह शपता जो पूर्व और ईमानदार मनुष्य में निवास करती है

समस्त प्रकाश प्रकाश और माम्य पर नियन्त्रण रखती है

जसके लिए कुछ भी प्रकाश नहीं होता

हमारे कर्म भले या बुरे हमारे देवदुत है

हमारी वातक परसाहसों जो सर्वत्र हमारे साथ रहती है।

वह बिलाने के लिए कि कर्म किस प्रकार करना चाहिए और वास्तविक स्थान क्या है, वेदकाम्या में अपनी विविष्ट करण और प्रभावपूर्ण शैली में अपने ग्रन्थ 'बसिष्ठ रामायण' में बूझाता और विविधधर्म का एक सम्मेलन प्रस्तुत किया है। वह बतलाती है कि किस प्रकार शान्ति अपने घर में प्राप्त रहे कर

राज-काज चलाते हुए भी मुक्ति पा लेती है और राजा बर, राज्य और समाज को छोड़ कर भी मुक्ति नहीं पाता और फिर किस प्रकार पत्नी पति की मित्र वार्त्तिक और मार्ग-दर्शक बन कर उसे मुक्ति की ओर से जाती है। इस कथा का अभिप्राय स्पष्ट है। नारी प्रशासन में प्रथम प्राथमिक ज्ञान और मुक्ति पाने में किसी भी तरह पुरुष से पीछे नहीं है। संस्कृत शब्द अर्थात्किनी और सहस्रमित्री शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष जीवन-यात्रा में एक-दूसरे के सहयोगी हैं। दोनों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों में श्रेष्ठता और समता का कोई प्रश्न नहीं है।

बेणकम्मा के जीवन और उसकी रचनाधी में वर्तमान की अनेक समस्याओं का समाधान लोजा जा सकता है। उसका नाम तिरुपति-बेणकटेश्वर के वार्षिक मेले-उत्सवों में से एक ब्रह्मोत्सव से जुड़ा हुआ है। आज भी तिरुमलाई पहाड़ी पर एक कारवाँ सराय विद्यमान है जो उसकी पवित्र स्मृति को सुरक्षित रखे हुए है।

## श्री शारदादेवी

### पवित्र माता

धार्मिक क्षेत्र में कामें करत वामे महान् व्यक्तियों की चिन्ता भी श्रीवनिवां उपलब्ध है उनसे से किसी भी महिला श्रुति इष्टा धरवा उपदेशिका की जीवनी शारदादेवी की के सम्पर्क नहीं पाई जाती। प्राचीन काल में ऐसी बनेक सन्त महिलाएँ हुई हैं जो विवाह-बन्धन में नहीं पड़ी थीर जिन्होंने धार्मिक जीवन की तीर्थ-यात्रा में बिना किसी जीवन-सभी के समता पसन्द किया। एही भी महान् सन्त महिलाएँ हुई हैं जिन्होंने पुत्रावस्था में विवाह किया किन्तु बाद में इस बन्धन को तोड़ कर प्रयत्न-प्रवृत्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए उन्होंने घर-बार, बीका बूझा छोड़ा और ईश्वर-प्राप्ति के लिए ब्रत पड़ी थीर अपनी धर्म्य मति से ईश्वर को प्राप्त भी किया। उनसे से कइयो को सामाजिक बाधाकरण और शक्तिमूल पारिवारिक परिस्थितियों के विरुद्ध धोर संघाम करना पड़ा किन्तु अन्त में विजयी रही थीर उन सब श्रुतिसामों को छोड़ा जितसे वह उत्पीडित थी। कुछ ऐसी महान् महिलाएँ भी हुई हैं जिन्हें अपने ऐसे अनुदार अक्षयानुभूतिपूर्व पतिव्रतों के साथ जीवन व्यतीत करना पड़ा जिनमें सेहमात्र भी ईश्वर भक्ति न थी। ऐसे पतिव्रतों ने अपनी ब्रमेप्राप्त, ईश्वर-भक्त पत्नियों के साथ ऐसा दुर्लभहार किया जिसके कारण उन्हें पारिवारिक जीवन को समाप्त कर देना पड़ा और अपने पतिव्रतों को उनके साथ पर छोड़ कर पूबक् होना पड़ा। कुछ ऐसी महिलाएँ भी हैं जिन्होंने विधवा होने के पदवात् अपने वैभव्य को ईश्वर-प्राप्त सुधमसर समता जिसमें वह पारिवारिक प्रतिबन्धों तथा धर्म्य विघ्नों से ऊपर उठ कर भगवत्प्रवृत्ति में अपना जीवन बिता लकें और बाधाकरण में उधका मभुर फल प्राप्त कर लकें। किन्तु पवित्र मां शारदादेवी इन सब महिला सन्तों से भिन्न थी। उनका परिचय तो हुआ किन्तु जन्होंने और उनके पतिव्रत ने पाईस्य जीवन नहीं बिताया। शारदादेवी अपना एक ही उदाहरण है जिन्होंने अपने वास्यकाल में ही से अक्षय प्रवृत्ति कर दिएने कि वह दिव्य लक्ष्य लेकर विश्व में उतरी है। उन्होंने ईश्वर को पवित्र मातृ-सक्ति के रूप में अनुभव किया और स्वयं को बही

मातृ-धर्मित जाना और अपने पति को भी उसी का स्वरूप देना । उनके पतिदेव ने भी अपने धापको और अपनी पत्नी को उसी दिव्य रम्योति का स्वरूप पाया । संसार ने तब तक कोई ऐसा पवित्र जोड़ा न देखा था न ही उन जैसे उच्चकोटि के आध्यात्मिक अनुभवों को सम्यक् पाया था । संसार के सभी स्त्री-पुरुष चाहे वे विवाहित हों या धर्मविवाहित जन-साधारण हों भ्रमबा ज्ञानी संन्यासी, इस रम्योति को आध्यात्म के प्रतीक और उच्च आचरण का मापदण्ड मानते हैं ।

### जन्म और कुल

श्री शारदादेवी देवी जो पवित्र माँ के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनके अठारवींश जन्म-दिवस क मकर पर उनकी पुण्य-स्मृति में यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है वर्तमान के बाँकुरा जिले में छोटे-से एकान्त गाँव जयराजवाटी के निवासी ब्राह्मण परिवार में २२ दिसम्बर १८६३ में पैदा हुई थीं । इन्हे मरे जरायाहों और चास के मीठानों में भरते हुए पशुओं प्रमोदर नदी और नालों बूझों और झाड़ियों से घिरा यह छोटा-सा गाँव अनुष्ठानावरण प्रस्तुत करता था । इस गाँव में किसी समय केवल ली के लगभग कच्चे घर थे । अब यह गाँव पवित्र यात्रा-स्वस्थ बन गया है जहाँ सैकड़ों और बिलेय भक्तियों पर हजारों भक्त माँ शारदा की पुण्य-स्मृति में उन्हें शहीदजति अर्पित करने के लिए एकत्रित होते हैं ।

शारदादेवी के पिता रामचन्द्र मुखोपाध्याय और माता स्वामसुन्दरी देवी निर्गत किन्तु धार्मिक विचारोंवाले संन्यास रम्यति थे । अतः रामचन्द्र की धाम के साधन बड़े सीमित थे । कुछ एकड़ भूमि के खेतों में कृषि-कार्य पुरोहिती जनेऊ बनाना और बेचना यही उनकी जीविका के साधन थे किन्तु वे बड़े उदार हृदय व्यक्ति थे । महामारी भ्रमबा साधारण के प्रभाव के समय वह अपने शेष धर्म को अपने परिवार के लिए न रख कर भूले और आपबुधस्त लोगों को बाँट देते थे ।

ऐसा लगता है कि माँ शारदादेवी की जीवन-मासा रहस्य मरे अनुभवों एवं देवी प्रभावों से पिरोई हुई है । एक बार इनके पिता रामचन्द्र और माता स्वाम सुन्दरी को पूर्वाभास हुआ कि उनके यहाँ पुत्री के रूप में देवी अर्पित का जन्म होगा । रम्यति ने इस दुर्लभ सौभाग्य को ईश्वरीय करदान समझा । समय के साथ जब गन्हीं शारदा ने माँ की गोद को भर दिया तो माता-पिता के सन्तान के प्रति स्नेह में ईश्वर की अनुकम्पा के लिए कृतज्ञता भी थी जो उस बाता ने उन्हें ऐसी पुत्री प्रदान की ।

शारदादेवी एक सरल आशीर्षक शक्तिका की जो सहस्रियों के साथ खेतती

परन्तु प्रायः यह धपनी बास बीड़ाघों में धपनी धायु से कही धधिक गाम्भीर्य प्रसिद्ध करती। उसकी मुद्रियों के धर में धनेक सिमौने से किन्तु बासिका धारवा का एक मात्र मनोग्जन मही बा कि वह कामी धीर लक्ष्मीदेवी की मिट्टी की प्रतिमाएँ बना कर उग पर पुष्पांजलि तथा बेस-यन धपित कर पूजा किया करती। पावन बनती के साथ धपना धावाधम्य धनुमन कर वह एकाधचित होकर धावना करती। इस प्रकार धारवादेवी धीरे-धीरे धर्म की पाठधासा में धपने प्रारम्भिक धध्याय पढ़ने लगी। प्रायः इस धर्ष की धध्यावस्था में ही धनकी धध्याधितिक प्रभुधियाँ बिनके धेकुर समय-समय पर प्रस्फुटित होते रहते थे धव धूर्धत प्रफुल्लित हो गईं। धेसब-बाल में ही इस सप्त महिमा को ऐसे धसे धनुमन धीर ईवी धामाध हुए धो बड़े-बड़े धानी धक्यो को धमाधि धवस्था के उज्ज-स्वर पर धर्षण कर भी धदि प्रायः हो धारै तो वह धपने को धम्य धमसते हैं।

मुवावस्था में धव धारवादेवी कामारपुकुर में भी धव उधें निकटकर्ती धामाध मे धकले स्नान के लिए जाता पक्या बा। यह देखती कि धाठ धमवपस्क धुवधियों का सधुह किसी धपरिधित स्नान से निकल प्रतिबिल उससे धरसन के लिए धावा। यह वस्तुध धारधर्ष की बाध है कि किस प्रकार ईवी धधित धुधारी इस धध्याी महिमा का धरसन करती रही।

धारवादेवी को क्ठिवावी धान प्राप्त करने का धवधर बहुध धम मिला। इस नधुई बासिका ने धपनी माया का धवधर-बाल प्राप्त करने का प्रयत्न धवधय किया धीर धाध की पाठधासा में प्रबिध्ट भी धुई किन्तु धुर्धधधधध किसी न भी उसकी धिधा की धीर धवधा नियमधूर्धक पाठधासा में उसकी उपस्थिति की धीर ध्याध नधुई बिबा। बासिका धारवा की पढ़ने में विधेप रधि होने पर भी वह पक नही सकी क्योकि वह धपने धरिधार में ध्येध्ट सन्तान थी। परम्यध के धनुधार धव क्युधार्थों का नूह-काम में तिपुन होना धधिधार्य धमसा धावा का धव धासिका धारवादेवी धपनी माँ का नूह-धार्य में धाप धैठाने लगी। भोजन बनाने धीर कमी-कमी तो भोजनाधय का धाध काम धारवादेवी ही करती। इसके धधिरिध्ट हट प्रकार का नूह-धार्य भी वह प्रायः करती रहती। धारधीव धसंक्रुधि धीर धम्यठा की प्राधि का एकमात्र धाधन धालधा ही नधुई धधिलु इस बेध का धपना धंग धीर ऐसे धनेक ध्याधधारिक रीधि-रिधान है जो उज्ज-राध्रीय परम्यधधों धसंक्रुधि धन धीर धाधधिक धिधार धनुम्य को धैधुक धम्यधि की भाधि उपसधध करने में सहायक है। मधिर के त्योहार का मनाना



महाकाम्यों का पाठ करना ग्रामीण नाटकों का अभिनय नित्य पूजा-याग और समय-समय पर सब सम्बन्धी और परिवार के सदस्यों के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण उत्सवों में भाग लेना आदि अनेक ऐसे सुखसुख हर भारतीय के जीवन में भाते हैं जो व्यक्तिगत को संतुलित और समुन्नत बनाने के उत्तम साधन हैं। जो लोग इन आदर्शों तथा विचारों को ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं वे उन पर आचरण भी करते हैं। सारवादेवी ने संस्कृति प्राध्यात्मिकता धार्मिक स्तोकों और परम्पराओं की सखिया में गहरे पैठ कर अपने प्राध्यात्मिक संस्कारों को उभारा था। श्रीमान्यबस १५ वर्ष की बाल्यावस्था में ही वह एक ऐसे व्यक्ति—पवित्र आत्मा—के सम्पर्क में आ गई जो अपनी अद्भुत धारमसक्ति से सारवादेवी को चिरन्तन सत्य का पाठ पढ़ा कर, उसका सही मार्ग दिखा कर अमरता प्रदान कर गया।

### विवाह

प्रसिद्ध प्रवाशों के अनुसार नन्ही सारवा का ६ वर्ष की अवस्था में ही २३ वर्ष के युवक श्री रामकृष्ण से पतिग्रहण हो गया। वह विवाह सम्बन्ध मई १८३६ में हुआ जो बंग के माता-पिता द्वारा आयोजित किया गया था। उस समय श्री रामकृष्ण ब्रह्मिणेश्वर में कठोर तपस्या कर रहे थे। उनका जन्म हुगली जिले में स्थित जमरामबाटी गाँव में पाँच मील की दूरी पर कामारपुकुर गाँव में १८३६ में हुआ था। विद्यार्थी अवस्था में श्री रामकृष्ण सिद्धा में बहुत पिछड़े हुए थे अतः उनके ज्येष्ठ बन्धु ने उन्हें ब्रह्मिणेश्वर में पुरोहित के घर पर नियुक्त करवा दिया ताकि उनकी प्राय से संयुक्त परिवार को कुछ सहायता मिल सके। १४ वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्राध्यात्मिक सिद्धान्तों का गम्भीरता से अनुसरण करना शुरू किया। प्रायः सात मास की अवधि में ही श्री रामकृष्ण विचित्र चित्त श्रुति और व्यावहारिक हाव-भाव प्रदर्शित करने लगे और जो लोग उनकी ईश-मिशन की इस तड़प और व्यग्रता को नहीं समझ सके वे उन्हें पागल समझने लगे। यह देख इनकी माता और ज्येष्ठ भाई उन्हें कामारपुकुर में ब्रह्मिणेश्वर के लिए भेज दिए। प्रियदर्शियों को यह देख आदिक व्यथा हुई कि अब रामकृष्ण पूर्णतया सांसारिकता से विमुक्त हो किसी पदार्थ की लोभ में व्यग्र हैं और कभी-कभी स्वयंसेवक में 'माता-भाता' पुकारने लगते हैं। इस मन-स्थिति में सबने यही उचित समझा कि रामकृष्ण को सांसारिक कर्तव्यों में लीन करने के लिए उनको विवाह-बन्धन में बाँध दें। जब कोई उपयुक्त अवस्था की कल्पा नहीं मिली तब उन्हें बड़ी निराशा हुई। यह प्रायः देता जाता है कि अनूप्य जब ईश्वर

भक्ति में मग्न रहता है और धारमोक्षति कर मेठा है तो वह विवाह-बन्धन सांसारिक उत्तरदायित्व और पारिवारिक कर्तव्यों में अपने को उलझाया नहीं चाहता किन्तु श्री रामकृष्ण माता और भाई की विवाह-योजना से व्यथित नहीं हुए। परिवार के लोग जब उपयुक्त कन्या ढूंढने में सफल नहीं हो सके तब श्री रामकृष्ण ने कहा— 'आपकी यत्र-तत्र कोश निरर्थक है। बयचमबाटी गाँव में जाओ वहाँ रामचन्द्र मूळोपाध्याय के घर एक कन्या-रत्न है जिसे विवाहा में मेरे लिए निश्चित किया है।'

निश्चित समय और तिथि पर परिभय-कार्य सम्पन्न हुआ। लगभग रामकृष्ण ११ मास तक गिरलार अपने गाँव में रहे। इन्हीं दौरान विद्यम्बर १७६० में शारदादेवी की प्रवस्था आठ वर्ष की हो गई। प्रधानुसार रामकृष्ण अपनी ससुरालय पर और जब वहाँ से लौटे तो शारदादेवी को अपने घर कुछ दिन माँ के पास रहने के लिए ले आए। उनके दक्षिणस्वर बापस लौटने पर बहुपुत्र अपने माता पिता के पास बनी गई। कई वर्ष बीत गए। शारदा अपने माता-पिता के संरक्षण में बढ़ने लगी। वह अपनी माँ की घर के काम-काज में सहायता करती। श्री रामकृष्ण पुनः कमारपुकुर आए। उस समय शारदादेवी की आयु १४ वर्ष की थी। वह ३ मास रामकृष्ण के साथ घर पर रही। उनका व्यवहार शारदादेवी के प्रति बड़ा सरल मधुर और दयालु था। उन्होंने युवती शारदा को धर्म सांसारिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन ईश्वर-सावना साम्प्रदायिक मार्ग पर चलकर इष्ट-देव से तत्प्राप्त प्राप्त करना आदि। जब शारदादेवी युवती शारदादेवी थी। वह भी समझने लगी कि वह विवाहिता है। रामकृष्ण के संसर्ग में वह बड़ी प्रसन्न रहती। उसमें वह जन्मकोटि की मयबद्धभक्ति निष्कर्षक मन और शरीर की निर्मलता पाती। इन युग्म नुषों से अर्जित बहु पुत्र्य मन्त्र शक्तों में सामान्य व्यक्ति था। इन दिनों के बारे में वह प्रायः अपने शिष्यों से कहती— 'उस समय मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मेरा हृदय सर्वत्र वृक्षान्ध से भोज-भोज है। मात्र उस धरम धान्ध को अधिभ्यक्त करना भी बहुत कठिन है।'

चार वर्ष और बीत गए, जब शारदादेवी की आयु १८ वर्ष की हो गई थी। श्री रामकृष्ण की मपुर-स्मृति उसके हृदय में घटा बनी रहती और सर्वत्र अपने पास रहने की उत्कण्ठा बढ़ती जाती थी। उसका कोमल हृदय यही सान्धना देता कि वह रामकृष्ण जो कुछ वर्ष पूर्व इतने मधुर और दयालु थे अब कदापि उसे भुला नहीं सकते। उपयुक्त समय आने पर वह धन्य उसी अपने पास बुलाएँगे।

देवी धारवा कभी अपनी आन्तरिक भावनाओं और आन्तर्बेवना को प्रकट नहीं करती थीं अर्थात् सदैव अपने को यथासम्भव गृह-कार्य और माता-पिता का हाथ बँटाने में मुसामे रखती।

धारवादेवी के पास ये अफवाहें तो पहले ही पहुँच चुकी थीं कि श्री रामकृष्ण पापल हो गए हैं। वास्तव में जब कभी उसके पड़ोसी उसके माता-पिता से मिलते तो प्रायः सहानुभूति प्रकट करते हुए कहते “हाय बेचारी भ्यामा की पुत्री का विवाह पागल से हो गया है। धारवादेवी यही प्रयत्न करतीं कि वह किसी से न मिलें ताकि ये अपशब्द उसके कानों में न पड़ें। यह स्वानाधिक था कि देवी धारवा की प्रबल इच्छा स्वयं रामकृष्ण को देखने की होती ताकि वह जान सके कि सच्चाई क्या है। अतः उन्होंने रामकृष्ण के निवास-स्थान दक्षिणेस्वर जाने का निश्चय किया।

जब धारवादेवी के पिता पुत्री की इस इच्छा से अवगत हुए तब वह तुरन्त उस वहाँ न जाने को सहमत हो गए। उन दिनों कलकत्ता जाने के लिए रेलवे और जलयान की व्यवस्था न होने के कारण धारवादेवी को कुछ दूर तक वासकी में ले जाया गया और तत्पश्चात् सब पैदल चलने लगे। मुबती धारवा को सम्बन्धी पत्र-यात्रा का अभ्यास न था अतः वह तीसरे दिन प्रस्थान हो गईं। उन्हें उब्र स्वर ने धा भेरा। ऐसी अवस्था में धारवादेवी अपने साक्षियों के साथ रात्रि में विधाम के लिए एक बर्मसाला में ठहर गईं। वहाँ धारवादेवी ने रात में एक अनुपम और महत्त्वपूर्ण स्वप्न देखा जिसमें उसे धारीरिक और भागसिक बेवना से घासाटीन मुक्ति थी। इस दृष्टा का वर्णन कुछ वर्ष पश्चात् उन्होंने इन शब्दों में किया

“मैं तीव्र ताप में बेसुच पड़ी थी यहाँ तक कि शिष्टता और कपड़े-सतों का भी मुझे होश नहीं था। तभी क्या देखती हूँ कि एक स्त्री मेरे पास आकर बैठ गई है। उस स्त्री का वर्ण गहरा काला था। यद्यपि वह बहुत काली थी किन्तु इतना लालच्य मैंने कभी नहीं देखा था। उसने अपने कौमल वीरल करी से मेरे दर्द करते हुए सिर को बचाया तब मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि मेरे शरीर का ताप दूर हो गया है। मेरे पृष्ठ पर कि वह कहाँ से आई है उसने उत्तर दिया— दक्षिणेस्वर से! यह सुन कर आश्चर्य और आनन्द से मेरी बाणी मूक-सी हो गई। कुछ देर बाद मेरे मुख से निकला क्या आप दक्षिणेस्वर से आ रही हैं? मैं भी तो वही जा रही हूँ। वहाँ मेरे पति रहते हैं मैं उन्हीं के पास आ रही हूँ। किन्तु ताप की तीव्रता ने मेरी इस यात्रा में विघ्न डाला है। इसपर उस देवी ने कहा ‘बिन्ता न करो तम शीघ्र ही अपना

पति क'बरों में दक्षिणेश्वर पहुँच जाओगी । मैंने केवल तुम्हारे लिए ही वहाँ उसे रखा है । यह सुनकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही और मेरे मुँह से निकला 'घाप हूयमा यह बताइये कि घाप हैं कौन ? उसने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी बहिण हूँ । इन छम्बों से मुझे और भी आश्चर्य में डाल दिया । इस वास्तविकता के बारे में निश्चय देवी की गोद में बनी गई ।

प्रातः सब घापी यह देखकर अचिन्तित हुए कि शारदा अब पूर्णतः स्वस्थ थी । प्रातः पुनः पद-मात्रा धारम्भ हुई ।

### दक्षिणेश्वर में

जब शारदादेवी दक्षिणेश्वर में पहुँची तो वह सीधी रामकृष्ण के कमरे में प्रविष्ट हुई । उन्होंने स्वतः अनुभव किया कि वह कितने सहृदय थे । उन्हें ध्याना बेस रामकृष्ण ने सहृदय अभिनन्दन करते हुए कहा— 'घोड़ ! तुम आ गईं ।' यह कहकर उन्होंने कमरे में बटाई बिछाने को कहा ताकि वह वहाँ विराम कर सके । लम्बी पद-मात्रा से शारदादेवी बहुत थक गई थी और मार्ग की अस्वस्थता के बिना अभी तक सोय थे । रामकृष्ण ने उत्काम ही उनके उपचार और बेबमाल का प्रबन्ध किया । जब शारदा देवी के मन और उनकी घाण्डका का समाधान हो गया था । शारदादेवी ने स्वयं देखने पर अनुभव किया कि जो अफवाहें रामकृष्ण की मानसिक अस्वस्थता और पामसपन के बारे में फैलाई जा रही थीं उनका आधार केवल साधारण लोगों का प्रभाव मात्र था । लोग उनकी धार्मिक महानता को पहचान नहीं सके और यही अंध-अंध बक रहे थे ।

पवित्र माता दक्षिणेश्वर में १८८३ तक रहीं । वह केवल कुछ दिनों के लिए पवन पाँव गई थीं । प्राचीनक दिनों में ही उन्होंने देखा कि श्री रामकृष्ण रात में भी प्रायः समाधि-मग्न हो जाते थे । जब वह मनी प्रकार समझ गई कि रामकृष्ण परमहंस ईश्वर के ऐसे अगम्य शक्तियों में थे जो मन्दिर के अड़ियल सुनकर, अजन सुनकर और किसी ईश्वरीय विषय पर बाद-बिबाह सुनकर गहन समाधि में डीन हो जाते हैं । दक्षिणेश्वर में बिठाए गए ध्यानमग्न समय को स्मरण करते हुए वह प्रायः कहतीं

"ध्यानावस्था की विश्व स्थिति में स्वामी पहुँच जाते थे उसका तो छम्बों में वर्णन करना कठिन है । प्राणायामावस्था में कभी वह रोते तो कभी निताम्य ध्यान्त हो समाधि में डीन हो जाते । उनकी यह अवस्था कभी-कभी रात भर रहती ।

उस दिव्य साक्षात्कार में मेरा धीरे-धीरे मन ही मन प्रत्युप बेसा की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगती क्योंकि तब तक मुझे ऐसी शक्ति का आभास नहीं हुआ था। एक रात उनकी समाधि बहुत समय तक रही। मैं इतनी भयभीत हो गई कि मैंने तत्काल बालक हृदय<sup>१</sup> को बुला भेजा। वह आया और स्वामी के कानों के पास इष्टदेव के नाम का बार-बार उच्चारण करने लगा। कुछ समय तब नाम सेते रहने पर उनमें घाटीरिक्त चेतना आ गई। इस घटना के बाद उन्हें मेरी कठिनाई का अनुभव हुआ और मुझे इष्टदेव के कुछ पर्यायवाची नाम बताए जिनका उच्चारण उनके कानों में विशेष समाधि की अवस्था में किया जाता चाहिए। तत्पश्चात् मेरा भय कम हो गया क्योंकि जब भी वह अवैतन अवस्था में होते तो मैं उन ऐसी नामों का उच्चारण करती और वह निश्चित रूप से घाटीरिक्त चेतना में आ जाते। इस पर भी मैं कभी-कभी रात भर घाँसों में काटती क्योंकि यह भय स्रष्टा बना रहता था कि वह किसी समय भी समाधिस्थ हो सकते थे। धीरे-धीरे उन्हें मेरी कठिनाई का अनुभव हुआ। जब उन्हें वह विदित हुआ कि पर्याप्त समय बीतने पर भी मैं अपने को उनकी समाधि-अवस्था के समय उनकी इच्छानुसार नहीं बाल सकी तो उन्होंने मुझे प्रलय महावत<sup>२</sup> में सोने का आदेश दिया।

### धारदारदेवी पवित्र माँ के रूप में

इस समय तक श्री रामकृष्ण परमहंस हिन्दू धर्म में विहित सभी उपस्था-विधियों का अभ्यास कर चुके थे। जब उनका इस क्षेत्र में काफी अनुभव हो गया था। इतना ही नहीं उन्होंने दूसरे धर्मों के उन सब मूल तत्त्वों को मसी-भक्ति समझ लिया था जो सभी धर्मों में विद्यमान और मठा पैदा कर सकते हैं। इस समय उनकी अवस्था ३५ वर्ष की थी।

विवाह के बाद जब दुबली धारदा पूर्ण स्त्रीत्व को प्राप्त कर रही थी। यह देख कर श्री रामकृष्ण ने धारदाय देवी से पूर्ण शक्ति से प्रार्थना की कि वह धारदा के मन को सांसारिक एवं भौतिक मामलों से ऊपर उठा दे ताकि वह अपनी शुद्धता और पवित्रता को बनाए रखे। पश्चिमेस्वर पहुंचने के कुछ दिन बाद श्री रामकृष्ण ने धारदा से पूछा था कि क्या वह उन्हें फिर सांसारिक जीवन में बसीट लाने के लिए यहा आई है? इसके उत्तर में धारदारदेवी ने कहा था—“ऐसा मैं श्री रामकृष्ण का भतीजा।

नेतृत्व-गृह जो बाद में श्री रामकृष्ण की बुद्धा ज्ञाता तथा श्री धारदारदेवी का निवास स्थान बना दिया गया था।

क्यों कर्म मेरे देव ? मैं तो आपके आपके जीवन के ध्येय की प्राप्ति में सहयोग दे सकूँ, यही मेरी मतोकामना है।

उन्हीं दिनों बकिशेस्वर में ही श्री रामकृष्ण ने थोड़ीसी पूजा सम्पन्न की। पूजा के पश्चात् उन्होंने देवी माँ के सिंहासन पर सारवा जी को बैठने का आदेश दिया। यथोचित मंत्रों तथा उपयुक्त विधि से रात्रि के ही बजे पूजा प्रारम्भ की। पूजा के दौरान धारवादेवी पूर्णतः आध्यात्मिक उन्माद में थी। श्री रामकृष्ण ने उस पर पूजा का बल छिड़क कर निम्नलिखित प्रार्थना द्वारा सारवा देवी में देवी माँ को आग्रह किया।

“ओ देवी माँ ! तू चिरन्तन कुमारी सर्वशक्ति-स्वामिनी धीर सौन्दर्य की निष्क्रेतन है। कृपा करके मेरे लिए पूर्णत्व का द्वार खोल दो ! प्रस्तुत गाँठ के तन-मन को पवित्र कर तुम स्वयं उसके द्वारा प्रत्यक्ष हो धीर बड़ी सब करो जो सत्यम् धीर शुभम् है।

पूजा के समय धारवादेवी धर्म-तस्मीनता की धबस्था में होती धीर जब पूजा समाप्त हो जाती तो वह गहन समाधि में पहुँच जाती। यह धारवाक धीर धारवाक का धत्पुत्रान पुनीठ तापारम्य होता धीर वह एक बड़ा के धस्तित्व की धत्पुत्रि करते।

उस आध्यात्मिक तस्मीनता की धबस्था में बहुत समय व्यतीत हो गया। रात्रि के द्वितीय प्रहर के अन्त में ही रामकृष्ण ने थोड़ी-सी धारीरिक बैठना पुन प्राप्त की। तब उन्होंने दिव्य माता को पूर्णतया अपने आप को समर्पित किया। समर्पण की इस महामुक्ति में उन्होंने अपने सम्मुख ही प्रत्यक्ष देवता को अपनी उपस्था का फल अपनी माता धीर अपनी धर्मस्व ग्यौछर कर दिया। तब उन्होंने निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण किया

“हे देवी ! मैं धारवाक तुम्हारे समस्त साक्षात् दण्डवत् करता हूँ। जो शिव की धारवाक सहस्ररी त्रिनेत्री स्वर्णमयी सर्वव्यापिनी धरज-दात्री सब विद्वियों को प्राप्त करने वाली मंगलातिर्मागतकारिणी है, मैं तुम्हें धारवाक साष्टांग प्रणाम करता हूँ।”

धास्तोक्त पूजा में सामान्यतः धारवाक अपने धारवाक का अपने भीतर धारवाक करता है धीर जब उसकी पूजा पूर्ण होती है तब वह अपने धारवाक को प्राप्त करने वाली मंगलातिर्मागतकारिणी है, मैं तुम्हें धारवाक साष्टांग प्रणाम करता हूँ कि वह उसी विश्व में विनीत हो जाए जहाँ से उसका प्रादुर्भाव

हुआ था। यद्यपि धारावाहक अपने धारण्य के साथ कुछ क्षणों के लिए तावात्म्य अनुभव करता है किन्तु क्षीम ही वह सांसारिकता के प्रभाव में आ जाता है और अपनी उस एकक्यता को पूर्णतया बिस्मृत कर देता है। जब भी रामकृष्ण ने धारवाहेबी में विष्य माता का आह्वान किया तब धारवाहेबी को जन्म कोटि की धाम्पारिमकता की अनुभूति हुई। लेकिन जब वह अनुभूति एक बार आई तो धारवाहेबी विष्य माता के साथ तावात्म्य की अनुभूति को नहीं त्याग सकी यद्यपि जीवन-पर्यन्त यह अनुभूति स्थिर रही। इसके अलावा यह पूजा रामकृष्ण के जीवन तपस्या और धाम्पारिमक उपसम्भियों में धारवा माँ की साझेदारी की प्रतीक बनी रही। तब से उनका घरीर और मस्तिष्क उस व्यक्ति के उपकरण हो गए जो विष्य माता के नाम से प्रसिद्ध है और जो कि रामकृष्ण के घरीर और मस्तिष्क से निःसृत हुई। उन्हें एक-दूसरे में कबल पवित्र माँ के वर्णन हुए। इनका मस्तिष्क कभी भी निम्नतर स्तर पर नहीं आया। वह उतनी ही पवित्र थी जितने कि वे पवित्र थे। वे विष्य पुत्र्य थे और वह विष्य नारी थी।

वह अपने भक्त अनुयायियों की माँ तो थी ही अनुयायियों के अनुयायियों की भी माँ कहलाई। वास्तव में वह माता से भी अधिक थी क्योंकि उसके द्वारा वह व्यक्ति प्रकट हुई जो माँ कहसाली है और जिसकी पूजा तथा अनुभूति रामकृष्ण को प्रत्यक्ष हुई। यह धारवाह्य भी बात नहीं कि वह धाम पुनीत माँ के नाम से जानी जाती है वह नाम जो लोगों में प्रेम और अज्ञा के भाव उत्पन्न करता है।

हिन्दुओं में वह परम्परागत रूप से माना जाता है कि हिन्दू नारी को अपने पारि वारिक जीवन में अपने पति को ईश्वर का प्रतीक मान कर धाम्पारिमक दृष्टि कोम उत्पन्न करना चाहिए। संतुष्टि मग से उसके प्रति निस्वार्थ सेवा मनुष्य को दिव्य बनाती है और धारिमक ज्ञप्ति को उसके लिए निरिचत बनाती है। श्री धारवाहेबी ही एक ऐसी सौम्याधामिनी थीं क्योंकि उनके पति पवित्र रामकृष्ण अपने समय के विष्य भागव थे। इस प्रकार उनके लिए सेवा को पूजा (धर्मता) में परिवर्तित करना सरल था। उनके उपवेदों ने उनके मातृक मन पर बहुत प्रभाव डाला। सर्वोच्च धाम्पारिमकता को अपनाते के लिए उन्होंने प्रतीक प्रयास किया। हम उनके धाम्पारिमक जीवन की असक उन्हीं के शब्दों में पाते हैं

“बलिभेस्वर में जीवन-यापन करते हुए मैं प्रायः प्रातः तीन बजे उठती और प्यास सबाकर बैठ जाती। प्रायः उसमें मैं पूर्व-रूपेण तीन हो जाती। एक

बार चाँदनी रात में मैं नहावट की सीढ़ियों के पास बैठी हुई जप<sup>१</sup> कर रही थी। बाताबरम साठ था। मैं यह भी नहीं जानती कि स्वामी उबर से कम गए। घण्टे दिनों मैं उनकी जपसों की आवाज सुना करती थी किन्तु उस दिन मैंने कोई आवाज नहीं सुनी। मैं पूर्वतया चिन्तनरत थी। उस दिन वायु के कारण बरस मरे पृष्ठमाय से बरस बिसरक गया था परन्तु मैं इससे अनभिज्ञ थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी योगानन्द उही मार्ग से स्वामी को जस का पात्र देने गए थे और उन्होंने मुझे उस अवस्था में देखा था।

“ओह! उन दिनों का आनन्द! चाँदनी रातों में मैं चाँद को देखती थीर धँजलि-बद्ध प्रार्थना करती—‘मेरा अन्तस्तन भी अन्ध-किरणों के समान पवित्र हो’। यदि कोई व्यक्ति चिन्तनरत है तो वह अपने हृदय में ईश्वर को स्पष्ट रूप से देख सकता है और उसका स्वर सुन सकता है। उस क्षण जो भी विचार उसके मन में उठता है वह तत्क्षण वहीं पूर्ण हो जाता है। व्यक्ति दार्ष्टि साधर में स्नात करता है। ओह! उस समय मेरे मस्तिष्क में क्या-क्या विचार थे। एक दिन मेरे सामन ब्रह्मी नामक सेविका के हाथ से वाली झूटकर समझनाती हुई मिर पड़ी। यह व्यक्ति मेरे अन्तस्तन में झँझुत हो गई।”<sup>२</sup>

आध्यात्मिक अनुभूति की पूर्णता में व्यक्ति उदा यही पाएगा कि वह सर्वोच्च उदा जो उसके हृदय में निवास करती है वही उही प्रकार घण्टे प्राणियों— बसियों पीड़ितों अछूतों और विजातियों—के हृदय में भी निवास करती है। यह अनुभूति व्यक्ति को वास्तव में विनीत और नम्र बनाती है।

श्री रामकृष्ण का श्रेष्ठ व्यक्तित्व स्वयं सारदादेवी की नैतिक और आध्यात्मिक पूर्णता का साक्षी है। पिछले वर्षों में उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा—“यदि वह इतनी पवित्र न होती तो कदाचित्त मैंने नियंत्रण जो दिया होता। परिश्रम के परबाल मैंने दिव्य माँ से प्रार्थना की—‘माँ! मेरी अज्ञानिनी के चित्त से कामुकता का लोचमात्र भी दूर कर दो। जब मैं उसके साथ रहता था तो मैं यह समझ लिया कि माता मैं मेरी प्रार्थना स्वीकार करती है।”

वास्तव में वे दोनों ही महान् थे। उन दोनों में एक-दूसरे में दिव्य माता के वर्धन किए। वे घण्टे नर-भारियों से बहुत मित्र थे। यह बात स्मरणीय है कि जब

<sup>१</sup> उन वर्षों का बार, जो श्री रामकृष्ण ने उन्हें दिए थे।

<sup>२</sup> पवित्र माँ को, जो उदा तम्य व्याक-अन्ध थी, यह आवाज सुनान की परब की तरह प्रतीत हुई। महापोषी पर्वजलि के अनुसार जब मन अत्यधिक एकाग्र होता है तो जानुना आवाज भी विजती की अङ्क बँती सुनाई पड़ती है।



रामकृष्ण ने १८८६ में इहसीसा समाप्त की तो उस दिव्य मारी ने जो उनकी तरह बर्ष से सेवा कर रही थी रोते घोर विसाप करते हुए कहा—'धो माँ ! तुम मुझ छोड़ कर कहाँ चली गई हो ?

श्री रामकृष्ण ने श्री धारबाबेबी के भीतर उसी धार्मिक माता के दर्शन किए जो कि उन्होंने उनमें किए थे। एक दिन उनके चरणों पर मासिध करते हुए उन्होंने उनसे स्पष्ट होकर पूछा—'आप मुझ पर कैसी दृष्टि रखते हैं ? तत्काल उन्होंने उत्तर दिया—'उस दिव्य माँ की तरह जो मन्दिर में स्थित है। वह माता बिचने मुझे जन्म दिया है और अब महाबल में वास करती है। वह अभी भी मेरे चरणों में मासिध कर रही है। मैं तुम्हें मातृत्व का प्रतीक समझता हूँ।'

श्री धारबाबेबी अपने धार्म्यात्मिक अनुशासन (धार्मिक-नियन्त्रण) का पासन श्री रामकृष्ण के निर्देशों के अनुसार किया करती थी। अपने धाराध्य देव श्री रामकृष्ण की सेवा करने में उनके लिए मोक्ष बनाने परसने और धर्म्यत्र व्यक्तित्व सेवाओं में धारदा माँ को एक धनुडी धार्म्यात्मिक अनुमति होती और इस महान् धार्म्यात्मिक मुद्दे के साथ जो उनका जीवन-संगी या सम्भाषण करने का सुभवसर प्राप्त हाता था। परिणामतः वह सर्वोच्च (धार्म्यात्मिक) एकनिष्ठा (एकाग्रता) और दिव्य चेतना को प्राप्त करने में सफल हुई।

इन कठिन धार्म्यात्मिक धर्म्यार्थों और श्रेष्ठ दिव्य अनुमृतियों के दिनों में श्री रामकृष्ण जानते थे कि पवित्र माता ने उनके धार्म्यात्मिक नियोग को बनाए रखने का निश्चय किया है। उन्होंने उनसे कहा था—'जो जन-समुदाय बीटों की तरह धम्बकार में रहता है, तुम्हें उसकी रोकथाम करनी चाहिए। उन्होंने उन्हें महान् मग्न सिपाएँ और उन लोगों को दीला देने के निश्चय किए जा लोग धार्म्यात्मिक धरम के विश्वासु हैं। उनका मार्ग-बर्धक बनने की उन्हें प्ररणा थी। बाद में माँ ने बताया कि 'मैंने ये सारे मग्न स्वामी से ग्रहण किए हैं। इनके द्वारा मनुष्य निश्चय ही पूर्णता प्राप्त करता है।' काशीपुर में उनकी रुग्णावस्था के दिनों उन्होंने उनसे बड़ी सद्गानुमृति से पूछा—'क्या तुम क्रुध नहीं करोगी ? क्या सब क्रुध मुझे ही करता है ?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया—'मैं मारी हूँ। मैं क्या कर सकती हूँ ?' और तब श्री रामकृष्ण ने कहा—'भई मरी तुम्हें बहुत-क्रुध करता है।'

अपन पति की तरह ही उनकी पवित्रता निष्कलक और निर्मल थी। उनका धन और सम्पत्ति का उत्सर्ग यह प्रदर्शित करता है कि उन्होंने कितनी अधिक 'पुत्र के रूप में श्री धारदा माँ का वाचित्व।

सकलता से त्वाय के धारवाँ का पालन किया । वास्तव में उनकी मृत्यु के पश्चात् देवी धारवा धाम्पारिक प्रवेश देने और उनके शिकरों सिद्धों का मार्ग प्रदर्शन करने में पूर्णतया समर्प थी ।

### धरने धाम्प-गृह में

धारवा माँ दक्षिणेश्वर से अक्षय्य, १८७३ में अय्यरामबाटी लौटी और कुछ मास धरने घर म बिताए । १८७४ में उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और वह पिता के शोक में व्यथित माता के लिए अकित-स्तम्भ बनी ।

अप्रैल १८७४ में धारवादेवी दक्षिणेश्वर लौटी । उस समय श्री रामकृष्ण धामातिहार रोप से प्रसन्न थे । घत वह घाते ही उनकी सेवा-मुख्यता में लय गई । स्वामी तो स्वस्थ हो गए किन्तु सेविका स्वयं अस्वस्थ हो गई । स्वस्थ होने पर वह घर लौटी । वहाँ घाते ही उन्होंने पुन रोप-सेवा का धाम्प ले लिया । सभी उपचार तथा औषधियाँ मिष्कन सिद्ध हुईं । फलत भी रामकृष्ण बहुत चिन्तित और चिन्तित हो उठे । अन्त धारवा माँ ने उपवास करने तथा मन्दिर में सिद्धवाहिनी के रूप में सेवा माँ से प्रार्थना कर उनकी अनुकम्पा और प्रार्थना सहानुभूति प्राप्त करने का निश्चय किया । उनके प्रार्थन की सीमा न रही अन्त उन्होंने देखा कि देवी माँ ने दो औषधियाँ बटाई । एक उनकी माता को धामातिहार रोप के लिए और दूसरी स्वयं उन्हें धरनी धारवाँ के लिए । दोनों औषधियों का असाधारण उपयोग किया गया और अन्तसे लाभ हुआ ।

विष्णु माता दिल्ली बड़ जाने के कारण पुन लय हो गई । अन्त वह रोप-मुक्त हुई तो तीसरी बार अन्तरी १८७७ में दक्षिणेश्वर गई । इसी समय श्री राम कृष्ण की माता अन्तरी की मृत्यु हो गई । धारवादेवी ने एक बार फिर दक्षिणेश्वर की यात्रा की किन्तु इस बार वह अल्पकाल ही ठहरी और फिर भीम ही लौट आई । १८८४ और १८८५ में वह दक्षिणेश्वर फिर एक बार गई । इस यात्राओं के दौरान एक बार अय्यरामबाटी से दक्षिणेश्वर जाते हुए धारवादेवी को एक बने बँवस से गुजरना पडा । यह बँवस बाकुलों से भरा था । यद्यपि धारवादेवी एक बल के साथ ही यात्रा कर रही थी, परन्तु वह इसकी बीनी पति से अन्तरी कि प्राय साधियों से बिछुड़ जाती । एक बार वह उसी तरह पीछे रह गई और देखते ही देखते साधियों का समूह अन्त धारवाँ से अन्त हो गया तो धारवादेवी एक बाकु और उसकी पत्नी से मिली । अन्तरे स्थिति का अनुभव करते हुए उनका घटीर अन्त से काँप रहा था परन्तु वह अन्त

धीर दृढ़ रही। मार्ग भटक गई मिठीह बालिका की तरह उन्होंने डाकू धीर उसकी पत्नी को माता-पिता तुल्य समझ कर चित्ताकर्षक मधुर स्वर से उनसे बातचीत की। उनके माधुर्य धीर सरमता से मलक डाकू इस धापतिप्रस्त बालिका के लिए सब भयंकर स्थान पर रक्षक बन गए। उनकी माटी-सुसभ शिष्टता धीर त्याग ने उनके मन में सहानुभूति उत्पन्न कर दी और वह उनके साथ बधिगेदवर तक मार्ग-श्रद्धादर्शन करते हुए गए जहाँ वह पुन अपने साधियों से मिल गईं। साधियों के संरक्षण में धारवा माँ को छोड़ कर दोनों डाकू प्रोक्त हो गए।

श्री रामकृष्ण कंठ के कैंसर रोग से ग्रस्त थे। सितम्बर १८८३ में पहले उन्हें स्वामिपुत्रुधर धीर तीन मास के बाद काशीपुर लाया गया। पवित्र जननी अपने स्वामी की परिपर्या करने भोजन बनाने तथा अन्य प्रावश्यकताओं को पूर्ण करने में तल्लीन हो गईं।

जब श्री रामकृष्ण के रोग में यथोचित औषधियों और विविध उपचारों से कोई सुधार नहीं हुआ तो पावन जननी ने तारकेस्वर के मन्दिर में जाकर दिव्य शक्ति से सहायता की याचना की। उन्होंने दो दिन धनबल्ल निराहार रह कर उपवास किया और दैवी उपचार के लिए प्रार्थना करती रहीं। दूसरे दिन अर्ध रात्रि के समय अकस्मात् एक ध्वनि माँ को सुनाई दी। इस ध्वनि को सुनकर वह धावपर्य-शक्ति रह गई। एकबम उनके मस्तिष्क में यह विचार बिद्युत-सा जमक उठ्य—“संसार में कौन किसका पति धीर कौन किसकी पत्नी है? मेरा कौन सम्बन्धी है। मैं अपने धापको क्यों निरर्थक मष्ट करने पर तुमी हुई हूँ।” उनका कहना है कि “इस विचार से स्वामी के प्रति मेरा मोह जाटा रहा और मेरा मन पूर्व विराव से परिपूर्ण हो गया।” दूसरे दिन प्रात ही मेरे काशीपुर लौटने पर स्वामी ने मुझसे पूछा—“क्या धाप को कुछ प्राप्त हुआ? यथार्थ में सब माया है। क्या मैं सत्य नहीं कह रहा?”

स्वामी ने स्वप्न में देखा कि एक हाथी उनके लिए औषधि लेने बाहर गया है और औषधि पाने के लिए भूमि लौट रहा है। पवित्र माँ ने एक स्वप्न देखा जिसमें उन्हें देवी माता कामी की प्रतिमा की बदन एक धीर मुकी हुई बुटिगात् हुई। इत दृश्य ना वह इस तरह वर्णन करती है—“मैंने पूछा—माँ तुम्हारी बदन मुकी हुई क्यों है?” तो माँ ने श्री रामकृष्ण की गर्दन की धोर संकेत करते हुए कहा—“मेरे सने में भी कैंसर की पीड़ा हो रही है।”

१९ अगस्त १८८६ को श्री रामकृष्ण परमहंस ने इह-भीला समाप्त की। माँ का हृदय थोक धीर निराशा से पूरित था। अन्तर्वेष्टि क्रिया के बावजूद पावन

जन्ती हिन्दू विपदाओं की तरह अपने धामुपक उतारने लगीं तो उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि उसके स्वामी (रामहृष्य) प्रपन्न सन्ने हैं और कह रहे हैं—“यह तुम क्या कर रही हो? मैं तुम से किसम नहीं हुआ मुझे केवल एक कमरे से दूसरे कमरे में गया हुआ समझो” इस साहाय्यकार से पवित्र माता धारदा को बड़ी सान्त्वना मिली।

तीर्थ-यात्रा

स्वामी के स्वर्गारोहण के दो सप्ताह बाद पावन जन्ती न उतरी भारत की ओर तीर्थ-यात्रा प्रारम्भ की। ये यात्री कसकटा से ३० अगस्त १८८६ को चल। माँ के साथ दो महिला अनुयायी—रामहृष्य की भतीजी सखी दीवी और गोपाल माँ की भव्य मठों के अनुयायी जो कासाठर में स्वामी योगानन्द स्वामी धर्मदास्य और स्वामी अक्षुतानन्द के नामों से प्रसिद्ध हुए और दो परम अनुयायी महेश्वरनाथ सुप्त तथा उसकी पत्नी बे। यह मण्डली मार्ग में बेबर और बाटावसी रुकी। बाटावसी में श्री विद्यनाथ के मन्दिर में सम्प्रा-पूजा में मण्डली सम्मिलित हुई, तो पावन जन्ती परमानन्द की धवस्था में भी। उन्होंने रामायण के नायक मगवान राम की मण्टी अयोध्यापुरी के भी दर्शन किए। रस हाथ बुद्धावन की पवित्र भूमि को लाकते हुए माँ को धाँव लग गई। उनकी जमरी हुई नुवा पर रामहृष्य कारना-कवच बना था। स्वप्नावस्था में माँ के सम्मुख उसके स्वामी प्रकट हुए जिसका वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है—

“मैंने उन्हें रस के दिव्य की बिड़की से देखा। वे शैतानी बे रहे थे—  
 देवो तुम्हारे पास मेघ सोने का रसा-कवच है—उसे लो मठ लेना।” यह शैतानी सुनते ही माँ की धाँव लुप्त गई। उन्होंने तत्काल उस कवच को उतार कर उस दिव्य में सुरक्षित रस दिया जिसमें रामहृष्य का चित्र रखा हुआ था। बाद में जब वह कसकटा लौटीं तो उस कवच को बेसूर<sup>१</sup> मठ को सौंप दिया।  
 बुद्धावन में पावन जन्ती की धवस्था अपने प्रियतम हृष्य के बिच्छ में सड़पती राधा की-सी थी। इस वातावरण में माँ की अपने दिव्य धाराम्य को पाने की फिर अभिलाषा और तीव्र इच्छा इतनी हृदय-विदारक रूप धारण कर गईं की कि वह प्राय धमबाध बहाती दीबतीं। उनकी इस मानसिक

<sup>१</sup>बेसूर का मठ स्वामी विवेकानन्द ने रंगमा के तट पर स्थापित किया था। रामहृष्य को समर्पित इस मन्दिर में ही उनके धवसेय सुरक्षित रखे गए हैं।

इस वर्ष के बाद से वह कलकत्ता में उद्योग करने की जिदकी व्यवस्था उनके अनुयायियों श्रीर भक्तों द्वारा की गई थी। इसके बाद वह उस घर में जीवनपर्यन्त वहीं बहाँ थी रामकृष्ण के दीक्षित सिष्य स्वामी धारदास ने उनके रहने का स्थायी प्रबन्ध कर दिया था। यह घर 'मातृ-निवास' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

### तपस्या श्रीर परमानन्द

पावन बनगी ने १८२३ में कठोर तप करने का निश्चय किया। यह वीर तप जिसे 'पंचतप' कहते हैं इसलिए किया गया था कि माँ बारम्बार धारदास-प्रबन्धों की अनुमति अनुभव किया करती। इन अनुमृतियों में वह प्रायः एक घण्टा को बेसती जो उन्हें पंचतप करने की प्रारंभता करता। माँ ने कई बार एक कन्या को भी बेसा था। माँ को दुर्लभ अनुमृतियाँ होती थीं। श्री रामकृष्ण की महिमा अनुयायी योगीन माँ आदि इसकी छापी बेटी हैं। वह स्वच्छा से साठेरिक चेतना से ऊपर उठ सकती थीं। एक बार जब वह कलकत्ता में बसरावबाबू के मकान की छत पर ईश्वरीय ध्यान में मग्न थी तो ध्यानक समाधिस्थ हो गई। उस समाधि में उन्हें एक विशिष्ट अनुमृति हुई, जिसका वर्णन वह निम्नलिखित शब्दों में करती हैं।

'मुझे ऐसा लगता था कि मैं दूर देश की यात्रा करके आई हूँ। उग देश में प्रत्येक प्राणी का मेरे प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार था। मेरा अपना सौन्दर्य अचर्यनीय था। मेरे स्वामी श्री रामकृष्ण भी वहाँ विद्यमान थे। लोगों ने बड़े आदर और माधुर्य से मुझे उनके पास बैठाया। उस परमानन्द की प्रवस्था का वर्णन मेरी शक्ति से बाहर है। जब मेरा मन उस उत्कृष्ट अनुमृति से नीचे धारा तो मैं अपने शरीर को पूर्ववत् वहाँ स्थित पाया। प्रवस्थात् मेरे मन में विचार धारा कि मैं कैसे इस कल्प शरीर में पुनः प्रवेश करूँ। मैं बहुत देर तक अपने मन को ऐसा करने के लिए समझा नहीं पाई। अन्ततः अन्ततः मन मान गया श्रीर मेरा शरीर चेतनामय हुआ।'

ऐसा ही अनुभव माँ को बेसुर मठ के निवृत्त नीलाम्बर मुखर्जी के पर

'पंचतप जते कहते हैं जिसमें चार घोर तो धम्मिषिता होती है और ऊपर सूर्य के तप को पाँचवीं धम्मि समझा जाता है। इस प्रकार चार तप के दौरान में प्रारंभिक चार चिन्तन किया जाता है। इस तप के बाद माँ को मानसिक परिवर्तता का बोध नहीं हुआ।

(जहाँ माँ के रहने की व्यवस्था की गई थी) हुआ था। इस अनुभूति में उन्हें पारैरिक बेतला पाने में बहुत समय लगा था। जब उन्हें यह व्यवस्था धानी मुक्त हुई तो माँ ने कहना प्रारम्भ किया—“ओह भोगीन। मेरे हाथ-पाँव कहाँ हैं?” योशीन माँ ने जो माँ के साथ ही ध्यान-मग्न थीं यह सुनकर उनके धीरे-धीरे के शरीरों को बार-बार छूकर बताया—“माँ तुम्हारे हाथ-पाँव कहाँ हैं।” जो कुछ भी हो पावन बबनी का पूर्व पारैरिक बेतला पाने में बहुत समय लगा।

जैसे-जैसे पवित्र माता की प्राण्मार्मिक महामत्ता की व्याधि बढ़ती गई उनके शरीरों की संख्या भी बढ़ती गई। जब बहुत-से भोग्य माता के शरीर निर्ययन और प्राण्मार्मिक दीक्षा के लिए दिन प्रतिदिन घाने लगे।

### घरेलू जीवन

पावन बबनी की माँ स्वयं सुन्दरी ने १९०९ में स्वर्णारोहण किया और जब माँ ही घर में सब से बड़ी थीं। उनके चार भाई थे जिनमें प्रथमवर्ष कनिष्ठ और सबसे अधिक प्रतिभाशाली था। दुर्भाग्यवश कास्टी पेटिका में उत्तीर्ण होने के दोढ़े समय के बाद ही १८९९ में उसको प्रथमय में ही काल ने ग्रस लिया। उसके बाद उसकी विधवा सूरदासा रह गई जिसे वह पवित्र माँ के साभिष्य में छोड़ गया था। सुरदासा अपने पति की प्रकाश मृत्यु के शोक के कारण उन्मत्त हो गई। १९०० में पति की मृत्यु के बाद उसने एक पुत्री को जन्म दिया जिसे राजारानी या प्यार में रामू कहकर पुकारते थे। विधवा माँ को रामू का प्रणय स्नेह था क्योंकि उसकी स्मृति और उन्मत्त माँ उसकी उचित देखभाल नहीं करती थी। माँ ही उसके लिए माता के प्रभाव की पूर्ति करती थी। वह छोटी सड़की और उसकी माँ शारदादेवी के लिए सदैव चिन्ता और कष्ट का विषय बनी रहीं और कई बार उन्हें प्रत्रिध व्यवहार भी सहना पड़ा था लेकिन माँ के हृदय में एक क्षण के लिए भी बाधिका तथा उसकी माँ के लिए प्रेम कम नहीं हुआ। वह यह कहकर अपने मन को शांत बना देती—“अम्मावतः मैने शिवजी की पूजा कष्टकाशीर्ष विस्वपत्रों से की है इतलिए ऐसे कष्टक मेरे जीवन में हैं।”

भदि रामू की माँ मूल थीं तो बड़ी होने पर रामू उससे कोई कम चुनने वाला कौटा प्रभावित नहीं हुई। वह शरीर और शक्तिशाल दोनों से दुर्बल थी। वह विद्वत् प्रवृत्ति की और बचकर रूप से इठीमी थी। वह अपनी यशस्वी और तेजस्विनी बुधा से स्नेह और प्यार पाकर उद्विग्न हो गई। जून १९११ में पवित्र माँ ने उनके विवाह की व्यवस्था की। बनों बीत जाते थे पर वह अपने पति-मूह नहीं जाती थी।

परिणामतः वह अपनी माँ के साथ पवित्र माँ के घर की सदस्या बन गई थी। लड़की में जन्मलता घाने पर जो कि उसने अपनी माता से प्राप्त की थी उसने दुर्गुण और भी अधिक हो गए। रामू का एक शिष्य था किन्तु वह उसकी देख-रेख नहीं करती थी। अतएव दिव्य माता उससे विनय करती और यत्र-तत्र उसे डांटती भी। ऐसे ही एक अवसर पर कोष में रामू ने सम्झी की टोकरी में से वनस्पति का एक बड़ा पौधा दिव्य माता पर फेंका। माँ के वह बहुत जोर से सगा। उसकी बोट से उनकी कमर झुक गई और वहाँ सूजन भी घा गई। पवित्र माता को जब रामू के लिए अधिक चिन्ता हो गई क्योंकि हिन्दुओं का विश्वास है कि यदि एक मूर्ख और धार्मिक मनुष्य किसी धार्म्यात्मिक उदात्तशील मनुष्य या स्त्री का अपमान करता है तो बोधी को जीवन में अपने पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है, अथवा उसकी पुर्णति होती है। अतः दिव्य माता थी रामकृष्ण के विश्व की घोर मत्तमस्तक हो प्रार्थना करने लगी—‘मयबन्! हृदय उससे अपराध को क्षमा करें। वह विवेक-भ्रम्य है।’ फिर उन्होंने रामू को धार्मिकार दिया और कहा—‘रामू! स्वामी ने एक बार भी विरोध का अपराध मुझसे नहीं कहा और तुम मुझे इतना सताती हो। तुम यह कैसे समझ सकती हो कि मेरा स्वान कहाँ है? तुम मुझे इतना कुछ समझती हो क्योंकि मैं तुम सबके साथ रहती हूँ।’ इन शब्दों को सुन रामू रोने लगी किन्तु ये प्रश्न शान्तिक थे।

रामू कभी भी नहीं बरपी। रामू का साथ स्वयं दिव्य माता पूरा करती थीं। यद्यपि उन्हें धार्मिक बठिनाई थी पर वे किसी अनुयायी से सहायता नहीं ले सकती थीं क्योंकि ऐसा करना उनके प्राणम्य श्री रामकृष्ण के आदेश के विरुद्ध था।

माँ का मन निरन्तर निर्मल और उदार था। उन्होंने अपने को सबकी सेवा में अर्पित कर दिया था। जब दिव्य माता धार्म्यात्मिक चिन्तन में तस्मीन होतीं और प्रायः समाधि की अवस्था तक पहुँच जातीं तब उन्हें इस संसार की घोर आकर्षित करने के लिए कुछ रोप न रह जाता। अतएव धारमा वाले व्यक्ति जिन्हें इस संसार से कोई मोह नहीं रह जाता और न ही अपने पापिण्य दरीर से प्रेम रहता है उनका कभी-कभी अल्पामु में ही समाधि की अवस्था में बेहावसान हो जाता है। दिव्य माता न अनुभव किया और उनकी विरवास भी हो गया कि स्वामी ने स्वयं यह उमसन पैदा की थी ताकि वह उनका मरण पूर्ण करने के लिए जीवित रहे जिस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए वे उसे छोड़ न्ये।

‘स्वामी ने मुझे किस प्रकार रामू की उमसन में डाल दिया। स्वामी के

देहावसान के परचाय मुझे जीवन में कुछ भी न प्राप्ता था। मैं भौतिक पराबों से पूर्णतया विमुक्त हो गई थी और प्रार्थना करती थी कि मैं इस संसार में रह कर क्या करूँगी। उस समय मैंने एक दस या बारह वर्ष की बालिका को देखा जिसने रक्तवर्ष कर वस्त्र धारण कर रत्ने में घोर ओमेठी घोर बसी धा रही थी। स्वामी ने उसकी घोर संकेत करके मुझसे कहा—'इत निरीह प्राणी का धार्मिक्यन कर इसको सहारा दो। बहुत से बालक (धनुषायी) तुम्हारे पास आएँगे। इतना कह कर वे तत्क्षण घन्टाघात हो गए। मैंने बालिका की घोर धार्मिक देर तक नहीं देखा। तत्पश्चात् मैं उसी स्थान पर बैठ गई (जयरामबाटी के अपने घर में)। उस समय रामू की माता जिनकुम पापल थी। वह कुछ चिमड़ों को धपनी भुजा में दबाए लड़ी की घोर रामू रोते-रोते उसके पीछे चल पड़ी। यह देखकर मेरे हृदय में विचित्र स्वप्न हुआ। मैं एकदम भाग कर रामू के पास गई घोर मैंने उसे धपनी भुजाओं में उठा लिया। मैंने अपने धाप से कहा—'ठीक है, यदि मैं इस बालिका की देख-भाल न करूँ तो कौन करेगा। इसके पिता नहीं हैं घोर इसकी माँ पापल है। मैंने बालिका को भुजाओं में धपी उठाया ही था कि मुझे स्वामी के दर्शन हुए। उन्होंने कहा—'यह बही कन्या है। इसे ही धपना सहारा समझो। यह मायावी शक्ति योगमाया है।'

पवित्र बननी स्वयं कहा करती थी—'येला मेरा रामू के प्रति मोह एक मतिभ्रम है जो मैंने स्वयं धपने ऊपर से रखा है।' कमी-कमी वह कहा करती—'मेरा मन रामू के प्रति किञ्चिन्मात्र भी नहीं है, मैं बरबस मन को इस घोर लगाती हूँ। मैं स्वामी से प्रार्थना करती हूँ कि हे भगवान्! मेरा मन बाड़ा-सा रामू के प्रति धार्कपित करो धम्पवा कौन उसकी देखभाल करेगा।'

निस्संदेह दिव्य माता का चित्त रामू के कारण उत्पन्न व्याकुलताओं के होते हुए भी सबैव ईश्वर में धासकत रहता। एक सामान्य गर धनवा मारी को धपने सम्बन्धियों में धासकत हो वह बुधा हो या बूढ़ वात्स्यकाल में हो या बड़ी धावु में मृत्यु के समय धपने दृष्ट बनो की बेबना को नहीं सह सकता लेकिन पवित्र माता जो रामू को बहुत चाहती थी धपने सेबकों को बारम्बार रामू घोर उसकी ल्बेरी बहनों को धापस जयरामबाटी भेजने के लिए कहती? जब माँ के पास धिमु उनके धपन-कस के लमीप धाते ती वह उन्हें यह कहते हुए धपने से दूर से जाने को कहती कि उन्होंने धपना मन एकधारमी इन सबने दृष्ट लिया है इसलिए उनकी उपस्थिति बाधनीय नहीं है।



## गुरु के रूप में

श्री रामकृष्ण परमहंस के बाद पवित्र माँ सारदा का ही ऐसा महान् व्यक्तित्व कहा जा सकता है जिसे इस मत और मठानुयायियों से सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुआ। यही उनकी प्रथम शिष्या थीं जिन्होंने तादात्म्य प्राप्त किया। उनका धारण था कि उनके निर्वाचन के पश्चात् पावन बननी उनके कर्तव्योद्देश्य का प्रचार करें। अपने शिष्यों से उन्होंने यह कहा कि वे उनमें और विष्य माता में कोई भेद न समझें। उनकी साम्प्रदायिक उपस्थिति और भक्तिक कवित्व माँ द्वारा प्रतिभासित हुई और पवित्र माँ उनकी मृत्यु के बाद गुरु बनने के पूर्वतया योग्य थी। गुरु होना एक महान् दायित्व है किन्तु पवित्र बननी जब भी किसी को दीक्षा देने का कार्य सम्पन्न करतीं तो उनमें गुरु-गुरु की भावनाओं की पूर्ण स्वीकृति का आभास मिलता। वह प्रायः कहती—

गुरु की चरित मन्त्र द्वारा शिष्य तक पहुँचती है। यही कारण है कि गुरु, सत्कार करते भयबा बीसा देने के समय शिष्य के सारे पापों को अपने ऊपर ले लेता है और शारीरिक व्यापियों से अत्यन्त पीड़ित होता है। गुरु होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उसे शिष्य के पापों का दायित्व संभालना पड़ता है। वह उनसे प्रभावित होता है। तो भी एक भ्रष्टा शिष्य गुरु की सहायता करता है। कुछ शिष्य दीप्त उन्नति करते हैं और कुछ धीरे-धीरे। वह व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों पर निर्भर है जो वह पूर्वकृत कर्मों से प्राप्त करता है।”

उनका वास्तव्य और मान्य प्रत्येक प्राणी के लिए समान था। व्यक्तिगत व्यथा माँ के सामने विज्ञासु भक्त को साम्प्रदायिक पक्ष-अवर्धन करने में बाधा बनकर नहीं आई। एक बार रामकृष्ण के एक महान् अनुयायी स्वामी प्रेमानन्द ने कहा—“बहु शिष्य जिसका हम पाल नहीं कर सके उसे पवित्र माँ के पास भेज रहे हैं। वह प्रत्येक के पापों को धोकर करके उसे पचाठी हुई उन्हीं कारण दे रही हैं।” मंगलवार और शनिवार के दिन (जब वह अपने कमकता के घर में रह रही थीं) सैकड़ों अनुयायी और भक्त उनके सम्मुख मस्तक झुकाते और उनके चरणों का स्पर्श करते। वे तब अपने शरीर में परावृत्त बेदना के कारण तीव्र जलन की अनुभूति करतीं। अतएव वे अपने पैरों का बारम्बार संवाजन से प्रसादन करतीं। ऐसा करने से उन्हें बहुत आराम मिलता था। जब रामकृष्ण की एक स्त्री-अनुयायी ने माँ को ऐसा न करने को कहा और चेतावनी दी कि इससे नजला हो जाएगा तो पवित्र बननी ने उत्तर दिया—

योमीन ! मैं तुमको किस प्रकार इसकी व्याख्या करके बताऊँ ? कुछ समय मेरे घर से होते हैं जिससे मेरे घर में एक घड़मुठ धामम्ह की महार व्याप्त हो जाती है। इसके प्रतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनके स्वर्ण से मेरे घर में एक भयंकर-सी जलन होने लगती है। मुझे हड़के के दंसन की-सी पीड़ा की अनुभूति होती है। रोगाजस के प्रयोग के पश्चात् ही मुझे उस पीड़ा से मुक्ति प्राप्त होती है। एक बार मेरी एक शिष्या की अनुपस्थिति में जो मेरी सेवा में संलग्न रहती थी एक पुरुष यहाँ आया। कुछ वृत्त से उसे देख कर मैं अपने कमरे के भीतर करके मेरा अभिवादन करने का इच्छुक था। मैंने उसे बैसा करने से रोका और स्वर्ण को धार भी पीछे सिकोड़ लिया। मेरे मना करने पर भी वह नहीं माना। उस समय से पाँचों धार उदर में असहनीय पीड़ा के कारण मैं जीवन धार मृत्यु के बीच झूलती रही हूँ। मैंने अपने पाँचों को तीन-चार बार बोया किन्तु फिर भी मैं उस जलन से मुक्ति नहीं पा सकी हूँ।”

उद्यपि पावन जननी जानती थी कि उन्हें अपने शिष्यों के पापों का फल उतक स्वात पर स्वर्ण क्षेमता पड़ेगा ता भी वे उन्हें माँ के बालस्य से बचिठ नहीं रख सकती थी।

एक बार जब एक शिष्य उनके कारण स्वर्ण करने से इसलिये द्विषकिचाया कि बैसा करने से नहीं उन्हें कष्ट न पहुँचे तो उन्होंने कहा—“नहीं मेरे बच्चे ! इसी उदरम को लेकर हमारा जन्म हुआ है। यदि हम दूसरों के अपराधों पापों धार पीड़ाओं को सहन नहीं कर सकते धार हम उनका उन्मूसन नहीं कर सकते तो ऐसा धार कौन करेगा ? उन पापात्माओं धार पीड़ितों का उदरदायित्व फिर धार कौन सम्भालेगा ?” माता की अन्तिय व्याधि में जब कि उनकी काया बहुत तीव्र हो चुकी थी धार जब वह बिना किसी की सहायता के उठ भी नहीं सकती थी तो बैरागी शिष्य माँ के पुत्रों धार पीड़ाओं की परस्पर चर्चा कर रहे थे जो माँ ने अपने जीवन में क्षेपी थीं। उनमें से एक ने कहा—“यदि माँ इस बार रोय-मुक्त हो जाती है तो हम उन्हें इस बात के लिए कहें कि वे धार किन्ती को भी बीसा न दें। उनके रोयों धार पीड़ाओं का मुख्य कारण यही है कि उन्होंने किठने ही प्रकार के रोयों के पापों को धामत्वात् कर लिया है।” यह सुनते ही पवित्र माँ के होठों पर मुस्कताहट था गई धार उन्होंने कहा—“तुम ऐसा क्यों कहते हो ? क्या तुम यह सोचते हो कि स्वामी केवल रसगुस्ते खाने के लिए बहाँ पाए थे ? एक बार माँ ने अपने एक शिष्य से कहा—“जो व्यक्ति मेरे पास घाते

हैं उनमें से अधिकतर अपने जीवन से ऊब चुके होते हैं। किसी भी प्रकार का पाप उनसे मूटा नहीं रहता। परन्तु जब जब हमें मेरे पास धाने हैं और मुझे माँ कह कर सम्बोधित करते हैं तो मैं सब कुछ भूल जाती हूँ और व क्षण या जाते हैं जितने के वे अधिकारी भी नहीं होते।”

### माँ का आतिथ्य

पश्चिम माता का आतिथ्य पश्चिमीय था। माँ की-की सावधानी और चिन्ता उनका एक विशिष्ट स्वभाव था। जिन लोगों को उनके यहाँ जाने का सीनाप प्राप्त था वे जितना समय भी वहाँ टहरते उनका प्रतिपि-सत्कार ग्रहण किया बिना नहीं था सकते थे। यदि उनकी सेवा में मौलाना शिष्या को किसी कार्यवाही लक्ष्मीय के माँ से जाना पड़ता और वह बेर से सँटती तो माता भी निश्चित समय पर भोजन न खा कर उसकी प्रतीक्षा करती! जब कभी भी उनके पड़ानु जयराजवादी' माँ बामे घर पर उनके पास आते तो वह उन्हें दो-चार दिन वहाँ रुक कर विधायक करने का आग्रह करती। वे जानती थी कि मोर्ता को जयराजवादी पहुँचाने से काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वे कहा करती कि गया प्रबन्ध बनारस की यात्रा करना गरम है किन्तु इस स्थान की नहीं। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में माँ के भक्तों की संख्या जो उनके कतकते बामे निवास स्थान पर उनका दर्शन करने आते थे इतनी अधिक हो गई थी कि वे इतनी भीड़भाड़ से बहुत पक पई और शान्तिपूर्वक विधायक करने के लिए अपने माँ बामे घर बसी गई। परन्तु वहाँ भी पावन जननी के अग्रानु कतकते से आया करते थे। उनमें से कुछ अपने भी व था बिना किसी पूर्व सूचना के समक-कुसमय पहुँच जाते। उन सबका ठीक बैसा ही स्नेहपूर्ण और हार्दिक आतिथ्य प्राप्त होता था।

### माँ की अस्तित्व

पश्चिम माता नेपथ इच्छा अस्ति से ही बुधबधामिया को बुधब से विमुक्त करने की गन्ति रखती थी। इसी अस्ति से उन्होंने एक पुराने सदिरासेवी को इस बुध ध्यमन से मुक्त कराया। उन्होंने एक लड़की के मन का परिवर्तित किया जो एक मुबक का पाप की घोर प्रवृत्त करने का प्रयत्न कर रही थी। इसके अनिर्दिष्ट माँ ने एक मुबकी पत्नी को पश्चिम जीवन-यापन के लिए प्रेरित किया आकि इस निराशा में कि उनका पति त्याग और उत्सर्ग का जीवन

व्यतीत करने गया है अपने जीवन का मास कर रही थी। कुछ भक्तों को माँ के सम्पर्क में आने के बाद प्राप्यारम्य सम्बन्धी अनुभव हुए। यद्यपि कुछ व्यक्तियों ने माँ के दर्शन तो क्या उनका चित्र तक न देखा जा तो भी उन्होंने स्वप्न में उन्हें मानव स्त्रीर धारण किए हुए एक देवी के रूप में देखा। कुछ भक्तों ने स्वप्न में पूर्ण रूप में दृश्यवा धार्मिक रूप में उनसे वीक्षा ली और जब वास्तव में उन्होंने उनसे वीक्षा देने के लिए याचना की तो क्या देसते हैं कि पावन माँ ने वही मन्त्र दिए जो उन्होंने स्वप्न में उनसे लिए थे। बँपला माटक के जन्म बाटा गिरीसन्ध्या धोप ने पावन बननी के दर्शन स्वप्न में तक किए जब वे केवल १६ वर्ष के थे। जब काशी बपों के परचाद् वे माँ से मिले तो यह देस कर उनके धारण्य की सीमा न रही कि उन्हें तो वे पहले स्वप्न में भी देस चुके हैं। यह अपना जीवन बहुत धारणी से व्यतीत करती थीं और शिवाय साधारण महिला की भाँति बीक्षित करने के अतिरिक्त यह मन्त्रों के प्राप्यारम्यक धर्म भी स्पष्ट करती थीं और श्री रामकृष्ण मठ से अनभिन्न छात्रों को ब्रह्मधर्म और सन्मास की धपधों के गूढ धर्म नी समझाती थी। ब्रह्मचारिणी को स्वेत वस्त्र और सन्मासी को वेस्टर रंग में रंगे वस्त्र कल्पान और प्राचीर्वादि के रूप में देती।

### दूतरी बार तीर्थ-यात्रा

सन् १८८८ में पवित्र माँ स्वामी परीतानन्द जी के साथ गया की यात्रा की गई। वहाँ जाकर उन्होंने रामकृष्ण की माँ की यात्र में उनके बाह संस्कार के मंत्रों का पाठ किया। माँ ने बौध गया की भी यात्रा की। उठी वर्ष पुरी के विद्यास और विराट् मन्दिर की यात्रा का भी सीमाय्य उन्होंने प्राप्त किया। गया और पुरी यह इसलिए गई कि स्वामी रामकृष्ण ने उनकी यात्रा नहीं की थी और यात्रा न करने का प्रयुक्त कारण यह था कि सम्भव है वहाँ यह बीबी हर्षोन्माय से इतने अधिक उमस हो जाये कि उनके हृदय की गति सदा के लिए बन्द हो जाए।

१८९४ ई० में माँ ने दूतरी बार बनारस और मुम्बयन की यात्रा की। १९०१ में वह फिर पुरी गई। १९१० में ब्रह्मपुर इस्ती हुई यह रामेश्वर के लिए चल पड़ी। मद्रास में सगमय एक मास रुकी और वहाँ कई लोगों को बीक्षित किया। वहाँ पर पर्याप्त संख्या में विक्षित त्रिपों को देसकर

१. पुष्पतना माँ श्री सारदा देवी रामकृष्ण मठ मयतापुट, मद्रास।

### पूर्व तथा पश्चिम की सप्त महिलाएँ

बहुत प्रसन्न हुईं। रामेश्वर जाते हुए वे मधुरा स्क्रीं धीरे उन्होंने नगर के दिव्य देवी माता के मन्दिर की भी यात्रा की। रामेश्वर में राजा रामनाथ की धोर से जोकि स्वामी त्रिवेकानथ के बहुत बड़े प्रशंसक थे माँ के पूजा-घाट के लिए विदेह सुविधाओं की व्यवस्था की गई? उससे पूर्व धीरे परचाएँ किसी भी तीर्थ बानी को इस प्रकार की सुविधाएँ नहीं प्राप्त हुईं। रामेश्वरम् से यह बंपत्तौर गई। कलकत्ता लौटते हुए वह एक दिन के लिए राजामुन्दरी रकी धीरे पवित्र मदी पोशाकरी में उन्होंने स्नान किया। कुछ दिन वह पुरी भी स्क्रीं धीरे प्रप्रैष १९११ में वे कलकत्ता पहुँचीं।

नवम्बर, १९१२ में वह तीसरी बार बनारस गईं धीरे इस पवित्र नगरी में बाईं मास बकीं। वे प्रसिद्ध बनेली पुरी से भी मिलीं जो रामकृष्ण के गुरु ठोठापुरी का शिष्य भाई या धीरे जिसकी धामु तक ही वर्ष से भी अधिक की। उन्होंने लौटने से पूर्व सारनाथ को भी देखा।

### कलकत्ते में बनिम माँ का घर

मई, १९०९ में माँ कलकत्ते में बने पवित्र माँ के मन्दिर में बनी गईं। वहाँ रहते हुए उनके पास श्री रामकृष्ण की कुछ शिष्याएँ भी धाकर ठहरती थी जिनमें से योगीन माँ मोलाप माँ लक्ष्मी दीदी धीरे धीरे माँ के नाम विशेष उस्तोखनीय हैं। बीटी माँ कन्वारी भी धीरे सेप सब बिबवा। वे सब बहुत पवित्र जीवन व्यतीत करती धीरे उन सबने पूजा धीरे सेवा का प्रथम से रखा या। श्री रामकृष्ण के कुछ शिष्याँ जैसे श्री बसन्तम बोस महेश्वरनाथ गुप्त आदि की परिवर्तन माता जी के पास घाटी भी धीरे उन्हें अपने घर निर्माजित भी करती थी।

### पश्चिम दिग

जनवरी १९१९ में पावन जननी 'जयरामबाटी' गईं धीरे वहाँ एक वर्ष से भी अधिक ठहरईं। जयरामबाटी-बाठ के पश्चिम तीन महीनों में माँ का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। दिसम्बर, १९१९ में जब कि माँ का जन्म-दिवस था उन्हें कासे प्जर ने घर बनाया धीरे उसके परचाएँ तो वह प्रायः प्जर से पीड़ित रहने लगीं। माँ की पश्चिम बहुत तीव्र हो चुकी थी इसलिए स्वामी सारनाथ ने 'रामकृष्ण मत के प्रकाशन केन्द्रों में से यह एक है, धीरे यह उद्बोधन कार्यालय क रूप में भी जाना जाता है। उद्बोधन नाम की एक पालिक बंपत्तौ बनिम वहाँ से प्रकाशित होती है।

२७ फरवरी १९२० में उन्हें कनकता बापस मारने का प्रबन्ध किया। माँ की बधा उस समय बहुत दयनीय थी और वह इष्टियों का डाँचा दीखती थी जो कि एक पतली-सी मिसली से डका था। वह एकदम कालिल की भाँति काली हो गई थी। अबले पाँच महीने वह इसी प्रकार कष्ट सहती रहीं। कभी-कभी माँ का ज्वर १०१ डिग्री तक पहुँच जाता था और पूरे घरीर में एक तीव्र सी जलन हागी जिससे उन्हें बड़ा कष्ट होता था।

मृत्यु से एक महीना पहले पवित्र माता ने अपने कमरे से श्री रामहृष्य का चित्र उतारवा कर दूसरे कमरे में लयबाया और अपना विस्तर भूमि पर लयवाया। स्वास्थ्य की इनकी दैन-दैनिक अवस्था में भी व जो कुछ खाती जाने से पूर्व अपने स्वामी को उठका प्रीय अवश्य लपाती। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व माँ ने अपने मन को रामू और गबू के छोटे बच्चे की घोर से जो उन्हें बहुत प्रिय व हटा लिया। स्वामी भारद्वाज्य और अन्य चर्करा को उस समय महँगात हो गया कि सब माताजी प्रबिध जीवित नहीं रहेंगी।

रक्तास्ता के अरब सत्रकी टाँगों में सूजन धामी पुरू हो गई और इस सूजन के कारण वह अपने विस्तर से भी नहीं उठ सकती थी। अन्तिम तपों से कुछ दिन पूर्व एक स्त्री ने उन्हें राष्ट्रीय प्रणाम किया और यह कहती हुई सुनक पड़ी कि—“माता जी आपके बाद हम पर क्या बीतेगी?” पवित्र माता ने कठिनार्थ से सुनाई देने वाली भीमी आवाज में उसे सम्बन्धना ही और कहा—“तुम क्यों डरती हो— तुमने स्वामी जी को देख लिया है। कुछ क्षण रुकने के पश्चात् माँ ने फिर कहा—“लेकिन मैं तुम्हें एक बात बताती हूँ कि यदि तुम मन की प्राप्ति चाहती हो तो दूसरों के दोषों की घोर दृष्टिपाठ मत करो। प्रच्छन्न है कि तुम अपने ही दोषों को देखो। सारे बिन्दु को अपना बनाना सीखो मेरी बच्ची इस संसार में कोई भी परयाप अपना बनाने नहीं है। यह पूरा संसार तुम्हारा अपना है।” शायद इन शब्दों में समस्त विश्व के लिए उनका अन्तिम संदेश भी प्रिया हुआ है।

अपने जीवन के अन्तिम तीन दिन वह एकदम धान्य थीं। उन्होंने एक बार स्वामी भारद्वाज्य को बुला कर कहा “घरातू मैं जा रही हूँ। यौगीय योनाय तथा अन्य सब वहाँ हैं। इनको दण-भास करना।”

२० जुलाई १९२० को परमानन्द की अन्तिम अनुमति के बाद वह रात में देह छोड़ निर्वाण की प्राप्ति हुई। उनका शव बेनूर मठ में लाया गया। और अन्तिम संस्कार वहाँ किया गया। वहाँ हजार व्यक्ति भक्त तथा श्री रामहृष्य के शिष्य वहाँ उपस्थित थे।

### प्राँ की धार्म्यात्मिक महानता

पावन बननी का सरस और आह्लास रहित जीवन इतना गम्भीर है कि उसकी असाधारण प्रवृत्ति को साधारण प्रवृत्ति की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। काल की दृष्टि से बहु हमारे बहुत निकट थी। साधारणतः प्राचीन काल के सन्तों और महात्माओं के माय के साथ प्राचीनता के कोहरे में अनेक उपास्थान और परम्पराएँ बनीमूल हो जाती हैं लेकिन सारदा देवी के सम्बन्ध में हमें जो कुछ ज्ञात है वह इस प्रकार के उपास्थानों और परम्पराओं द्वारा संश्लेषित नहीं। संसार न ऐसी धर्म्य स्त्रियाँ नहीं देखीं जो इस पावन बननी की भाँति अपने पति के संय रही हों। किसी भी धर्म्य स्त्री का जीवन माँ के समान नहीं है। पावन बननी निरन्तर इष्टदेव की आराधना में तन्मय रही और उनकी धार्म्यात्मिकता इतनी पहलू और गम्भीर थी कि माँ का बाह्य जीवन इतना ही साधारण बारी की भाँति होकर पड़ता था। सारदा देवी इतनी सात्विक शांति और उज्ज्वल-धारणा थी कि उनमें उनकी धार्म्यात्मिक शक्ति और महानता का बाह्य प्रदर्शन अल्पमात्र भी न था। श्री रामहृष्य और उनके शिष्य तो उन्हें स्वयं ही मूल शक्ति मानते हैं जिन्हें शिष्य जननी कहा जाता है। एक बार श्री रामहृष्य ने कहा "कोई प्राणी जो पवित्र बननी के सम्पर्क में निवास करता है यदि कभी किसी कारणवश उनके कोष का पात्र बन जाता है तो उसकी रक्षा करना येही शक्ति से बाहर है।" माँ का व्यक्तित्व भारतीय नारी के सर्वभूषणार्थ शक्तिशाली और कर्मव्यता से तार्कमीयक योद्धा प्रह्वन किए हुए है।" धार्म्यात्मिक दृष्टि से सारदा देवी न पत्नी थीं और न जननी ही फिर भी वह एक धर्म्य और ऊँचे दर्जे में जननी थी। वह ईश्वरीय शक्ति का पुत्रीमूल प्रकाश थी। भारतीय नारीत्व अनेक अपने कुछ भारतीय चरित्र के साथ पूर्णतः विद्यमान ही नहीं अपितु अवतरित था और संसार भर में वह उनकी महत्ता को सिद्ध करता है। अब हम उन्हें स्मरण करते हैं तो हम ईश्वर को ही देवी जननी के रूप में स्मरण करते हैं पवित्र जननी और ईश्वर समिन्न हैं।

### उनकी सिधार्थ

कोई भी व्यक्ति पवित्र जननी की जीवनी का अध्ययन करने के पश्चात् वह स्वीकार किए बिना नहीं रहता कि स्वयं परमात्मा उनके हृदय में निवास करता था।

'वा० एत० राधाहृष्यन्' 'श्रेष्ठ बीसेम डॉक इंडिया' (सर्वत धार्मिक कलकत्ता) की भूमिका में।

उनकी सिखाएँ किसी विद्वान् ब्रह्मा मात्र की सिखाएँ नहीं हैं अपितु परिमत्ता ही अभिष्यक्त हैं । उनके अनुभवों के प्रतिष्ठान के रूप में वे सिखाएँ विश्वपुरुष ही-सी घट्ट घक्ति रखती । जितना भी हम उन पर विचार और मनन करते हैं, दुःख में उतनी ही सर्वज्ञता और मन में धार्ति अनुभव होती है । नीचे हम उनकी शिखाओं का कुछ संकलन प्रस्तुत करते हैं जो पाठक को उनकी आत्मा के तीव्र की एक शक्त प्रदान करते हैं —

### परम्यात्मिक ध्यानास

- १ यदि तुम परमात्मा की पूजा नहीं करते तो इससे परमात्मा के लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता । वह केवल तुम्हारा ही दुर्भाष्य होगा ।
- २ दिन और रात की लीच-बेला प्रभु के स्मरण करने का सबसे पवित्र समय होता है क्योंकि इसी समय मन पवित्र होता है ।
- ३ मन्त्र शरीर को पवित्र करता है । मनुष्य प्रभु के नाम को रटने से पवित्र होता है । घट सबैक उसके नाम का वाप करो ।
- ४ ध्यान करने का ध्यानास करो । धर्म-धर्म तुम्हारा मन इतना सति और पवित्र हो जाएगा कि तुम्हारे लिए ईश्वर से मन हटाना कठिन हो जाएगा ।
- ५ धर्तव्य के कर्मों से मनुष्य कभी विमुक्त नहीं हो सकता लेकिन यदि किसी मनुष्य का जीवन प्रार्थनामय है तो इससे उसे अपने पूर्व कर्मों से प्राप्त होने वाले शोक का वाच केवल कटि की प्रथम के रूप में ही प्राप्त होगा ।
- ६ निस्संदेह, तुम्हें कर्म करना चाहिए । कर्म मन को मटकने से बचाता है । लेकिन ध्यान और प्रार्थना भी आवश्यक है । तुम्हें बचपन ही कम से कम एक बार प्रातः-वायें ध्यान में बैठना चाहिए । ध्यान लीका की पसवार के समान है । जब तुम साम्ब्य बेला में ध्यानावस्थित होते हो, तो तुम दिन भर के कर्मों का प्रत्यावलीकन करने का ध्यधर प्राप्त करते हो ।
- ७ साधारण मानवीय प्रेम का परिणाम दुःख है । ईश्वर से किया गया प्रेम ध्यानप्रद है ।
- ८ जीवन में ठीकरें खाने के पश्चात् प्रभु का नाम धनेक लेते हैं । परन्तु जो बचपन से ही एक कृत के समान अपने मन को प्रभु के शरणों में बड़ा देते हैं वही शूनी हैं ।



६. अविवाहित व्यक्ति चाहे परमात्मा की उपासना करे या न करे वह सर्व मुक्त होता है। यदि वह उसके प्रति थोड़ा भी आकर्षण अनुभव करे, तो वह तीव्र गति से उसके घोर बड़ जाता है।
१०. प्राणायाम का अभ्यास थोड़ा ही किया जा सकता है अधिक नहीं अन्यथा चित्त उत्तेजित हो उठता है। अगर मन स्वयं ही चंचल हो जाए तो प्राणायाम के अभ्यास की आवश्यकता ही क्या है? प्राणायाम और आसनों का अभ्यास जमत्कार की शक्ति प्रदान करता है और जमत्कार की शक्ति मनुष्य को पच भ्रष्ट कर देती है।
११. चाते समय प्रथम धास प्रभु को अर्पित करो। बिना भोग मवाए भोजन नहीं करना चाहिए। बीसा तुम्हारा आहार होना बीसा ही रहत हागा। पवित्र आहार से पवित्र रहत बनता है मन पवित्र रहता है और शरीर म बस बढ़ता है। पवित्र मन ही प्रेम-भक्ति पा सकता है।
१२. जीवन का सत्य प्रभु को प्राप्त करना और सबैक उसके चिन्तन में सीम रहता है।
१३. मन पर ही प्रत्येक वस्तु निर्भर है। मन की पवित्रता के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। कहा गया है— 'साधक मसे ही गुह, प्रभु और वैष्णवों की कृपा प्राप्त कर ले पर 'एक' की कृपा बिना वह अन्त में बुद्ध का भागी बनता है और वह एक' है मन। साधक का मन उसके प्रति कृपानु होना चाहिए।"
१४. परमात्मा की सिद्धि के पश्चात् मनुष्य कौन-सी विलोप वस्तु पा लेता है? क्या उसके दो सीम छय घाते हैं? नहीं उसके मन पवित्र हो जाता है और मन की पवित्रता से वह ज्ञान और जागृति प्राप्त करता है।
१५. मन ही सब कुछ है। मन ही है जहाँ मनुष्य पवित्रता एवं अपवित्रता का बोध प्राप्त करता है। अतः सर्वप्रथम मनुष्य को अपने मन को दोषी बनाना चाहिए, तभी वह दूसरों के दोष देख सकता है।
१६. त्रिस प्रकार वायु के प्रवाह से बावन छिटक उठते हैं उसी प्रकार नाम-रूप के प्रमाण से भौतिक नृप की प्यास बुझ जाती है।
१७. अत्याधिक जिज्ञासार्थों के द्वारा मन को भ्रष्ट मत करो। एक ही वस्तु की साधना बठिन हो जाती है। पर मनुष्य मन को अनेक वस्तुओं से भर कर भ्रष्ट ही जाता है।

१८. मैं तुम्हें एक बात बतलाती हूँ। यदि तुम्हें मन की शांति चाहिए तो झुमरों के दोषों की धोर मत देखो। बल्कि अपने दोषों पर वृष्टि डालो। धारे संसार को अपना बनाया सीसो मेरे बच्चे! कोई भी परमा नहीं है। यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा अपना है। जब मनुष्य दूसरों के दोष देखने लगता है, तो उसका अपना मन पहले ही वृष्टि हो जाता है।

१९. किसी को वाणी से भी जोट मत पहुँचाओ। बिना भावस्थकता के प्रिय वस्तु भी मत कहो। निष्ठुर शब्दों का प्रयोग करने वाले का स्वभाव भी निष्ठुर हो जाता है। यदि तुम्हारा वाणी पर नियन्त्रण नहीं है तो तुम्हारा बिलेक मष्ट ही हो चुका है। श्री रामकृष्ण कहा करते थे— लौढ़े व्यक्ति से यह नहीं पूछना चाहिए कि वह लौढ़ा कैसे हुआ।

२०. दर्शन के तर्क-वितर्क सुष्क विचार को छोड़ दो। परमात्मा को तर्क के द्वारा किसने जाना है?

२१. अपना मन को वृष्टि कर देता है तुम अपने ही घोषो कि तुम बन के सोम से ऊपर उठ पके हो धीर कभी भी इसके प्रसोमम में नहीं पड़ोये। तुम अपने ही यह घोषो कि तुम कभी भी उसे त्याग सकते हो। नहीं मेरे बच्चे अपने मन में इस विचार को प्रथम मत दो। तनिक भी धिर पाकर यह तुम्हारे मस्तिष्क में बुझ जाएया धीर तुम्हें बीरे-धीरे अपना सिकार बना लेगा।

२२. जब तक मनुष्य में इच्छाएँ हैं उसके प्राणायमन का कोई फल नहीं इच्छाएँ ही उसे एक शरीर से दूसरे शरीर में बन्म लेने को विवश करती हैं। यदि तुम्हारे मन में भीमी का एक टुकड़ा जाने की इच्छा भी शेष रह गई है तो तुम्हें उसके लिए फिर जन्म लेना होगा।

२३. अपने मुख के प्रति पूर्ण भक्ति होनी चाहिए। मुख का स्वभाव कैसा भी क्यों न हो शिष्य पुद् के प्रति प्रदूट भक्ति से ही मुक्ति पा सता है।

२४. किसी भी वस्तु को हेम न समझो चाहे वह वस्तु किठनी ही तुष्क क्यों न हो। यदि तुम वस्तु का सम्मान करोये तो वह भी तुम्हारा सम्मान करेगी। महत्त्वहीन कर्म को भी सम्मान के साथ पूरा करना चाहिए।

२५. मनुष्य किठना भी प्राध्यात्मिक क्यों न हो उसे अन्तिय सौंश तक शरीर के उपयोग का किराया देते रहना चाहिए।

## विष्णु-स्वरूप

- २६ प्रश्न—माँ मैंने तप घोर जप का इतना अभ्यास किया है, पर मुझे क्रोध भी प्राप्त नहीं हुआ !  
 उत्तर—परमात्मा महिमी तरकारी जैसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे तुम मूख्य बेकर जरीद सकोये ।
- २७ प्रश्न—माँ मैं आपके पास प्राण माता रहता हूँ घोर मैं समझता हूँ कि मैंने आपकी कृपा पा ली है पर मैं क्रोध अनुभव नहीं कर पाता हूँ ।  
 उत्तर—मेरे बच्चे समझो कि तुम बिस्तर पर नीद में हो घोर कोई तुम्हें बिस्तर समेत दूसरे स्थान पर हटा ले जाता है । उस अवस्था में आपने पर क्या तुम एकदम समझ जाओगे कि तुम किसी नए स्थान पर पहुँच गये हो ? बिभ्रम नहीं ! जब तुम्हारी कुमारी उठर जाएगी केवल तभी तुम यह जान पाओगे कि तुम नये स्थान पर आ गए हो ।
- २८ प्रश्न—परमात्मा का दर्शन किस प्रकार होता है ?  
 उत्तर—केवल उसकी कृपा द्वारा ही उसका दर्शन सम्भव है । पर तुम्हें ध्यान घोर जप का अभ्यास अवश्य करना चाहिए । इसके मन की अपवित्रता गूट होती है । उपासना यदि धार्मिक साधनों में सजे रहना चाहिए । जिस प्रकार फूल को हवा में देने पर ही उसकी सुगन्ध प्राप्त होती है यद्यपि जिस प्रकार ज्वलन को परवर पर भिसने से ही उसकी सुमीष प्राप्त होती है उसी प्रकार प्रभु के निरन्तर चिन्तन से धार्मिक जादृति प्राप्त होती है ।
- २९ ईश्वर के नाम का सर्वत्र अपने अन्तरतम हृदय से उच्चारण करो घोर पूर्व यज्ञ-भक्ति से उसकी चरण ग्रहण करो । इस बात की तनिक भी चिन्ता न करो कि तुम्हारा मस्तिष्क प्रासपास के बाधाकरण का मैंने प्रतिहार करता है घोर धार्मिक पत्र पर तुम कितनी उन्नति कर रहे हो । अपनी उन्नति का निर्व्यय स्वयं बनना भ्रूणकार न प्रतीक है । अपने मुँह घोर ईश्वर में विष्वास रखो ।
- ३० जो धिनु माँ बार प्रार्थना करने पर भी अपनी वस्तु देने को तत्पर नहीं होता सम्भव है वह केवल एक बार की प्रार्थना से बही वस्तु तत्काल दे दे इसी प्रकार अपवित्रता प्रभु की अनुकम्पा पाने के लिए कोई निर्धारित नियम नहीं है ।

श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध में

- ३१ स्वामी धीरसत्य समिन्न थे। बहुप्राय कहा करते थे कि इस कतिपय में सत्य ही तप है। सत्य ही चिरन्तन है। मनुष्य सत्य से ही ईश्वर को पा सकता है।
- ३२ स्वामी मुझे इस तस्वर संसार में इतीनिष्ट छोड़ गए हैं कि मैं विश्वेश्वर के अपने प्रामियों के लिए मातृत्व प्रेम को प्रदर्शित करें।
- ३३ यदि तुम निरन्तर परमेश्वर की प्रतिमा के सम्मुख प्रार्थना करो तो वह उक्त प्रतिमा में प्रकट होंगे। वहाँ भी प्रेम की प्रतिया को रखा जाए वही पवित्र मन्दिर बन जाता है।

प्राप्ति

- ३४ शारदा के म्यारेल धीर निदेश भी प्रभु की शरण लेने पर परिवर्तित हो जाते हैं। शारदा अपनी हार्थों स्वर्ग मनुष्य की उन भाव्य-देखाओं का बरस देता है जो पहले उसने स्वर्ग सिखी थी।

‘पुण्यात्पात्री श्री शारदा देवी के जीवन धीर उनकी शिवाओं का संक्षिप्त बचन जो इस परिच्छेद में प्रस्तुत किया गया है वह इस विषय पर उद्बोधन कार्यालय, कासकसा द्वारा प्रकाशित की गई बंगाली पुस्तकों तथा रामकृष्ण मठ मद्रास द्वारा प्रेषेजी में प्रकाशित ‘श्री शारदा देवी की होली नदर’ पर आधारित है।

## श्री रामकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध कुछ पवित्र सन्त महिलाएँ

महान् पुरुषों का जीवन हजारों लाखों मनुष्यों के जीवन को अनुप्राणित करता है। जब प्यार उठता है तब नबी झरने तालाब नामे धीरे गड़े सब जल से भर पाते हैं। जल उठना ही भर पाता है जितनी जगह होती है। इसी प्रकार स्त्री-मुख्य जो भी महान् पुरुषों के सम्पर्क में आते हैं वे उनसे अत्यधिक जल पाते हैं। उनमें से जो उनके पद-चिह्नों पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति-भावना धीरे श्रद्धा से साम जसते हैं वे उभट हो जाते हैं।

स्वाभाविक है कि श्री रामकृष्ण के महान् व्यक्तित्व से न केवल पुरुषों को ही प्रेरणा मिली जिनमें से कुछ तो साधु हो गए और कुछ गृहस्थ बन्धु बनें तो स्त्रियों को भी इन्होंने प्रेरणा दी है। उनमें से कई ने बोधिनियों का जीवन बिताया और वेप न निष्ठावान गृहस्थिनियों का।

उनसे मिलने वाली महान् महिलाओं में से एक तो उनसे प्रायः में बढ़ी थी और जो उनके सुरभों में से थी। दूसरी एक ऐसी साध्यात्मिक महिला थी जिन्हें बाल-गोपाल के दर्शनों के प्रभुमूढ अनुभव थे। उनकी मतीजी उनकी शिष्या बन गई। उनकी अन्व भिष्याओं में बहुधा गृहस्थ स्त्रियाँ घबरा पुजारिणें थी जिन्होंने पवित्र माँ धारदा बेबी के निदर्शनों को अपनाया था।

### योमेस्वरी भैरवी ब्राह्मणी

श्री रामकृष्ण की महिला मुख योमेस्वरी भैरवी ब्राह्मणी के नाम से विख्यात थी। वे योग के साथ ही साथ वैष्णव तथा तान्त्रिक क्रियाएँ भी करती थीं। उनका जन्म उड़ीसकी सताश्री के बूखरे बचक के लगभग दुभा या क्पाकि सन् १८६१ में राम कृष्ण से भेंट होने के समय उनकी धनस्या प्रायः पैतासीस साल की थी। रामकृष्ण उस समय करीब पन्नीस वर्ष के थे। योमेस्वरी माँ के माँ-बाप ब्राह्मण थे जो बीसोर (बंगाल) के रहने वाले थे। वे जीवन पर्यन्त कुँवारी रहीं और उन्होंने योग की धारा दक्षिण के द्वारा प्रभुमूढ रहस्यपूर्ण शक्ति प्राप्त की थी।

१८६१ में ब्रूमते-युमते भैरवी ब्राह्मणी बलिपदर आई। जब उनकी भेंट रामकृष्ण ने हुई तो उनकी आँसों से धानशाभु छतक घाए और उन्होंने अत्यन्त स्नेह-सुबक कहा

मेरे बच्चे तुम मुझे मिला गए। मुझे पता था कि तुम कहीं मेरा के किमारे मिलोगे इसी से मैं तुम्हें खोजती फिट्टी भी धीर धर मैंने तुम्हें ढूँढ लिया है। रामकृष्ण उनसे कुछ ऐसे प्रभावित हुए जैसे एक बालक अपनी माँ की धोर लिपटा है। उन्होंने पूछा—“तुम्हें मेरे बारे में कैसे पता लगा माँ!” “सर्वशक्तिमयी माँ की हवा से ही मुझे यह भ्रामास मिला था कि मैं तुम तीनों से मिलूमी। वो से तो मैं मिल चुकी हूँ—मेरे ही बच्चे धीर गिरिजा या पूर्व बंगाल में ही धीर तुम यहाँ हो!” उन दिनों रामकृष्ण कठिन तपस्या कर रहे थे धीर उन्हें भाँति-भाँति के धनुमब प्राप्त हो रहे थे। वे बालक की भाँति धीरकी बाह्याणी के समीप बैठ कर उन्हें अपने पारमौकिक धनुमबों की कहानी सुनाया करते। उन्होंने समाधि-स्थिति में अपनी बाह्य शैतमा के मुप्त हो जाने का धीर अपने समस्त शरीर की जलन तथा निद्रा धारि के बारे में बताया। उन्होंने धीरकी से बार-बार पूछा—“क्या प्राप बठा सकती है कि बहू क्या है धीर क्यों है? लोग कहते हैं कि मैं पापस हूँ क्या प्राप भी यही सोचती है कि मैं पापस हो गया हूँ? रामकृष्ण के ये धनुमब सुन कर धीरकी धानन्यातिरक से मर उठी क्योंकि ऐसे पारमौकिक धनुमब धाम्य से ही होते हैं। उन्होंने कहा—“कौन तुम्हें पापस कहता है मेरे बेटे! यह पापलपन नहीं है। तुम्हें एक बिलजलन धीर प्रमौकिक धरस्वा प्राप्त हुई है जिसे महाभाब कहते हैं जिसके उरीस बाह्य रूप है—जैसे धनु, शरीर-कम्पन रोमाँच तथा पसीने से सजपज हो जाना। जिसने ऐसा धनुमब प्राप्त न किया हो बहू इसे समझ ही नहीं सकता धीर इसी से संघाटीलोग तुम्हें पापस कहते हैं। उन्होंने यह बताया कि रापा धीर श्रीगीर्ण में भी इसी दशा का धनुमब किमा था। यह सब सुन कर श्री रामकृष्ण को पर्यन्त सन्तोष हुआ।

सन्ध्या-समय भोजन बना कर, बाह्याणी ने सबसे पहले अपने धाराप्य रजुबीर को भोजननाबा जिमकी प्रतिमा सब उनके घसे में झूलती रखी थी। ध्यान के समय उन्हें दिव्य दृश्य दीखे कि रामकृष्ण की पंचबटी जाने की जल्द इच्छा हुई थी जहाँ पवित्र पंच बुस ने धीर ने बहू जाने गये। विजिप्त मनुष्य के समान रामकृष्ण पापाज-प्रतिमा के समझ रखे भोग्य परार्थ जाने गये। जब बाह्याणी की धारिँ सुभी तो बहू रामकृष्ण को भोज-सामग्री बाटे देस भाह्यादित हो गई क्योंकि उन्होंने ध्यानावस्था में भी ऐसा ही दृश्य देला था। रामकृष्ण अपने प्रापे में न थे धीर जब वे सा चुने तो उन्होंने बाह्याणी से समा-याचना कये हुए कहा—“मुझे पता नहीं मैं कैसे यह सब कर गया? लपटा है कि जैसे मैं धरत-विशिप्त हो गया हूँ।” बाह्याणी ने कहा—“तुमने बहुत ही प्रच्छ किया पुत्र! यह तुमने नहीं किया है बल्कि उसने किया है जो तुम्हारे धीर है। मुझे ध्यान करते समय ही पता लग गया

बा कि किसने ऐसा किया है धीर क्यों किया है। अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि अब मुझे किसी भी साधना की आवश्यकता नहीं है। मेरी साधना का फल मुझे मिल गया है। एसा कह कर उन्होंने बच्चा हुमा प्रसाद का लिया धीर रघुवीर की प्रतिमा जिसकी उन्होंने बर्षों पूजा की थी गंगा में विरचित कर दी क्योंकि उन्हें विश्वास हा गया था कि रघुवीर रामकृष्ण की देह में प्रयत्न हो बने न।

ब्राह्मणी को अब पूर्ण विश्वास हो गया था कि श्री रामकृष्ण ने अपने अपार प्रेम, प्रभु-भक्ति धीर कठोर धार्मिक लियमों के सफल अभ्यासों द्वारा पारलौकिक अनुभव प्राप्त कर लिये हैं। प्रायः उनके अनुभव शैथन्य महाप्रभु के अनुभवों के सपुत्र हैं। एक बड़ी घट्टत बटता बटी। श्री रामकृष्ण सिद्धो की धीर जा रहे थे। उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि वो तबस्वी बातकों का उनके शरीर से प्रादुर्भाव हुमा है जिसको ब्राह्मणी ने शैथन्य धीर उनके साथी नित्यात्म्य के रूप में पहचाना। तीव्र बलन जो रामकृष्ण अपने शरीर पर अनुभव कर व्यक्त करते थे इस पवित्र महिमा ने बड़ी गरम बिधि से उनका उपचार कर दिया। एक बार श्री रामकृष्ण ऐसी अपरिचित धीय क्षुधा से व्याकुल थे कि चाहे जितना भोजन दिया जाये उनकी क्षुधा शान्त नहीं हो रही थी। ब्राह्मणी आकती थी कि जो महान् धार्मिक उच्च धार्मिक स्तर पर पहुँच जाती है उन्हें कभी-कभी ऐसी अनहोनी स्थितियों में भी गुजरना पड़ता है। उन्होंने श्री रामकृष्ण को एसा उपचार बताया जिससे वह तीन दिन की अवधि में स्वस्थ हो गये।

ब्राह्मणी ने श्री रामकृष्ण को १४ प्रमुख तंत्रों के विभिन्न लियम-उपलियमों का प्रशिक्षण दिया। उन्हल बाद में बताया पवित्र माता की प्रतीक अनुकम्पा ने उनके विपत्तियाँ धीर अलि-यटीसाओं के समय मरी रखा की। कुछ परिस्थितियाँ तो इतनी भयंकर थी कि कोई भी निजामु पप भ्रष्ट हो सकता था।

इस सप्त महिमा ने प्रथम बार श्री रामकृष्ण में प्रबल होने के लक्षणों की बिबेचना की धीर अपने इस विश्वास को निर्भीकता से व्यक्त किया। पवित्रस्वर मन्दिर की स्वामिनी क जबार्द मबुठनाथ बिश्वास म ममकामीन कुछ ऐसे व्यक्तियों को निर्मात्रत किया जो अपनी बिद्वता धीर धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध थे। इनमें से बैष्णवचरण पवित्र योगिकान्त तर्कान्तर उल्गामीय है। इस योगी का उद्देश्य था ब्राह्मणी के बिबेचन पर बाद-बिबाह करना। उस समय पवित्र मरीकान्त ने मुस्पष्टत पोपित किया कि हे रामकृष्ण! मूक्त पूज बिश्वास है कि तुम उस धनन पारलौकिक धक्ति के मन्डार हो जिनका धार्मिक प्रादुर्भाव इन गरम संसार में जयद-जयद कर प्रबलार रूप में होता रहता है। मरा हून्य एसा अनुभव करता है

धीर बर्ष ग्रन्थ तथा शास्त्र मेरे साक्षी हैं इनके आचार पर मैं अपनी इस धारणा को संसार की किसी भी शक्ति के सम्मुख खिंच करने को प्रस्तुत हूँ।  
 मौरवी शाहजाही ने अपने अन्तिम दिन मक्ति एवं ग्रन्थ आध्यात्मिक अनुशासकों से व्यतीत किये। जब श्री रामहृदय तीर्थ-यात्रा पर बनारस गये हुए थे तब वहाँ उनकी भेंट सबसे हुई थीर उन्होंने उसे बुधावन में अपना शयन जीवन बिताने की संन्यायी की। तदनुसार उस तीर्थ-स्नान के लिए उसने उनके साथ प्रस्थान किया जहाँ कुछ समय पश्चात् वह परलोक विचार गई।

### धधोरमणि देवी

[गोपाल की माँ के नाम से विख्यात]

धधोरमणि देवी एक रहस्यमयी रमणी थी जिनके असम्य आध्यात्मिक अनुभव थे। उनके जीवन कृत एवं उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों का अध्ययन करने पर प्रत्येक व्यक्ति रोमांचित हो उठता है।

उनका जन्म सन् १८२२ में कामारहाटी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। नौ बर्ष की अवस्था में ही उनके पिता काशीनाथ मद्दाचार्य ने ग्राम पैवाटी बोहरा के समीप स्थित जिना चौबीस परगना के एक निम्न स्तर के नवमुक्क से उनका ब्रह्मण (सपार्ई) कर दिया किन्तु कुर्माप्यवस सपार्ई के तुरन्त बाद वह विधवा हो गई। उस समय वह इतनी प्रबोध थी कि विवाहित जीवन के मर्म को न समझ सकती थी। कुछ समय अपने स्वसुर-गृह में रहने के पश्चात् वह अपने पिता के घर सौट घाई। उसके अग्रज (बड़े भाई) मीलमाधव मद्दाचार्य ग्राम की राधानाथ मन्दिर में पुजारी थे। धनी-धनी धधोरमणि देवी मन्दिर उसके पुण्योद्यान एवं बगिया की ओर आकर्षित हुई। वहाँ मन्दिर के निर्माता भक्त शोकिन्द बख्शत की विधवा रखा करती थी। तीस ही वर्ष की धधोरमणि का उसके परिचय हो गया थीर वह स्थायी रूप से वहीं रहने लगी। पैवा के तट पर उद्यान में उसकी कुटी बनवा दी गई। वहाँ वह भक्ति धीर अध्यात्म में मीन रहने लगी। उसे एक ब्रह्मण पुरुष से हीसा मिली। बालकृष्ण उसका जीवनार्थ उसके हृदय का धाराध्य देव था। अपनी कुटी में तीस वर्षों तक वह माता अपना मन्त्रि करना प्रादि आत्मिक कार्यों में प्रवृत्त रही। वह इनमें इतनी तस्तीन रहती कि अन्तत उते धमवान का देवी बालक के रूप में साक्षात्कार हुआ।

१८८४ में गोविन्दबल की विधवा के साथ वह बसिनेस्वर गई जहाँ उसकी श्री रामहृदय से प्रथम भेंट हुई। उन्होंने उनका सस्त्रह स्वागत किया थीर पुन धधोर



का निमन्त्रण दिया। अपनी पहली भेंट के दिन से ही वह रामकृष्ण की घोर आक-  
 र्षित हो गई। वह पुनः दक्षिणेश्वर [गई और उनके प्रशिक्षाभिक समीप जाती गई।  
 उसकी उपस्थिति में वे स्वयं को बालक के समान अनुभव करते थे और ठीक उसी प्रकार  
 मिष्टान्न व अन्य पदार्थों के लिए उससे हठ करते जैसे बाल गोपाल (श्रीकृष्ण का  
 अन्य नाम) यशोदा के गृह में रहते हुए करते थे। उसके व धी रामकृष्ण के मध्य मधुर  
 एवं मृदु सम्बन्ध विद्यमान हुए। उनका मा इस महान् रहस्यपूर्ण महिमा जिसकी धारणा  
 रैवी सैतार में बिभरती थी जिसकी साधारण नादानान् प्राणियों को ससक भी न  
 भिंसती थी के उन रोमांचकारी अनुभवों का वर्णन करना कठिन है। एक दिन  
 अप-समाप्ति के पश्चात् भोग के फल उसने आराध्य देव को धर्पण कर दिये  
 किन्तु वह अपनी मोह में बैठे मुस्काते हुए धी रामकृष्ण जिनके हाथ की  
 मुट्ठी बेंबी थी को देख विन्मिश्र हो गई। तत्पश्चात् उसका स्पर्श करने के लिए  
 उसने अपना हाथ बढ़ाया किन्तु आकृति घर्षणान्न हो गई और उसके स्थान पर  
 दर्शन हुए बुटनों जमतें उसकी घोर धाते बाधकृष्ण के जो अपना एक हाथ उठाकर  
 मासन मांग रहे थे। इस दृश्य का वर्णन करती हुई वह कहती है—

“मैं इतनी घबराई थी! मैं हर्षातिरेक में चिल्ला उठी और उनसे कहा जेद है  
 मैं एक निघन विधवा हूँ मेरे बच्चे! मैं तुम्हारे लिए भोजन और दूध कहाँ से  
 लाऊँ? किन्तु गोपाल ने एक न सुनी। ‘मुझे क्षामि को कुछ दो’ उसने बार-बार कहा।  
 मेरी धाँसों में धनु थे। मैं उठी और जाकर कुछ सूजे मीठे मोसे जो मेरे पास थे  
 उसके लिए ले आई। गोपाल मेरी मोह में बैठ गया। मेरी माता छीम नी मेरे कर्णों  
 पर कूदा और कुटी में उसी प्रकार जूमने-फिरने लगा कि मेरे मन्त्रोच्चारण के  
 सारे प्रयत्न निष्फल रहे।

घबसे प्राप्त काल उसने बाल-गोपाल को जिसके सामिमा लिये हुए छोटे-छोटे पैर  
 बिरक रहे थे अपने बदन से लपाये हुए दक्षिणेश्वर को प्रस्तान किया। उस दिन उसने  
 अपने आराध्य देव को वास्तव में पा लिया था। आध्यात्म-मन्त्रावस्था में विस्फुरित  
 शक्तों से अपना मार्ग तय किया। उसके धाँस का छोर पृथ्वी को छू रहा था। ज्यों ही  
 वह रामकृष्ण के कल में जाकर बैठी वह (रामकृष्ण) हर्षातिरेक की मजस्था में बालक  
 क लदुप उसकी गोद में आ बैठे और उसने उनसे इस प्रकार बातें की जो साधारण  
 मनुष्यों की समझ के बाहर हैं। उसने कहा—“मह गोपाल मेरी मोह में है—एव यह  
 तुम्हारे घन्टर में प्रवेश करता है—एव मह बाहर आ गया—आपो मरे हुनारे, अपनी  
 माँ के पास आओ।” इस प्रकार भाववतावदा वह प्रतिबैतन्यावस्था में प्रवेश कर गई।

उस दिन के पश्चात् श्री रामकृष्ण व धर्म्य योग उसे 'योगीय की माँ' के नाम से सम्बोधित करने लगे ! अपने साम्प्रतिक धनुषासना एवं उपसम्पियों के कारण यह बिषया बेबी बासकृष्ण की माँ के रूप में परिवर्तित हो गई । श्री रामकृष्ण न उसे सारे दिन रोके ग्या स्नान एवं भोजन कराया । जब उनकी साम्प्रतिक भावुकता कुछ कम हो गई तो उन्होंने उस उसके साथ वापस भेज दिया । वहीं भी वहीं बीबी बीड़ाएँ पसती रहीं । एक बार रामकृष्ण ने उससे कहा—“तुमने धर्मम्भर को प्राप्त कर लिया है । ऐसी धनुषूति तुमको हुई है ऐसी इस युग में दुर्लभ है।”

१८८६ में श्री रामकृष्ण का निर्वाण उसके लिए एक हास्य घटना थी । उसकी धायु निरन्तर बढ़ती जा रही थी किन्तु बासकृष्ण के साथ उसकी स्वनिता भीड़ाएँ अब भी जारी थीं । कभी-कभी उनके सर्वत्र और प्रत्येक वस्तु में उनकी धनुषूति होती ।

१९०४ में वह राय-यस्य हुई और उन्हें कसकता में बनराम बास क कर रखा गया । पुत्री के सदृश बहन निवेदिता ने उनकी सेवा-सुभूषा की । सप्त (पवित्र) माँ कभी-कभी उनके मिलने जातीं । उनके धार्मिक समय में उसे बेंगल-स्ट पर सामा गया । उसकी मृत्यु से पहले उसके पैरों को पवित्र गैमाबल का स्पर्श कराया गया । ८ जुलाई १९०६ को उसका देहावसान हुआ किन्तु उस समय भी उसके मुख पर मुद्रता एक धान्ति बिरक रही थी ।

### सखीमणि देवी

[सखी देवी के नाम से विख्यात]

सखीमणि देवी धर्मात् सखी देवी (बहन सखी) श्री रामकृष्ण की सखी थी । वह उनके द्वितीय बड़े भाई रामेश्वर चट्टोपाध्याय की पुत्री थी और एक बहुत बड़ी सप्त महिला हुई है । उनका जन्म कामारपुरपुर में ११ फरवरी १८६४ को हुआ और इस प्रकार पवित्र माँ भी धारवादेवी से वह १० वर्ष छोटी थी । रामनाम जो श्री रामकृष्ण की सेवा-सुभूषा करता था उनका बड़ा भाई था और धारवादेवी छोटा भाई ।

सखीदेवी को स्कूल में किसी प्रकार की साहित्यिक शिक्षा प्राप्त न हुई । बाव न वर्षों में उनमें पढ़ाया सीखा और अपने ज्ञान का लक्ष्ययोग रामायण महाभारत और इती प्रकार की अन्य बंगाली पुस्तकों के पढ़ने में किया ।

स्वभावतः वह बड़े सखीने स्वभाव की थी और अपने निकट के सम्बन्धियों व घटिरीकृत किसी से न बोसती थीं । बन्धावस्था में ही वह हिन्दू-देवी देवताओं की मक्ति में भीम रहती थी जिनमें सीतामा और रघुबीर उनके धारण्य थे । जब वह ६ वर्ष

की थी ता उसने पिता रानेवर का बेहान्त हो गया। १२ वर्ष की अवस्था में उसका वाप्यान हुआ। कुछ मास पश्चात् उसके धर्मग्राम रामनाल में उसके वाप्यान की सूचना भी रामकृष्ण को दी। रामकृष्ण तत्काल धर्मश्रीगिरा की अवस्था में पहुँच गये और फिर वे बोले— 'धीघ्र ही यह बिषबा हो जायेगी। उनके भतीजे हृदय का या उनके पास ही लड़ा या बड़ा भ्राता पहुँचा और उसने पूछा कि आसीर्वास देने के स्थान पर उन्होंने कुछ धर्मों का उच्चारण क्यों किया? रामकृष्ण ने उत्तर दिया— "मैं क्या कर सकता था? दही माँ मेर माध्यम से बोलीं। लक्ष्मी माता धीरता देवी का एक धार्मिक रूप है जबकि उसका पति एक सामान्य लखर प्राणी है। लक्ष्मी कभी ऐसे प्राणी की स्थापना नहीं हो सकती। वह अवश्य बिषबा हो जायेगी। वास्तव में लक्ष्मी का पति कृति की शोच में अपने घर से जला गया और तत्पश्चात् किसी ने उसके विषय में कुछ न सुना। बारह वर्ष तक उसके सम्बन्धियों ने उसकी शोच का निष्पन्न प्रयास किया और उसका कोई चिन्ह न मिलने के कारण इतने दिन से स्मरण की गई उसकी अस्तिविष्टि किया कर दी गई। श्री रामकृष्ण की इच्छानुसार उसने अपने पति की सम्पत्ति पर किसी प्रकार का कोई दावा नहीं किया।

जब लक्ष्मी १४ वर्ष की थी ता उसकी मेट पावन माँ से हुई। श्री रामकृष्ण ने उसे वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित किया। १६ वर्ष पश्चात् १८७२ से १८८२ तक वह श्री रामकृष्ण और पावन माँ के सहवास में रही पर उसका जीवन उनके पवित्र जीवन के अनुसरण बला। वह कष्टा करती थी—

"पावन माँ के साथ मैं सस्य भवन में एक छोटे कमरे में जिसमें वैदिक प्रयोग एवं उपयोग की वस्तुएँ रली थी बहुत बितों रही। माँ रसोई पकाया करती थी और मैं उनकी तन्मयतापूर्ण सेवा में सहायता किया करती थी। उस समय दिन में हर समय भक्तों का ताँता मया रहता था और प्रत्येक व्यक्ति की रधि के अनुसार हमें समय-असमय भोजन तैयार करना पड़ता था। हुमाटी उभा-भायोजन क्षमता को देखकर श्री रामकृष्ण हमें नुक और साठ के नाम से पुकारते थे और सत्संग भवन की एक पित्रे से तुलना किया करते थे। चूँकि हमारे रहने का स्थान पित्रे के सदृश बहुत ही सीमित था किन्तु ये सब होते हुए भी उस स्वर्गीय वातावरण में रहने का ध्यान माँ के सत्संग में दिन-प्रतिदिन की प्रिया और धार्मिक धर्म-पात कही धन्य सम्भव नहीं हो सकता था। यह धर्मपात ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक स्वामी और पावन लक्ष्मी के सत्संग से बहती थी।"

श्री रामकृष्ण की रोगावस्था में यह सन्त महिमा पवित्र माता के साथ स्वामिपुत्र

घोर काशीपुर उद्यान में उनकी सेवा-सुधुषा में रखी। उनके देहान्तकाल के पत्रात्पू वह माँ के साथ तीर्थयात्रा करने गईं तथा कृष्णावन में एक वर्ष धार्म्यात्मिक नियमों का पालन करती रहीं। जब माँ पुरी गईं तो सखीदेवी भी उनके साथ थी। इसके प्रतिरिक्त बहु, भ्रम्य धनेक तीर्थ स्त्रालों पर गईं जिनमें से वैशाखावर, लखड़ीप, त्रिबेनी प्रकाश गंगा बनारस हरिद्वार उल्लेखनीय है। यथासम्भव सखी देवी पावन जननी के साथ ही रहती कभी-कभी यह कामारपुकुर भी जाती। जब इनके माँ रामनाथ की पत्नी का देहान्त हो गया तो उसने सखीदेवी को अपने साथ रहने को आमन्त्रित किया। तब वह प्रायः १० वर्ष तक इक्षिदेवर में रहीं।

सखी देवी प्रकभूवर, १९२२ को पुरी चली गईं। वहाँ उनके सिये म्युनिसिपैलिटी से कुछ जमीन लेकर एक मकान बना दिया गया। इन्होंने फरवरी १९२४ में मूह प्रवेश किया और अपने धर्मिताम दिन पुरी में-स्यतीत किये। २४ फरवरी १९२६ में ६२ वर्ष की वयस्था में सखी देवी ने इहलीला समाप्त की। उस समय इनकी धनेक सिध्याएँ थीं।

सिस्टर त्रिबेदिता अपनी पुस्तक "श्री मास्टर एंड आई सा हिम" में लिखती हैं—

“बहिन मकी मन्वा लखी देवी—जो कि उसका मात्तीय नाम है—श्री रामकृष्ण की वास्तव में मजीजी है और खेप सिधियों से धामु में छोटी है, उसकी भोग प्रायः सब सिधिका घोर धार्म्यात्मिक निर्दोशिका की मानना रखते हैं। सखी देवी धार्म्यत प्रतिभासामिनी और मधुर साधिन है। प्रायः वह धार्मिक बाह-विवाद के पक्ष के पक्षे सोहपाती रहती और अपनी पात्राओं तथा बर्म-सम्बन्धी नाटकों का विवरण बेती रहती है। कभी-कभी वह कनरे के धान्त नाटाचरण की मधुर मनोरंजन से मर देती है। अपने समूह के विविध स्वधितियों को धार्मिक नाटकों के विभिन्न पात्र बना देती है। कभी कोई कामी है तो कभी सख्यती और कुछ देर के बाद वही जयद्वानी है तो वही करम्ब बृत्त के नीचे कृष्ण का रूप धारण किय लगी है। नाटकोपमुक्त वस्तुओं और ध्वनि-संयोजन से वह सुन्दर वृत्त उपस्थित कर बेती है।”

श्रीमतीमोहिनी विश्वास

[श्रीमती माँ के नाम से प्रसिद्ध]

श्रीमतीमोहिनी विश्वास का जन्म उत्तरी कसकता में १६ जनवरी १८५१ में हुआ। इनके पिता श्री प्रसन्नकृमार मित्र एक लघु डाक्टर से जो कसकता मेडीकल कालेज में माननीय पराधिकारी थे।

वासिका यायीन का पाणिग्रहण ६ वर्ष की प्रत्यावस्था में ही चौबीस परगना के सरदा निवासी बनीदार परिवार के मुखर धनी युवक धन्विकाचरण विश्वास से हो गया था। इनके पति कुकर्मों में अपना समय नष्ट करते और धीरे-धीरे अपना सारा बल व्ययनों में लौ डेटे। यायीन के केवल एक पुत्री थी। उसका विवाह हो जान पर यागीन पूर्णतः परभू कर्तव्यों से निवृत्त हो गई थी। अब वह पति से विदा लेकर अपनी विधवा माँ के पास बागबाजार में रहने लगी। उसका कृतान्त से था वह स्वतः सिद्ध है कि प्रत्यावस्था में ही माता योगीन्द्रमाहिनी को एकाकीपन और अन्य अनेक मालनाएँ सहनी पड़ी।

मानसिक व्यथा के इन दिनों में ही थी रामकृष्ण परमहंस के गृह-सेवक बसराम दास जो योगीन माँ के समुदाय के नाते से दूर के सम्बन्धी भी वे श्री रामकृष्ण के दर्शनार्थ उठे अपने घर ले गये। धीरे-धीरे उनके जीवन में परिवर्तन घटने लगा और उनकी धार्मिक शान्ति की तृप्ता लुप्त होने लगी। देवी माँ पवित्र पत्र की पबिका से पहले ही बन गई थी अब श्री रामकृष्ण ने उन्हें कुछ मात्र सिखाये और उनके पत्र प्रदत्तन का उत्तरदायित्व सने को सहमत हो गये। श्री रामकृष्ण ने बोधीन के बारे में कहा था—“योगीन वह अधिकसित साधारण कमी नहीं जो चीज ही प्रसूटित हा उठे। किन्तु हजारों पत्तियों के कमल की वह कमी है जो धीरे-धीरे पुष्पित होती।”

दक्षिणेश्वर में योगीन का पावन जननी से साक्षात्कार हुआ। माँ को उत्काम ही आभास हुआ कि उसकी जीवन साधित उठे मित गई है। योगीन माँ जिस नाम से श्री रामकृष्ण के अनुयायी उन्हें सम्बोधित करते थे प्रायः सप्ताह में एक बार दक्षिणेश्वर घाटी की और रात ना के पास बिठातीं। दोनों सन्त महिलाओं में परस्पर बड़ा प्रेम था।

श्री रामकृष्ण और पावन जननी का पवित्र जीवन योगीन माँ के लिए प्राध्यायिक नियमों के पामन और धारमोपनिषत् के उच्च स्तर को पाने की प्रयास का स्रोत बना। योगीन माँ की ईश्वर-सिद्धि की उत्कृष्टता तीव्रतर हो गई। उन्होंने महाकाम्य रामायण महाभारत पुण्य और वैष्णव महाग्रन्थ की जीवनी का अध्ययन किया। पूजनीय महाभारत स्मरणपत्र से वह प्रायः इन ग्रन्थों में बलिष्ठ घटनाओं को कथ्य कर सबको सुनातीं। इस प्रकार उन्होंने सिस्टर निवेदिता को उनकी पुस्तक ‘क्रेडिट टेस धौक हिन्दुइयम’ (हिन्दू धर्म की कथाएँ) सिमाने में बड़ी सहायता दी।

जुलाई, १८८३ में श्री रामकृष्ण इस सन्त महिला के घर प्राये। योगीन माँ में इस मुमकसर पर स्वामी स वाचना की कि वह उसके निजी कमरे (शयन कम) में

परापूर्व करे और वहीं भोजन ग्रहण करें। उसको प्रभू विश्वास था कि उनके चरण कमलों से उसका ध्यान करा बारागसी की तरह पवित्र हो जायेगा और वह वहाँ देहा बतान कर जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जायेगी। योगीन माँ की इस प्रार्थना को स्वामी ने सहज स्वीकार किया।

१८८६ में श्री रामकृष्ण के निर्वाण की सूचना योगीन माँ के लिए सबसे बड़ा शोक-समाचार था। उस समय वह बुन्दावन में कठोर तप करने में निमग्न थी। इस सप्त महिला को घसट्टा क्या यह थी कि स्वामी के प्रतिभ विनों में वह बहूँ उपस्थित न हो सकी। जब पवित्र माता बुन्दावन गई तो योगीन माँ से मिलीं। दोनों ने स्वामी की विरह वेदना की चर्चा कर एक-दूसरे को सान्त्वना दी। इन शोकातुर महिलाओं को श्री रामकृष्ण की धनुमूर्ति हुई। स्वामी ने प्रकट होकर कहा—‘तुम इतना क्यों रोती हो? क्या मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं चला गया हूँ? कदापि नहीं। मेरा जाना तो ऐसे है जैसे एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना। इस धनुमूर्ति में इन महिलाओं को बड़ी साम्प्रता थी।

एक बार योगीन माँ जब साता बाबू के मन्दिर में ध्यान-मग्न थी तो एकस्मात् वह समाधिस्थिता में आ गई। बरिजामस्वरूप पवित्र माँ को योगीन माँ के निवास स्थान पर धाई हुई थी उनके धाने में घसाधारण विमल का अनुभव कर उस स्थान पर पहुँची और योगीन माँ को पुर्वत-समाधि में खोई हुई पाया। इस स्थिति का वर्णन करती हुई योगीन माँ ने बाबू से बताया—‘उस समय मेरा मन और मन इतना ध्यान मग्न था कि मैं बाह्य जगत् से पूर्णतः अनभिज्ञ थी। मुझे सर्वत्र धपने इष्ट ही श्रुति पोषर होते। यह स्थिति तीन दिन तक रही।’

अपने पैतृक गृह में रहते हुए भी योगीन माँ को ऐछा अनुभव हुआ था। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें कहा—‘योगीन माँ तुम्हारा अन्त समाधि घबस्था में ही होपा क्योंकि जब कोई व्यक्ति एक बार इस ध्यानस्थानस्था का अनुभव कर लेता है तो इसकी मधुर स्मृति उसके देहाबधान के समय जागृत होती है।’ योगीन माँ कृष्ण क बासस्वरूप की पूर्ण घडा से उपासना करतीं। वह कहती हैं—‘एक बार जब मैं पूजा में मग्न थी तो क्या देखती हूँ कि वो धवि तुम्हरे बालक मुस्कराते हुए मेरे सम्मुख प्रकट हुए और दोनों भुजाएँ फैला कर उन्होंने मुझे घासिमन किया। मेरी पीठ पर बचनपाते हुए मुझ से पूछने लगे ‘जागती हो हम कौन हैं?’ मैंने कहा ‘हां मैं जागती हूँ तुम कुरबीर बलराम हो और तुम इष्ण हो।’ यह सुनकर छोटे कुमार बोले ‘तुम हर्ने बाद नहीं करोमी?’ मैंने कहा ‘क्यों?’ ता कुमार ने मेरे दीहियों की घोर हींगत कर क बत्ता—‘इनके कारण! वास्तव में योगीन माँ की पुत्री की माय

के बाद उनका समय प्रायः तीन निस्सहाय शिशुओं श्री बेसनाम में व्यतीत होता जिससे उनके एकाग्रचित्त होकर पूजा करने के क्रम में विघ्न पड़ने लगा था।

योगीन माँ का जीवन तप और त्याग का जीवन था। बिन प्राध्यात्मिक नियमों का बहूपासन करती थीं उनमें से कुछ एक तो बड़े कठोर थे। इन्होंने पवित्र माता के साथ पंचाभि यज्ञ भी सम्पन्न किया था। श्री रामकृष्ण के प्रमुख शिष्य स्वामी धारदामन्द भी ने योगीन माँ को पुरी में धार्मिक सम्पास की औपचारिक शिक्षा दी थी किन्तु वह अपना कायाय वस्त्र केवल पूजा के समय ही धारण करती थी।

पावन बननी प्रायः कहा करती थीं— 'योगीन एक महान् तपस्विनी और एकमात्र ज्ञानी महिला है।' योगीन माँ ने ४ जून १९२४ में इहमीला समाप्त की।

### गोसाप सुन्दरी बेबी

[गोसाप माँ के रूप में विख्यात]

गोसाप सुन्दरी बेबी (जो बाद में गोसाप माँ के नाम से प्रसिद्ध हुईं) का जन्म १८६४ के सगमरा कमकता के उत्तरी भाग में पुराने बिहारों के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका साम्प्रदायिक जीवन दुःखी था। युवावस्था में उनके पति एक पुत्र और एक पुत्री को छोड़ कर इस संसार से चमक से थे। कुछ समय के पश्चात् उनके पुत्र की भी मृत्यु हो गई। इसीलिए पुत्री बच्ची का विवाह पसरिया घाट कमकता के एक सुबक सुरेन्द्रमोहन ठाकुर से हुआ किन्तु शीघ्र ही वह भी अकस्मिक काल का श्रावण बन गई। गोसाप का संसार में अपना कोई न रहा और वह शिथिल रहने लगी।

योगीन माँ पढ़ासिन थीं वह उन्हें एक दिन अपने साथ ब्रह्मोत्सव से गईं। रामकृष्ण-गोसाप भेंट में गोसाप के जीवन में एक परिवर्तन ला दिया। वह उनके सामने रो पड़ीं उन्होंने उसकी पुत्तमरी जाया बड़ी सहानुभूतिपूर्वक सुनी और कहा कि वह बड़ी भाव्यवान् हैं क्योंकि भगवान् श्री धाराधना के प्रतिरिक्त सब उसे और किसी के विषय में नहीं सोचना पड़ेगा। उसे बड़ी साम्प्रदायिक मिसी। श्री रामकृष्ण ने उसका पवित्र माँ से जो उस समय मन्दिर के सत्संग-अवकाश में निवास करती थी परिचय कराया। शीघ्र ही वह पवित्र माँ की अनिच्छ साधिन बन गईं।

एक बार श्री रामकृष्ण ईटों के बने उस टूटे-पूटे मकाम में जिसमें वह अपने मादमी व बहन के साथ रूखा करती थीं उसको देखने लगे। उस स्थान पर उनके दर्शन या वह धारम विभोर हुए और उसने कहा कि उसकी सारी वेदना व पीड़ा का लोप हो गया है।

'विद्यते बरिष्ठेय में 'तपस्या और धरमानन्द' के अन्तर्गत विष्ट वए फुनोट को देखिए।

उन्होंने पवित्र माँ को मोक्षार्पण माँ का जो उनके जीवन में परछाईं की तरह रहेयी विशेष ध्यान रखने के लिये कहा।

मोक्षार्पण माँ ने पवित्र माँ की उनके अन्तिम क्षणों में १६ वर्ष तक अमररत सम्भयता-पूर्वक सेवा की। धामपुर व काशीपुत्रुर्वाहन में भी मोक्षार्पण माँ श्री रामकृष्ण की अन्तिम इच्छावस्था में उनकी सेवा-सुधूपा में पवित्र माँ की सहायता करती रही। उनके देहावसान के पश्चात् वह उत्तर भारत में बनारस एवं मुन्दावन और दक्षिण भारत में मद्रास तथा रामेश्वरम् में भी पवित्र माँ के साथ रही। वह पवित्र माँ की अमररत परिचारिका रही।

उनका दैनिक जीवन सादा था। भोर होते ही वह नार बजे उठ जाती व अपने कमरे में ही जप एवं भक्ति में तल्लीन हो जाती। तदनन्तर वह सन्निवृत्त बनती और गंगा-स्नान के लिये पवित्र माँ के साथ जाती। श्री रामकृष्ण की पूजा-अर्चना के पश्चात् वह मस्ती और सेवकों में प्रसाद का वितरण करती। मध्याह्न को वह भयवर्षीता महानगर एवं रामकृष्ण और विवेकानन्द की घिसाओं का धम्मयन करती। सम्झा के पश्चात् साडे-नी बजे तक वह जप एवं धारावना करती। तत्पश्चात् भोजन करके सो जाती। पवित्र माँ कहा करती थी— 'मोक्षार्पण ने जप द्वारा धातोके प्राण्ड कर लिया है।

मोक्षार्पण माँ निर्बन्धा में प्यार करती थी। उनकी धार्मिक धार्य निर्बन्धों की प्रावण्यकता पूरी करने में व्यस्त हो जाती थी। पवित्र माँ के देहान्त के पश्चात् वह चार वर्ष तक जीवित रही। १९ दिसम्बर, १९२४ को ६० वर्ष की आयु में वह परलोक विधायी।

### श्रीरामलि देवी

[श्रीराम माँ के रूप में विख्यात]

हावड़ा के सिबपुर ग्राम में श्रीरामलि देवी का जन्म सन् १८१७ में श्री पार्वतीचरण चट्टोपाध्याय की चौथी मन्तान के रूप में हुआ। उनकी वारिक बुद्धिवासी माँ विरिवासा देवी संस्कृत और बंगला की बिजुपी श्री तथा फ़ारसी और अंग्रेजी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।

श्रीरामलि देवी, जिनको बचपन में प्यार से मुदाधि भी कहा जाता था स्वामीय मिशनरी स्कूल में प्रविष्ट हुई। मित्र मरिया मिशनरी कलाकला के विज्ञान की बहुत ब स्कूल की एक सगठनकर्ता बालिका को इतना स्नेह करती थी कि इन्हीं में उनके लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने की इच्छा थी किन्तु विद्योपी बालिका



को अपने बर्ष के प्रति क्रिश्चियन धम्मापनों के व्यवहार का संकेत बड़ा दीम हुआ और उसने सर्वत्र के लिये स्कूल खोला दिया। अब तक उसने संस्कृत के बहुत से बालक गीता बच्ची तथा रामायण और महाभारत के अनेक अनुच्छेद कण्ठस्थ कर लिये थे। साथ ही संस्कृत-ध्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था।

बास्पावत्या म ही मृगाधि धारमज्ञानी थी। जब वह दस वर्ष की थी तब उसने एक ब्राह्मण धर्म-गुरु से जो उसके घर आया था दीखा ली। उसका मण्डल समय थी दामोदर (श्री कृष्ण का नाम) जिसकी पवित्र मूर्ति उस एक महिला मन्त्र द्वारा प्रदान की गई थी की धारावता म व्यतीत हाता था। जीवन पर्यन्त वह मूर्ति उसके पास रही। उसकी माता व धर्म सम्बन्धी उसकी शीघ्रतापूर्वक बढ़ती हुई धार्मिक मानु मन्त्रा को बेत चिन्तित हुए और शीघ्र ही जब वह १३ वर्ष की थी उसके विवाह का प्रबन्ध कर दिया। उसने अपनी माँ को इन शर्तों में बताने की थी 'मैं कबल उस घर का पाणिग्रहण करूँगी जो धर्म ही जिसका स्पष्ट अर्थ था कि वह केवल श्री कृष्ण की ही धरमा धाराव्यदेव स्वीकार करेगी। विवाह के एक दिन पूर्व उसे एक कल में बन्ध कर दिया गया ताकि वह गृह-त्याग न कर पाये। किन्तु वह धर्म सम्बन्धियों से धार्मिक अनुर थी। घट रात के समय वह पलायन करने में सफल रही। यद्यपि पता लगा कर उसे घर से आया गया किन्तु तत्पश्चात् उसे विवाह करने के लिये कभी विचार नहीं किया गया।

गुरुन्त ही उसे धनुमूर्ति हुई कि बरेमू जीवन उसके भाग्य में नहीं बना है। १८ वर्ष की आयु में अपने सम्बन्धियों के साथ गंगामावर की तीर्थ-यात्रा पर जात समय वह बरैर कुछ बड़े उसका साथ छोड़ गई। तदन्तर कुछ छात्र और साधुओं के साथ उसने हरिद्वार की यात्रा की। जमने गृहस्थियों के सम्पर्क से अपने को बचाने लगा। बन्नी-कमी पने बर्षों में सहोकर यात्रा की और कुछ पाय। वह हठ-संकल्प थी। दामोदर की पापाय-मूर्ति जो उसने घर में लटका रखी थी उसकी एकमात्र रक्षा थी। दैनिक प्रायश्चर्याओं की कुछ बन्धुओं के प्रतिरिक्ता पीता कुछ धर्म पवित्र धर्म और श्री योग्य तथा बाली माता के बिना उनकी सम्पूर्ण निधि व। बड़े केदारनाथ बड़ौताय ज्वालामुखी धर्मनाथ बुन्दारत हागका और पुष्टी धार्मिक स्थानों की यात्रा करत में लक्ष्य रही। पहाड़ और मैदानों ने विचरते हुए तीर्थालय के समय वह योद्धा बरत धारण करती थी। यदा-कदा धर्म बास्पाविक स्थिति का ध्यान के लिये बड़े धर्म शरीर पर मिट्टी धरना भूमि मय निगा करती थी या हीने ज्ञाने बरत और पपती पत्तन कर गुरप-नेप धारण कर लगी थी धर्म उन्मत्त स्थिति का धर्म व्यवहार करती थी। द्वारका में उसे धारधर्मजनक धार्मिक धनुमूर्ति हुई।

१८८२ में बहु क्लमकृता सैट भाई जहाँ बहु बभराम बोस श्री रामकृष्ण के प्रसिद्ध गृहस्थ शिष्य के बामबाजार स्थित गृह में ठहरी। एक दिन बे अपनी पत्नी एवं कुछ अन्य भक्तों के साथ उधे बलिभेखर सं गये और श्री रामकृष्ण से उसका परिचय कराया। रामकृष्ण ने उससे पुन धाने के लिये कहा और धपसे दिन प्राप्त कास बहु धकेसी बलिभेखर गई। प्रेमपूर्वक बे उसे सत्संग-मवन में से गये और पवित्र माँ से उसका परिचय कराया। तत्पश्चात् गौरी माँ बदा-कला पवित्र माँ के साथ उहा करती और श्री रामकृष्ण की शिष्या बन गई।

एक दिन भोर के समय जब गौरी माँ उद्यान में फूस टोड़ रही थी तो श्री रामकृष्ण उससे बोले 'गौरी माँ मैं पानी बालता बाता हूँ और तुम माटी घोड़ो।' गौरी माँ ने इसको साक्षिक धर्मों में लिया किन्तु उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा— 'घोड़ तुमने मेरा धागय नहीं समझा। मेरे कहने का तात्पर्य है कि इस बैस की स्त्रियों की दशा शाशनीय है। तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए। गौरी माँ ने उनके कथन का धागय जान लिया किन्तु भीड़-मड़कके और कोलाहल-पूरुन नगरों में कार्य करने में कुछ प्ररथि दिखलाई। फिर भी उसने श्री रामकृष्ण के पाठशालाधन यदि प्रावस्यभता हो तो युवा कन्याओं को नीरव बातावरण में प्रसिद्धि करने की इच्छा प्रसिम्पन की। निश्चित और स्पष्ट धर्मों में उन्होंने कहा— 'तुम इसी नगर में स्त्रियों के शिक्षण का कार्य करो। तुमने यथेष्ट धात्मिक बाग किया है। धब इस जीवन को स्त्रियों की सेवा में धर्षित कर दो। इस प्रकार उन्होंने उसे स्फूर्ति की तथा महिमाधार् और कन्याओं के सेवाधर्ष उनके मारी कार्य से प्रति बहुमूस्य धाधीर्षाद दिया।

१८८६ में श्री रामकृष्ण के सुमाध पर उसने बृन्दावन में धात्मिक धम्माध का कार्यधम जसाया जो ६ मान तक जता। इसकी समाधि से पूर्ष ही काशीपुर में श्री-रामकृष्ण का देहान्त हो गया। बहु इस दुःख से इतनी कातर हुई कि उसने कठिन उप-धर्षा से धपन जीवन का धन्त करन का निर्णय कर लिया किन्तु श्री रामकृष्ण के स्वप्न में धर्षन हुले के उपरान्त उसे धपना निरधम बदलना पड़ा। उनके देहावसान क पश्चात् पवित्र माँ जब बृन्दावन गई तो उन्होंने उसकी शोज की और उधया की एक निर्धन गुध्र में उसस भेंट हुई।

पवित्र माँ के एन धर्ष के बृन्दावन-निबाध क धनधर प्रस्वान करने के पश्चात् हिमाधम के सिध शिवाय शीर्षाधन के धतिरिक्त बहु इसी पवित्र स्वप्न के निकट ही रहती थी। क्लमकृता धान के पूर्ष उसने कुम मिमाकर १० धर्ष उत्तर भारत में धागीत किये।

धपने देध-ध्यापी धमध धपती तीध पर्यवेधन धमता भारतीय शक्तिधार्धों

## पूर्व तथा पश्चिम की सप्त महिमाएँ

घोर महिमाओं की दयनीय स्थिति के ज्ञान अपनी धमाहू विद्वत्ता अपनी महान् सगल्ल योम्यता के कारण बहु स्वयं भी रामहृष्य द्वारा सौंपि नये कार्य के सर्वथा उपयुक्त थी।

१८११ में उसने कसकता के निकट बीरकपुर में गंगा क किनारे पर कृपासेरबर म पवित्र माँ धारवादेवी की स्मृति में धारदेस्वरी धायम की स्थापना की। यह समूह घोर विकसित हुआ। ११११ में किराये का मकाम लेकर इस कसकता स्थानान्तरित कर दिया गया घोर ११२४ में २६ महापत्नी हेमस्त कुमारी स्ट्रीट स्वाम बाजार कसकता अपने वर्तमान गृह में धा गया।

११३२ के सगलग उसका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। उस समय उसकी धामु लयमग ७५ वर्ष की थी। अन्तिम बार वह पुरी जगन्नाथ जी के दर्शनार्थ गईं। दो वर्ष पदचाटू वह जमनामु-परिवर्तन के लिए बैद्यनाथ घोर एक वर्ष के अनन्तर गवडीप गईं।

छरबरी ११३८ में पुनीठ तिजरात्रि के दिन जो कि मास का अन्तिम दिन था जमने कहा कि उसकी जीबम-सीसा का अन्त निकट है। रात्रि होने पर उसने रामोदर जी की मूर्ति सामने के सिधे कहा। मूर्ति देखकर वह कहने लगी "मुन्दर! मैं उसे अपमक घोर सपमक मुद्राओं में स्पष्ट रूप से दख सकती हूँ। मुझे सर्वैक उसी का ध्यान रजगा है।" उसने अपने सिर से मूर्ति का स्पर्श किया तत्पश्चात् उम बल पर रत्ता तदनन्तर मुख्य धायमबासी को उसे सौंप दिया।

अपने दिन भयवान् का स्मरण करने के पूर्व तीन बार उसके मुख से निकला— "बुद्ध रामहृष्य" घोर धाम को ८ बज कर १५ मिनट पर वह परतोःकामिनी हुईं। गुरु होने के ताते उमने सैकड़ों योत्रियों को जिय्य बमामा घोर उनका माग दर्शन किया।'

'इस अध्याय की सामग्री भी रामहृष्य की छेंट मास्टर' घोर 'बेवाम्ब केतटी' (पवित्र माँ स्मृति सैक) की रामहृष्य मठ मयलापुर मद्रास द्वारा प्रकाशित एवं जूबोपन ११३४ के संकें से जूबोपन कार्यालय बागबाजार, कसकता से लो गई है।

भाग २

वृद्ध तथा जन धर्म की  
सन्त महिलाएं



## बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में महिलाओं का उच्चस्थान

### परिचयात्मक

#### जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म की विशेषताएँ

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म कई धर्मों में हिन्दू धर्म से भिन्न हैं इसलिए वे दोनों धर्म हिन्दुधर्म द्वारा बहुत-बहुत उदार समझे जाते हैं। सभी धर्मों तथा सभी जातियों के पुरुषों तथा महिलाओं को सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से एक समान देना इन दोनों धर्मों की सबसे बड़ी विशेषता है।

बौद्ध धर्म तथा बौद्ध धर्म की सामाजिक व्यवस्था में धर्म-व्यवस्था को मान्यता प्रदान की गई थी जो धर्मोत्तम जातिप्रथा के नाम से जान पड़ी। बौद्ध धर्म में समाज के प्रथम दो वर्गों अथवा वर्गों के लक्ष्यों को जो सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त थे (और इन दोनों में से पुरोहित [ब्राह्मण] धर्म उच्चतर था) के अधिकार उत्तर बौद्ध धर्म में चौथे वर्ग के लोगों (जिनमें अधिक धार्मिक सम्मिलित थे) दत्तु तथा धर्म निम्न जातियों के लोगों को प्राप्त नहीं थे क्योंकि वे सौम्य धर्मियों के समाज से बाहर समझे जाते थे। वे अधिकार धर्मियों को भी प्राप्त नहीं थे जो तीसरे वर्ग के थे। वास्तव में दत्तु तथा धर्म निम्न जातियों के लोगों को ऐसे कोई भी सामाजिक अथवा धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं थे जो उन्हें मानव के नाते मिलने चाहिये थे।

सभी लोगों के लिए सामाजिक समानता का उपदेश सर्वप्रथम उत्तर बौद्ध धर्म के महातम उपदेशक तथा श्रीमद्भूमवतमीमा के रचयिता श्री बुद्ध ने ही दिया था। उन्होंने सामाजिक समाज में सामाजिक समानता के विचार का भी समावेश करना चाहा किन्तु वह इस दिशा में बहुत धीरे-धीरे सफल न हो सके।

शास्त्रियों परचाय महावीर तथा बुद्ध ने भी लोगों को बताया कि धर्म समान रूप से सभी जातियों तथा वर्गों के लोगों और सभी पुरुषों तथा महिलाओं के लिए है।

पुरुषों तथा महिलाओं की साम्प्रदायिक समानता का अधिकार जो वैदिक युग में उत्पत्तरवर्षों के लोगों को ही प्राप्त था अब निम्नतर वर्गों के लोगों (पुरुषों तथा महिलाओं) को भी दे दिया गया। ये दोनों वर्गगुरु सभी जातियों तथा वर्गों के सभी लोगों को ही मही बरम् श्रेष्ठ की सभी महिलाओं को भी सामाजिक समानता का अधिकार देने के पक्ष में थे। भारत में महिलाओं की सामाजिक तथा साम्प्रदायिक स्थिति (सम्मान के अर्थ में) में परिवर्तन लाने का श्रेष्ठ सर्वप्रथम महावीर (५६६-५२७ ई० पू०) को ही प्राप्त है जो बुद्ध (४६०-४०० ई० पू०) के समकालीन थे परन्तु प्रायु में बड़े थे।

### बी परस्पर-विरोधी धर्मिता

प्राचीन कट्टरपन्थी विचारधारा तथा उसके बाद की उदार विचारधारा का भारत के धार्मिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार के जीवन पर अत्यन्त प्राचीन समय से जारी जारी से प्रभाव इस ईश से पड़ता रहा है जिससे हमें मनुष्य के हृदय के संकुचन तथा विस्तार की बात ही आती है। कट्टरपन्थी तथा कठ परम्पराओं के कारण समाज तथा धर्म के क्षेत्रों में स्वतन्त्रता की भावना को जब-जब ठेस पहुँची जबना उसका अपहरण हुआ तब-तब उदार विचारधारा का जन्म हुआ और पुरुषों तथा महिलाओं को समानरूप से सामाजिक तथा धार्मिक समानता के अधिकार मिले। उसी प्रकार उदार विचारधारा की उदार प्रकृतियों जब अपना उपयोग को बीठी और देश के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को विरोधी धर्मिता से सक्त उत्पन्न हुआ तब कट्टरपन्थी विचारधारा के फिर से अपनाए जाने से ही धर्म तथा समाज की रक्षा हुई। इस प्रकार, भारत के राष्ट्रीय जीवन में ये दोनों प्रकृतियाँ अपना-अपना योगदान देती रही।

### बीड धर्म

हिन्दू धर्म की कठ साम्प्रदायिक परम्पराओं से मुक्त होकर ही बीड धर्म का विकास हुआ और विचारों की इसी स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठावा हमें बीड समाज बीड रीति रिवाजों तथा बीड-जीवन में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। सान्नि तथा घासीनता के दूत मयबाम् बुद्ध ने हमें यह बताया कि जाति वर्ग अथवा निग-भेद के भेद-भाव से दूर रहकर ही धर्म सब के लिए समान रूप से सुभक्त होता है। उनके द्वारा स्थापित विशुद्धताओं से उन्होंने सभी वर्गों के सभी तथा निर्धन ईश तथा नीच कहलाने वाले और शिशु तथा निरन्तर, सभी प्रकार के व्यक्तियों को समानरूप से धारण की। इसी प्रकार विदुषियों के सब में भी जिनकी स्थापना के लिए उन्होंने अपना अनुमति की

सभी प्रकार की स्त्रियों—विवाहित स्त्रियों अविवाहित स्त्रियों तथा सभी जातियों की विधवाओं आदि—को भी प्रवेश प्राप्त करने का अधिकार दिया ।

संघ में केवल धार्मिक विकास पर ही ध्यान दिया जाता था और इसलिए इसमें कोई भी स्त्रियों के प्रति धर्म्य किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करता जाता था । यहाँ तक कि वेस्वावृत्ति-वैसा धर्म्य व्यवसाय अपमानेवासी स्त्रियों को भी संघ में प्रवेश करने की अनुमति दे दी गई थी और उनके साथ उनके विपक्ष भीजन को देखते हुए हीमता भयवा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार न करके धर्म्य स्त्रियों-वैसा ही व्यवहार किया जाता था । संघ में बौद्ध भिक्षुणियों तथा धर्म्य नयी भिक्षुणियों को ठीक उही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी वैसी बौद्ध भिक्षुओं तथा नये भिक्षुओं को मिलती थी । बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाली स्त्रियों को भी बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का धर्मास करमा जाता था ।

बौद्धकाल में यद्यपि महिलाओं को पहले स ङ्का स्थान दिया गया तथापि भिक्षुणियों भिक्षुओं से नीचे ही समझी जाती थी । वास्तव में प्रारम्भ में बुद्ध, संघ में स्त्रियों को प्रवेश प्राप्त करने की अनुमति देने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु संघ में उनके प्रवेश को अनुमति न देना तथा उन्हें बीजा न देना उनके संन्येस के मूलभूत सिद्धान्तों के ही विरुद्ध था इसलिए अन्त में उन्हें भिक्षुणियों के संघों की स्थापना के लिए अपनी स्वीकृति देनी पड़ी । परन्तु भिक्षुणियों के संघों के लिए फिर भी उन्होंने कुछ कड़े नियमों की व्यवस्था कर ली ।

### बौद्ध भिक्षुणियों के संघ की स्थापना कैसे हुई

सभी बौद्धकालीन अधिलेखों के अनुसार महाप्रजापति मीतमी तथा उसकी पांच सौ दासिमा ही पहली स्त्रियाँ थी जिन्होंने संसार का परिव्याप कर भिक्षुणी संघ की स्थापना की । बुद्ध की धर्ममाता तथा राजा शुद्धोदन की दूसरी रानी मीतमी ही संघ के पहली स्त्री थी जिसने अपने केश कटवाकर भिक्षुणी के पीले वस्त्र धारण किये । बुद्ध उस समय कपिलवस्तु में निघोषागम में थे । वह उनका दर्शन करने नहीं गई और उनके सामने नतमस्तक होकर उसने कहा ' हूँ देव ! यदि स्त्रियों को संसार तथा अपने घरबार का परिव्याप कर संघ की धरम में धामे और तथावत द्वारा बताये गये नियमों का धारण करने की अनुमति दे दी जाय तो बहुत अच्छा हो । यो नीतमा ! इतना बहुत है । मुझे इसके लिए तज्जिव न करो कि स्त्रियों को संघ में लेने की अनुमति दे दी जानी चाहिये ।' मीतमी ने यह प्रार्थना सुनाकर तथा ठीकठीक बार फिर बोधायी किन्तु बुद्ध अपने निश्चय पर अड़ रहे और उन्होंने नहीं उत्तर दिया । तब



गौतमी अत्यन्त दुखी होकर रोती हुई वहाँ से पत्नी गई। कुछ दिन बाद बुद्ध बीघासी की ओर गय। बीघासी पहुँचने पर उन्होंने महादहन कुटायार भवन में धात्रव लिया। गौतमी बीघासी गयी जहाँ धानन्द ने उसे उस भवन के प्रवेश द्वार के नीचे प्रतीक्षा करता हुआ पाया। उसने उससे उसके घाने का कारण पूछा कि वह इस प्रकार बुटी क्या म नये पैर, जो भूम से सने हुए थे बुकी धवस्था में तथा रोती हुई वहाँ क्यों आई है। उसने उत्तर दिया कि तत्पामत ने स्त्रियों को भिक्षुकी बनने की अनुमति नहीं दी। तय धानन्द तत्पामत के पास गया और उसने यह कहते हुए महाप्रजापति गौतमी के धान की मूचना दी 'मगबन् यदि स्त्रियों को बीसा करने की अनुमति दे दी जाये जैसा कि वह चाहती है तो आपकी बड़ी कृपा होगी। किन्तु बुद्ध ने कहा 'धानन्द इतना पर्याप्त है। तुम तत्पामत को इसके लिए सज्जित न करो कि स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दे दी जाये। धानन्द ने फिर यही प्रार्थना दूसरी तथा तीसरी बार दोहरायी और उसको वही उत्तर मिला। अन्त में धानन्द ने बुद्ध से अन्य घष्यों में इस प्रकार पूछा 'मगबन्, क्या स्त्रियों को संसार तथा घरबार का परित्याग कर देने के बाद तत्पामत द्वारा बताये गये सिद्धांतों तथा अनुशासन का पालन करने के लिए संघ में घाने पर सामूहिक मग्गशा (बार्तासाप) अथवा द्वितीय मार्ग अथवा तृतीय मार्ग अथवा अर्हत की स्थिति का साम उठाने का अधिकार है? 'बुद्ध ने उत्तर दिया हाँ धानन्द उनको इस प्रकार का अधिकार है। 'मगबन्, यदि उनको यह अधिकार प्राप्त है और महाप्रजापति गौतमी ने तत्पामत की बड़ी सवा की है—तत्पामत की माता की मृत्यु के बाद तत्पामत को अपने ही स्तनों से दूध पिनाया है—तो यह कितना अश्रद्धा हो कि स्त्रियों को संसार तथा घरबार का परित्याग करके संघ में अरन लेकर तत्पामत द्वारा बताये गये सिद्धांतों तथा अनुशासन का पालन करने की अनुमति दे दी जाये।

'धानन्द यदि ऐसी बात है तो महाप्रजापति गौतमी संघ के अष्ट मार्गों को धिराधार्म कर उनका पालन करने की बीबा से।

### अष्ट मार्ग

मुख्य अष्ट नियम ये थे —

- १ प्रत्येक भिक्षुकी को चाहे उसकी आयु सी बय ही क्यों न हो प्रत्येक नये भिक्षु के सम्मुख प्रणाम करना होगा। (पहले महाप्रजापति गौतमी ने इस नियम का विरोध किया किन्तु तत्पामत की इच्छा मानकर उस यह स्वीकार करना पड़ा)
- २ भिक्षुकी को बर्षा ऋतु ऐसे स्थान पर नहीं बिठानी हागी जहाँ कोई भिक्षु न हो।

३. वर्षा ऋतु की समाप्ति पर प्रत्येक मिक्षुभी को उसके द्वारा देखे गये चूने पड़े धूपका सोने गये किसी भी दोष के लिए, मिक्षु संघ तथा मिक्षुभी संघ, दोनों से क्षमा-याचना करनी होगी।
४. पादिक सभा (उपोषाह) तथा प्रवचन (प्रोवाह) की तिथि निर्धारित करने से पूर्व प्रत्येक मिक्षुभी को मिक्षु से धारोप लेने हूँगे।
५. कोई शम्भीर धपरधय होने की स्थिति में प्रत्येक मिक्षुभी को दोनों संघों से क्षमा-याचना करनी होगी।
६. प्रत्येक मिक्षुभी का दो बर्षों तक ३ नियमों के पालन का अभ्यास कर लेने के काय उपसम्भवा (बड़ी बीजा) के लिए बर्षों संघों से अनुमति लेनी होगी।
७. मिक्षुभी को मिक्षु के दोष निकालने तथा बताने का अधिकार नहीं होगा किन्तु मिक्षु मिक्षुभी को उसके दोष का ज्ञान दिना लक्ष्यता है।
८. मिक्षुभी को किसी भी मिक्षु के विषय में धपज्ज कहने का अधिकार नहीं होगा।<sup>१</sup>

मिक्षुभी संघ के लिए और भी कई नियम थे जिनका पालन करना मिक्षुधियों के लिए आवश्यक था। ये नियम बहुत ही कड़े थे। इन नियमों से उनकी पवित्रता, शुद्धता और मानसिक तथा प्राध्यात्मिक अनुसासन का नियमन होता था। उपर्युक्त नियम वास्तव में प्रविष्टास लेने वाली मिक्षुधियों के लिए होठ थे।

मिक्षु संघा तथा मिक्षुभी संघों की व्यवस्था बुद्ध के लिए स्वभावतः विन्दा का विषय बनी रहती थी और इसीलिए उन्होंने मिक्षुधियों के लिए इतने कड़े नियम बनाये। इन नियमों के अनुसार मिक्षुधियाँ मिक्षुओं के अधीन रखी गईं और इसीलिए मिक्षुधियों के लिए मिक्षुओं के साथ सहवास आवश्यक-था हूँ यथा जिसका परिचाय बाद में बहुत ही बुरा निकला। कुछ समय पश्चात् बौद्ध मिक्षुधियों तथा मिक्षुधियों के संघ भ्राष्ट्र में लुप्त हो गये। ईसा की पाँचवीं शताब्दी से तिब्बत की बौद्ध संघों में लेने की प्रथा समाप्त हो गई।

### जैन धर्म

महावीर बहुत ही उत्तम विचारवाने व्यक्ति थे और उन्हू जैन धर्म म तिब्बतों के प्रवेश के सम्बन्ध में कोई संकोच नहीं था। उनके अनुयायी चार बर्षों में बाँट दिने गये थे—मिक्षु, मिक्षुधियाँ गृहस्थ तथा गृहिनियाँ।

<sup>१</sup>डा० बी० सी० ला रचित 'बोमेन इन बुद्धिस्ट सिट्टेरर'

### पूर्व तथा पश्चिम की सप्त महिलाएँ

बैन धर्म वो मुख्य पन्नों में बाँट दिया गया जो दियम्बर तथा स्वेताम्बर पन्ना के नाम से प्रसिद्ध हैं। दियम्बर पन्थ के अनुयायियों का कहना है कि स्त्रियों को मोक्ष नहीं मिल सकता। इसलिये वे संघ में स्त्रियों को नहीं लेते। किन्तु स्वेताम्बर पन्थ के अनुयायी पुरुष जिज्ञासुओं तथा स्त्री जिज्ञासुओं में कोई भेद नहीं करते और इसलिये संघ में प्रवेश करने के लिए दोनों स्वतन्त्र हैं। महावीर के समय में १४ ०० पुरुषों की तुलना में ३९,००० स्त्रियों ने संघार का परित्याग कर मिसुमी धर्म स्वीकार किया। महावीर की दूर की बहन चन्दना (कुछ व्यक्तियों के अनुसार उनकी चाची) मिसुमी संघ की अध्यक्षता की। वे मिसुमियाँ जिनमें पीमाबाई बीसी रानियाँ और बनी तथा प्रतिष्ठित महिलाएँ सम्मिलित थीं अत्यन्त धादर की दृष्टि से देखी जाती थीं।

## बौद्ध तथा जैन सन्त महिलाएँ

### १ बौद्ध सन्त महिलाएँ

भारत के इतिहास में बौद्ध काल का धपना एक विषय महत्व है जो धर्म देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार तथा धपनी मातृभूमि में बौद्ध जीवन तथा दर्शन के प्रसार के लिए समान रूप से विख्यात है। इस काल में कई भद्र तथा सन्त महिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ इस युग की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पीठम बुद्ध के जीवन तथा उपदेशों से प्रेरणा लेकर इनमें से कई महिलाओं ने परिवार तथा परिवार का परित्याग कर नव-स्थापित भिक्षुनी-संघ में सम्मिलित होकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली जो संसार में धपने प्रकार का पहला ही संघ था। ये भिक्षुणियाँ धपने धार्मिकता भाइयों भिक्षुओं की भाँति या तो धामनों में रहती थीं या परिवारिकाओं के रूप में देश-देशान्तरों का धमप कर लोगों को ज्ञान तथा ज्ञान का उपदेश देती रहीं।

धर्म में स्वयं धपनी भास्वा तथा एकाग्रता का धधिक-से-धधिक विकास करना ही धर्म लोगों को धार्मिकता की धीर स्वच्छ से प्रवृत्त करने का धरततम उपाय है। इसलिए, ये भिक्षुणियाँ जहाँ-कहीं भी गईं वहाँ के लोगों पर इनके जीवन की धिनता तथा इनके धादनों का पहला प्रभाव पड़ा धीर धसंख्य लोगों ने इनके उपदेशों को सुना तथा हृदयंगम किया धीर धामर की एक उत्तम तरंग की भाँति बौद्ध जीवन तथा धर्गत संसार के एक बड़े भाग पर छा गया धीर लोग इसकी धीर धाकधित होते गये।

#### घीपा

इन बौद्ध भिक्षुणियों में सर्वप्रथम स्थान पीठम बुद्ध (सिद्धार्थ) की पत्नी 'घीपा' को ही प्राप्त था। ज्ञान तथा बोध प्राप्त करने की साधना से जब राजकुमार सिद्धार्थ एक दिन धर्द्धरात्रि के समय घीपा को उसके गह्वे घियु की धाय खोती हुई धकेली छोड़ कर चले गये तो उसने न तो इस विधाप के लिए बहुत धधिक पध्दतावा ही किया धीर न उसने राजकुमार को इसके लिए बोध दिया हात्कि कुल उत्तको बहुत हुआ। वह धपने पति के हृदय की विज्ञानता को मसी-भाँति समझती थी जो संसार

## पुत्र तथा परिचय की सख्त महिलाएँ

के दुखी प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए सदा ही चिन्तित रहना करते थे। राजसी जीवन की सभी विमात्रपूर्ण सुख-सुविधाओं से चिरी रहने पर भी अपने पति के बने जाने के बाद वह भी त्याग तथा उपस्था का ही जीवन व्यतीत करती रहीं जो जंगलों में दर-दर मटकने वाले उसके पति के कष्टमय जीवन से किसी भी प्रकार कम कटोर तथा कम कष्टसाध्य नहीं था।

कपिलवस्तु की जनता के हर्ष तथा आनन्द की उस समय कोई सीमा नहीं थी जब बौद्ध प्राप्त कर लेने के बाद भगवान् बुद्ध अपने पिता के घर वापस जाने किन्तु उस समय उनका घर घुटा हुआ था और वह नये पैरों ही चलकर वहाँ धाये थे— एक राजकुमार के रूप में नहीं बल्कि मानवजाति के एक सेवक उपवेशक तथा एक के रूप में। अपने पति से विभूत जाने के बाद एकाकी जीवन के सम्पूर्ण समय में गोपा ने अपने तथा अपने पति के विचारों के बीच इतना अधिक आवागम्य स्थापित कर लिया था कि उसके भी ठीक उसी तरह वैधव्य लेने का विचार धामा विश्व स्वीकार करते हुए अपनी ओर से बहुमूल्य भेट के रूप में अपने एकमात्र पुत्र 'राहुस' को ही उसकी सेवा में अर्पित कर दिया। उसने राहुस से अपने पिता के पास जाने तथा उनसे अपनी वैतुक सम्पत्ति की सम्मर्पना करने को कहा। किन्तु राहुस का पालन पोषण उसके पिता की अनुपस्थिति में ही हुआ था—इसलिए उसने कहा 'माँ किन्तु मैं अपने पिता को पहचानूँगा कैसे? इस पर उसकी माँ ने गर्व के साथ कहा 'मेरे प्रिय पुत्र तुम उनको ही अपना पिता समझना जो पुरुषों के बीच सिंह के समान दिखाई पड़ते हों।' ठक वह बातक सीने अपने पिता के पास पहुँचा और अपने उनके समस्त विमर्शक भी भी उसने देखा नहीं था निर्ममतापूर्वक अपनी प्रार्थना तक तक कई बार रोहृयमी जब तक उसके हार्दिक अनुरोध से प्रभावित होकर भयवान् बुद्ध ने अपने प्रमत्त दिव्य ध्यान' से राहुस को पीठ बन्ध तथा मित्रापात्र प्रदान करने को नहीं कहा। गोपा का यह सबसे अन्तिम तथा सबसे बड़ा त्याग था। अपने बुध से दुखी परलु एकदम शान्त तथा यन्मीर मुद्रा में उस समय एक राजमाता की भाँति बह एक अत्यन्त विनम्र तथा शैलमा का मुखपात्र करते हुए बुद्धिबोध हो रही थी। मानो वह उन सभी को अपना आशीर्वाच दे रही हो जो उसके पति के अनुयायी बनने जा रहे थे। उपस्थित जनसमुदाय के हृदय में उसके प्रति आदर तथा प्रेम की जो भावना विद्यमान थी उसको मूर्त रूप देने के लिए उसे 'मशोबरा' (पंच तथा सम्मान प्राप्त करने वाली) के नाम से विभूषित किया गया—त्रिच नाम से वह आज भी प्रसिद्ध है।

एक भवसर पर स्वामी विवेकानन्द<sup>१</sup> ने जो गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में बहुधा स्मरण दिसाया करते थे कहा 'जगत्का एक सबसे बड़ा धिम्ब स्वयं जगत्की पत्नी ही थी जिसको मारण की महिमाओं में बीड धर्म की श्रेष्ठता मरने का सबसे अधिक धम प्राप्त है।' किन्तु एक धर्म मत के अनुसार बीड भिक्षुनी संघ का संघटन करने तथा उसकी स्थापना का येव बुद्ध की विमाता गौतमी को ही बिया जाता है।

### गौतमी (महाप्रजापति)

बुद्ध की माता 'मायादेवी' को 'गौतमी' नामक एक छोटी बहून की जिसका विवाह भी राजा शुद्धोदन के साथ ही हुआ था। सिद्धार्थ का जन्म होने के सात दिन बाद ही जय मायादेवी की मृत्यु हो गई तो गौतमी धारण्य दुखी हुई धीर राजा भी अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी के पासत-पोषण के लिए बहुत ही व्याकुल तथा चिन्तित हो उठे। इसी समय बुद्ध बिनो परचाद् गौतमी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। गौतमी के हृदयमें मातृहीन शिशु के लिए इतना अधिक वात्सल्य था धीर उठे अपने पति राजा के प्रति भी अपने कर्तव्य का इतना अधिक ध्यान था कि उसने अपने पुत्र के पासत पोषण का भार तो एक बाय पर छोड़ दिया धीर माँ के हृदय की अपनी सारी ममता तथा वात्सल्य अपनी मृत बहून के पुत्र पर ही स्योछावर कर डालने का निश्चय किया। सिद्धार्थ भी उसको अपनी सपनी माँ-बैसा ही प्रेम करता था। यद्यपि हम इसके इन्कार नहीं कर सकते कि राजकुमार सिद्धार्थ में मायी बुद्ध के जन्मजात गुणों के विकास के संदेह तो उसके वात्सल्य में ही मिलने लगे होंगे तथापि इसमें रती-भर भी संदेह नहीं किया जा सकता कि जयमें जो-जो पुत्र बाद में परिलक्षित हुए वे गौतमी के संस्कारों के ही परिणाम थे। वह तो उसके बहुत ही अधिक प्रभावित हुई धीर समय पाने पर उसी के मार्गदर्शन तथा नेतृत्व में शास्य बच की १ • महिलाएँ बुद्ध के पाठ नहीं किया। बुद्ध को सम्बोधित करते हुए उसने 'बेटीगाथा' में मिला धो सुपठ जब तुम शिशु थे तब तुम्हें निरल कर तथा तुम्हारी मधुर तोलती बापी को चुनकर मरी छाँछों तथा मेरे कानों को परम सुस प्राप्त होता था किन्तु उसकी मेरे इस पामान्य से तुलना मही की या मकती जो तुम्हारे प्राण के ज्ञानपूर्ण तूड मर्यों को सुनकर मेरे हृदय में मायी उछालें भर रहा है। इन शब्दों से प्रकट हो जाता है कि गौतमी बुद्ध की एक परम निष्ठा हाम के साथ-

<sup>१</sup>स्वामी विवेकानन्द 'कम्पनीट वर्कस' बॉड VII पृष्ठ ७६।

ही-साज अन्त तक उनकी प्रिय माता भी बनी रही। उसे 'महाप्रजापति' की उपाधि से भी विभूषित किया गया और इस प्रकार इसी नाम की अन्य महिला दिव्या से उसे पूजक करने के लिए विभिन्न स्थान प्रदान किया गया।

### किता भीतमी

गौतमी नाम की एक अन्य महिला एक यरीब घर में पैदा हुई जिसको उसके पति के सम्बन्धियों की घोर से बहुत ही भुग व्यथहार प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह बुबली-पतनी तथा दुखी महिला बार को 'किता गौतमी' के नाम से प्रसिद्ध हुई—पामी भाषा का 'किता' शब्द संस्कृत भाषा के शब्द 'कृत्' का ही अपभ्रंश है जिसका अर्थ है बुबला-पतला। किन्तु गौतमी के गर्भ से एक पुत्र का जन्म होने के कमस्वरूप उसके गृहस्थ जीवन में काफी कुछ परिवर्तन हुआ। उसके अत्युत्त हृदय का सारा प्यार उसी मने दिव्य में केन्द्रित हो गया और भविष्य के सम्बन्ध में उसमें एक नयी आशा तथा साहस का संचार हुआ और तब से वह केशव उसी सन्तान के लिए ही जीवित रही किन्तु खेद है कि उसकी यह प्रसन्नता कुछ ही समय के लिए रही। एक दिन जब वह बालक बगीचे में खेल रहा था तो उसे एक जहरीले साँप ने काट खाया। वह वहाँ घुरन्त ही मर गया और किता भीतमी फिर दुःखिनी-की-बुखिया ही रह गई। अपने छोटे बालक का सब अपने हाथों में भिने-भिने वह एक पावन घोरत की भाँति ऐसी जड़ी-बूटी की खोज में ब्रूमती रही जिससे उसका प्रिय पुत्र फिर से जीवित हो उठता। ठीक उसी समय गौतम बुद्ध तथा उनके शिष्य अकस्मात् उजर से निकलें। उनके सान्त तथा तेजस्वी मुख को देखकर उसके हृदय में फिर से एक नयी आशा का संचार हुआ। उसने अपने पुत्र का सब उनके घरों में रखकर रोते हुए उनके सामने घुटने टेक कर कहा 'पुत्र के बिना साठ संसार मेरे लिए धँबरा है। हुपमा इसको पुत्र जीवित कर मेरा बुल्ल दूर कीजिये। बुद्ध ने उत्तर दिया 'हि कस्यामी उठे तथा जाकर एक तीसरे घर (घौस का दो-पंचमांश) सरसों के दाने से धामो और मैं तुम्हारे पुत्र को पुनः जीवित कर दूँगा किन्तु एक बात का ध्यान रखना कि सरसों के ये दाने ऐसे घर से घाने चाहिये जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो। बुद्ध से पीड़ित तथा सरस हृदय वाली गौतमी को जगवान् बुद्ध के इन शिष्यपूर्ण शब्दों के पीछे चिप्रा हुआ गृह अर्थ समझ में नहीं आया। एक मुट्ठी भर सरसों के दानों के लिए वह घर-घर गई किन्तु उसे एक घर भी ऐसा न मिला जहाँ मृत्यु की छाया न पड़ी हो। अन्त में निराग होकर पची-माँदी गौतम बुद्ध के पास लौट कर धामी और अत्यन्त बुल्ल के साथ उनसे बतलाया कि यद्यपि सरसों के दाने देने वाले तो उसे घनेक भिने परन्तु वह उनकी

यह दर्से पूरी न कर सकी कि ये शान्ति ऐमे वर से आने चाहिये जहाँ सभी किसी की मृत्यु न हुई हो। तब बुद्ध ने अश्वत्थ वृक्ष के शाख कहा 'हे स्वामी, संसार में जन्म तथा मृत्यु का एक इसी प्रकार चरता ही रहता है। जैसे कि तुम स्वयं सभी देस चुकी हो वह बुद्ध केवल तुम पर ही धारण नहीं पड़ा है। मगधान् बुद्ध के इन शब्दों ने उसके चाहत हृदय पर धीवधि-जैसा अमलकार कर दिखाया निराशा के स्थान पर उसके हृदय में शान्ति उत्पन्न हो गया और उसके हृदय की वास्तव बीड़ा अथ वैराग्य के रूप में परिवर्तित हो गई। उनसे अपने पुत्र का अन्तिम शाह-संस्कार किया और मगधान्-बुद्ध के उपदेशों के फलस्वरूप जीवन के एक नये दृष्टिकोण से आलोचित अपने हृदय में नयी उर्ज लेकर उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। इसके साम-साथ बरदार तथा परिवार का परिस्थान कर वह एक भिक्षु भी बन गई। समय बीतत जाने के साथ-साथ उसके हृदय में आध्यात्मिक ज्ञान का विकास होता गया और जन्म में वह धर्त (मोक्ष की) स्थिति को भी प्राप्त हो गई।

सभी धर्मप्रवर्तकों ने इस बात पर बार-बार बल दिया है कि बाह्य आशयों तथा बाह्य वातावरण में स्वामी ध्यानि की शोत्र करना बड़ी मूर्खता है। बाह्य वातावरण तो केवल एक साधन होगा है, जिसकी सहायता तथा जिसके उपयोग से हमें अपने जीवन को अपना एक सशित रूप देना होता है और वह भी उसके सामने हृदियार डाल कर नहीं बल्कि उससे घाय आकर तथा उससे ऊपर उठकर। सम्पूर्ण मामिक बटना से, जो जीवन के एक अत्यन्त सरल तथा वास्तविक सत्य से सम्बन्धित है यदि वह उद्धारक पूरा नहीं होता जिससे पुत्र की मृत्यु पर पीठपी के हृदय में शान्ति की वापुति हुई तो यह घटना बिलकुल धर्म ही रहती। उसकी सुविधा भी वेरी साधा' में सिपिबट है और उसका जीवन उक्त आशयत् ध्यानि का एक अत्यन्त उदाहरण है जो आध्यात्मिक जीवन की अन्तिम परिणति के रूप में प्रकट होती है, इती के आधार पर सब का एक अन्त्या जिज्ञानु मुक्त-मुक्त की मानना से ऊपर उठ सकता है जो इस संसार संसार की प्रत्येक अक्षरभंगुर बस्तु के सामे उसकी प्रतिज्ज्ञामा की शान्ति सम्बन्धित रहती है।

इस अन्त्या से पवित्र जीवन की आशयक विद्येयताओं के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रमपूर्ण धारणाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। एक साधारण मनुष्य की दृष्टि में आध्यात्मिक जीवन ही एकमात्र वास्तविकता है और वह रोपियों को रोपमुक्त करने तथा मृतकों को पुनः जीवन कर देने—जैसे अमलकारों को ही मानवमान के लिए सबसे बड़ा बरदान मानने के समाना और कुछ ही रूपना कर ही नहीं सकता। किन्तु हम देखते हैं कि संसार हाथ प्रेम तथा ध्यानि के महानतम रूप के रूप में ही माने तथा देखे जाने वाले पीठय बुद्ध ने इस अथवा ऐसे किसी अक्षर पर भी अमलकारपूर्ण कार्य कर दिखाने



घपना जागू टोने से किसी को रोगमुक्त कराने की कभी कोई चेष्टा नहीं की। दूसरी धोर वह ऐसे कमकारपूर्ण कार्यों को छाय की खोज में एक सबसे बड़ी बाधा के रूप में ही देखते पाते हैं। एक बार उनके सिष्यों ने उनको एक ऐसे व्यक्ति के विषय में बताया जिसने बहुत अधिक ऊँचाई से एक अपूर्ण पाप घपने हुआ में रोक कर दिखाया था। बुद्ध ने वह पाप सिखा और उसे घपने पैरों से ठोड़-ठोड़ बना तथा घपने सिष्यों से इस प्रकार के कमकारों पर कभी भी विश्वास न करने का अनुशासन दिया। वह जो कुछ कहते-करते थे उसमें मानव की मर्यादा से परे की कोई बात नहीं होती थी जैसा कि एक बटमा से स्पष्ट रूप से प्रकट है कि उन्होंने एक बकरी की रसा के लिए घपना ही जीवन ग्योछावर कर देने का प्रस्ताव रखा था। इसलिए, हम देखते हैं कि उनके अनुयायियों के जीवन में कोई असाधारण बटमा प्रथवा बात को भी कोई महत्व न दिये जाने के ही प्रयास किय गये और इन्हीं में उनकी महान् प्रकृत तथा उनका धार्मिक षत निहित है।

### सुप्रिया

सुप्रिया पावस्ती के 'अनाथ पित्रा' नामक एक सुप्रसिद्ध जगन्गी सामन्त की पुत्री थी। उसके माता-पिता ने उसका सासन-वासन अत्यन्त साह-बाध तथा विशा सित्त पुष इंध से किया था और उन्होंने अपनी साइली पुत्री के वासन-पोषण तथा विशा धादि पर अपना अत्य बाध्यत्व तथा पम ग्योछावर कर दिया था। कहा जाता है कि वह असाधारण विज्ञान थी। घपने बाध्यकाल में ही उसे घपने पूर्ण अन्न की सारी बातें स्मरण थी और अक्षर वह घपने विगत जीवन की कई घटनाओं का उत्प्रेष भी किया करती थी। पौत्रध बुद्ध की विभाता तथा मीर्मा 'महाप्रजापति यौतमी' ने साठ वर्ष की किशोरावस्था में ही उसको बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी। सुप्रिया घपने बुद्धों तथा धार्मिक ज्ञान के लिए काफी प्रसिद्ध थी किन्तु इनका धर्म वह नहीं कि वह एकान्तप्रिया की प्रथवा एकान्त जीवन व्यतीत किया करती थी। ध्यान उपासना तथा पुजा-नाट के वाचक्रम के साथ-साथ वह गेधिया की सेवा-भूषणा के रूप में सहायता करने और गरीबों तथा अमाय व्यक्तिता की दरभान करने के लिए भी घपना बुद्ध-न-भुव समय देती ही रहती थी। उनके बाध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना से उनके नैतिक साहस तथा उनका चरित्र-बल का एक सुन्दर परिचय मिलता है जो मात्र भी हमारे त्रिबे स्पष्ट रूप में स्मरणीय है।

एक समय जब भयभान् बुद्ध जीवन के विद्वान (मठ) में रह रहे थे उस समय पावस्ती जैसे समृद्ध तथा विद्यासीनी नगर में प्रवेश कर अकाल पड़ा हुआ था। वाचाभाव

के कारण पुरुष तथा महिमाएँ सूख कर केवल हड्डियों के ढाँचे मात्र ही रह गये और वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। इस प्रकार वे सरलता से गनी के सिकार हो गये और नगर में चारों घोर मृत्यु का ही बोसबामा हो उठे। लोग हजारों की संख्या में मरते जा रहे थे और चारों घोर निराशा-हीन-निराशा छाठी बनी जा रही थी। ऐसी कोई बात नहीं थी कि शाकस्ती नगर अपने भासियों के लिए लाघ-न्याय्य धरीशने के पर्याप्त सावना से हीन तथा इस सर्वकर संकट पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ था किन्तु स्वायं-भरावणता तथा साम ने बनी-मानी नागरिकों के हृदयों का भी जो लाघ-न्यायों तथा घन धादि से पर्याप्त सहायता कर सकते थे कठोर बना दिया था। अपने सभी नागरिकों की कष्टपूर्ण स्थिति से विचलित न होकर उन लोगों को न तो अपने भाइयों की इस दुर्दसा की घोर ध्याय ही देने की विन्या हुई और न उन्हें उनकी हृदयविचारक तथा बर्दभरी भीष्कार ही सुनने का ध्यान हुआ जिससे नगर के वे सारे-के-सारे भाग बुरी तरह प्रसूत थे वहाँ परीबलोग रहते थे। दूसरी ओर, इस घातका कि परीब लोय सुदमरी से तय भाकर कानून धादि की उपेक्षा कर कहीं अपने जाम्पसामी पड़ोसियों की सम्पत्ति तथा उनके बीबन के लिए ही संकट न उपस्थित कर दें उन्होंने अपनी मूरखा के उपायों को धीरे भी बुझ करना धारम्भ कर दिया।

एक दिन बिहार के प्रवेशद्वार पर एक बालक घोंबे मुँह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ देखा गया। उसकी इस अत्यन्त दुर्गीय अवस्था को देखकर गौतम बुद्ध के प्रमुख शिष्य 'महात्थ' को बहुत ही दया धामी और दयधुम बुद्ध के पास जाकर जनते कहा 'महात्थ के लोय नगर में मूर्खों मर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारे सब (बौद्ध मिशुनों के सब) का क्या कर्तव्य है? तथागत के उपदेय सुनने के लिए शाकस्ती के कई बनी-मानी नागरिक वहाँ धाबे हुए थे और उन समय भी वे वहाँ उपस्थित थे। उनको सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने कहा 'घाय सब सम्भय बनी तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। यदि घाय चाहें तो घाय लोय इस प्रकार मर रहे हजारों लोगों के जीवन की रक्षा कर सकते हैं। तथागत के इन धाधों को सुनकर शकक बनी-मानी व्यक्ति ने बुद्ध-न-मुझ बहागा बना दिया। बुद्ध व्यक्तिधों ने कहा 'हमारे धनाज के मोधाम वाली हैं। सम्भ ने कहा शाकस्ती एक बड़ा नगर है और यहाँ की जनसंख्या भी काफी है। सबको जीवन देना बिसम्भय धरम्भय है। इस मरधर पर बुद्ध का धनय शिष्य 'धनाथ पिष्कार' वहाँ उपस्थित नहीं था। तथागत ने चारों घोर देखा और फिर कहा 'क्या यहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो अपने भाइयों की इस सर्वकर सहाय से रक्षा कर सके?' किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु बुद्ध धय तक

सम्भ्रमता घाने रहने के बाव एक बालिका अपने स्वाम पर लड़ी हुई और निर्भयता पूर्वक तथा विपदा के साथ बोलते हुए उसने कहा 'हे देव यह वासी धापकी धाम्ना-पासन के लिए उद्यत है। लोगों की सेवा करने में समर्थ होगा एक बहुत बड़ा सौभाग्य है।' यह बालिका और कोई नहीं बलिष्ठ इसी भूतान्त की मायिका 'सुप्रिया' थी। योत्सायन किस्मिठ-से रह गये किन्तु उन्होंने सोचा कि उस बालिका ने अपनी धाम्ना का ध्यान न रखते हुए बिना कुछ सोचे-समझे ऐसे ही कुछ कह दिया था। तथापत्त ने उसकी बात पर हँसते हुए कहा 'मेरी बच्चों तुम इतने असंख्य लोगों का पेट कैसे भर सकोगी? इस पर सुप्रिया ने उत्तर दिया 'हे देव! धापकी हुआ से। मेरा मित्रा पात्र कभी भी खाली नहीं होगा। यह मुझों को भोजन देना और मरते हुएों को पुन जीवन-दान। और भावस्ती का प्रकास कुछ ही समय में एक बीनी हुई घटना-मात्र रह जावेगा।

सुप्रिया के धर्म-जैसे मयुर बच्चों का मुणकर 'धानम्' का हृदय धानम् से किमोर हो उठा और बालिका को धायी-रि बेते हुए उसने कहा— बालिका न रूप में हे मां किं दिया और तब सभा विसजित हो गई।

यह समाचार कि धनाय विपदा की पुत्री तथा महाप्रजापति गौतमी की त्रिध धिय्या 'सुप्रिया' ने भावस्ती से प्रकास की स्थिति समाप्त करने का प्रयत्न है बावतत के समान नगर भर में सुरल ही फैल गया। लोगों के कठोर हृदयों में भी क्या का बाव हो गया और उन सब में एक नया उल्हाह छा गया। सबने एक स्वर में कहा 'सुप्रिया का मिता-पात्र खाली नहीं रहेगा।' सुप्रिया मिला लेने के लिए घर घर गई। मानवता के प्रति उसका प्रेम प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में पुंजारित हो ही चुका था और नगर का प्रत्येक पुरुष महिला तथा बालक-बालिका उसकी सहायता करने के लिए तैयार थे। प्रजात होने के साथ-साथ जिस प्रकार राजि का मनभोर धन्यकार हुंटा जाता है, उसी प्रकार सुप्रिया के बसन्त व्यक्तित्व ने प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में फिर न विरवात तथा धाना का संचार कर दिया। इस प्रकार भावस्ती का प्रकास समाप्त हो गया और अपने इसी कार्य के कारण वह बीड साहित्य के प्रबों में उदा-सना के लिए प्रसर हो गई।

पदाचार

पदाचार का जन्म भावस्ती के एक व्यापारी-परिवार में हुआ था। उसके पुत्र

जीवन प्राप्त कर लेने पर उसके माता-पिता ने उसके योग्य एक सुन्दर, चरित्रवान तथा उनकी जैसी सामाजिक स्थिति वाले नवयुवक बर की खोज की किन्तु पटाचार्य उसके साथ बिबाह नहीं करता चाहती थी। उसने अपनी दधि के ही एक नवयुवक के साथ भवना बिबाह किया। इससे उसके पिता-माता क्रुद्ध हो गये और वह अपने माता-पिता के घर तथा नगर को छोड़कर अपने पति के साथ खूमे के लिए किसी अन्य स्थान को चली गई।

कई वर्ष बीत गये। दो पुत्रों की मरता बमने के बाद पटाचार्य ने एक बार फिर अपने माता-पिता के दर्शन करने चाहे। इसलिये, अपने पति तथा बच्चों के साथ वह यात्रास्ती के लिए चल पड़ी। मार्ग में जब वे नौग एक जन में से होकर जा रहे थे उसके पति को एक बहरीम सांप ने काट लिया। मास-मास से कोई भिक्षुत्वा सुलभ न हो सकी और उसका पति मर गया। अपनी सन्त-भर इस घनपासघ घटि को सहन करके बुरी तरह रोती हुई पटाचार्य ने अपनी माता भागे जारी रखी किन्तु दुर्भाग्य ने मनी-नी उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसके बच्चे जब एक बूछ की छाया में छोये पड़े थे कि एक जंपनी पत्नी धापा और छोटे बच्चे को उठाकर ले गया किन्तु दुर्भाग्य का बर्ही पर भ्रम नहीं हुआ। उतका बड़ा पुत्र भी एक छोटी नदी पार करते समय उसकी सेवा बाध में बह गया। इस प्रकार उसके बूछ का बड़ा ऊपर तक मर गया। अपने छोटे-से परिवार के सभी सदस्यों को छोड़कर पटाचार्य पल्पस्थ दुकी हुई और बिना कुछ समझे-बूझे कि बह गया करे पापमो की भाँति भागे बढ़ती चली गई। उतका हृदय इतना भारी हो चुका था और वह इतनी बेचुब हो गई थी कि उसे इस बात का कोई भान ही नहीं रहा कि वह कियर जा रही है। दुःख की हल पड़ी में भी उसे जो अन्तिम प्राप्ता लगी हुई थी वह थी अपने माता-पिता से पुनर्मिलन की। किन्तु, ईश्वर के प्रिय व्यक्तियों को अपनी प्रकार के सांसारिक मोह तथा ममता को छोड़ कर केवल 'उसी' पर आभित रहना सीख लेना चाहिये और यह सीखने के लिए पटाचार्य को सम्भवत एक और निराशा का सामना करना पडा था।

इस समय तक वह यात्रास्ती नगर के निकट जा चुकी थी किन्तु यहाँ पहुँचने पर उसे अपने वास्तविकाल वाला बर नहीं मिला। पूछने-प्राप्त पर उसे पता चला कि उसकी अनुपस्थिति ने उसके माता-पिता के घर की छत गिर पड़ी थी और उसके माता-पिता, दोनों-के-दोनों उस मकान के मलबे के नीचे दब गये थे। इस समाचार को पाकर तो उसके होस-हवास बिलकुल ही गायब हो गये और वह खोटी से पू-पूट कर बिसमती हुई तथा बिलबने वाले प्रत्येक व्यक्ति से अपनी धाप-बीती सुनाती हुई नगर में ही चारों ओर चक्कर लगाती रही।

उस समय भगवान् बुद्ध भावस्ती में थे। बुद्धिवा पटाचार उनके पास पहुँची और उनके चरणों में गिरकर उसने अपने सभी म्रिय स्वजनों की मृत्यु का समाचार सुनाया। बुद्ध ने उसे सात्त्वना दते हुए उपदेश दिया कि संसार में जीवन किसी भी प्रकार से स्थायी नहीं है। उनके उपदेश से उसे शान्ति मिली? उसने संभ में धरम की धीर वह बौद्ध भिक्षुणी बन गई। इसके बाद उसने अपना जीवन मानवता की सेवा में नये धर्म के प्रचार-कार्य में तथा अपने सभी धम्म शोनों से धर्म के अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने का धनुरोध करने में व्यतीत किया। अपनी जीवन-पर्यन्त साधना में उसे इतनी अधिक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई कि वह हजारों नर-नारियों के संतप्त हृदयों को शान्ति प्रदान करने में सक्षम हो गई। पिटक में बताया गया है कि १० महिलाओं की समा में उपदेश देते हुए पटाचार के शब्दां से उन पर इतना अधिक महार प्रभाव पड़ा कि वे सब-की-सब भगवान् बुद्ध की दीक्षित शिष्या बन गईं। सार्वजनिक रूप से भाषण (उपदेश) देकर ही इतने अधिक व्यक्तियों को प्रभावित करना इतिहास की एक अद्भुत घटना है। और इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके शब्दां को ओ इतना बल प्राप्त हुआ वह उसके पवित्र जीवन तथा चरित्रबल के कारण ही सम्भव हुआ था। पटाचार एक ऐसी भिक्षुणी का उदाहरण है, जिसने अपने जीवन को सामान्य सांसारिक स्तर से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक आनन्द तथा शास्वत शान्ति की इस स्थिति तक स्वयं अपने ही प्रयास के बल पर पहुँचाया और वह धम्म शोनों का भी पवित्र सुन्दर तथा सञ्चरित जीवन बिताने के मार्ग का मार्ग-दर्शन करने में सफल हो सकी।

### धम्मपाली

वैशाली नगर में 'धम्मपाली' नामक एक सुन्दर बेटी रहा करती थी। उसके पास काफ़ी धन तथा सम्पत्ति थी। इस सम्पत्ति में से सबसे अधिक स्थायी प्राप्त सम्पत्ति नगर के बाहर स्थित एक बड़ा उद्यान था जो 'धाम्म-वन' धर्मवा 'धाम्मकुंड' के नाम से प्रसिद्ध था।

रेश का भ्रमण करते हुए भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्य एक बार इस घोर भी धार्य। उद्यान के घात तथा शीतल वातावरण ने उनको अपनी धीर आकर्षित किया और इस स्थान को अपने निवासस्थान के उपयुक्त समझ कर उन्होंने घाम के पेड़ों के छायादार ढूँज में अपना शिविर स्थापित करने का निश्चय किया। उनके आगमन का समाचार सुन धम्मपाली उनके आनिर्धर्ष बहा गई। उसकी पीशाक तथा रत्न आदि गो साधारण धर्मिणु उसकी सुन्दरता की बहुत दूर-दूर तक ग्याति थी। बुद्ध ने

जब उसको अपनी घोर दूर से भाते देखा तो वह सोचने लगे, 'अपनी मूर्खता के प्रति-  
रिक्त जिसके कारण बड़े-बड़े राजा-महाराजा तथा राजकुमार भी इसके बंध में हा-  
बाते हैं वह अत्यन्त घातक तथा घोर है। इस प्रकार की घोरतें संसार में मिलनी  
बस्तुतः बहुत कठिन हैं।

तथागत के समझ साक्षात्कृत ब्रह्मण्य की स्थिति में तमस्कार कर धम्मपाली  
सालीनता के साथ अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक उसके निकट बैठ गई, और उसकी आत्मा  
तथा विश्वास को देखकर भयवान् बुद्ध ने उसको धर्म का उपदेश दिया। उसके तेज  
तथा प्रतिभा को निरख कर उसकी सभी सांसारिक बाधनाएँ मुप्त हो गईं धम्मपाली  
का हृदय शुद्ध तथा पवित्र हो गया और उसको उनके उपदेश में भट्ट भट्टा उत्पन्न  
हो गई। उसने तब तथागत से कहा "हे देव! कल अपने शिष्यों के साथ मेरे  
से निजा रह्य कर मुझे छुटकारा करें।" तथागत ने अपनी मीन स्वीकृति दी। इसके  
कुछ ही समय बाद कुछ सभी मनुष्यक लीवावर बहुमुख्य पोषाके पहले तथा रत्न  
घादि वारण किन्ने हुए अपने-अपने रथों पर बैठ कर वहाँ भाये और उन्होंने  
अपने पिन तथागत को अपने यहाँ मौजल का निमन्त्रण दिया किन्तु भयवान् बुद्ध  
धम्मपाली का निमन्त्रण पहले ही स्वीकार कर चुके थे। इसलिए, उन्हें उनका  
निमन्त्रण अस्वीकार करना पड़ा। उन्होंने धम्मपाली के निमन्त्रण को रद्द करवाने  
का भरसक प्रयत्न किया और उन्होंने तथागत को बहुमुख्य रत्न घादि देने का भी  
प्रणोदन दिया किन्तु तथागत जब अपना साम्राज्य ही त्याग चुके थे तो इस  
प्रकार की मौजल सम्पत्ति के सहज प्रणोदन में वह कस भाग्य और इस प्रकार  
धम्मपाली का ही निमन्त्रण कायम रहा।

यहसे किन अपनी योजना के अनुसार भयवान् बुद्ध अपने शिष्यों के साथ धम्मपाली  
के घर बसे। एक लम्बे-बीड़े मीवान तथा एक सुख्यवन्धित उजाम के बीच धम्मपाली  
का चिदास तथा भव्य भवन था जो किसी राजा-महाराजा के महल से किसी  
धर्म में भी न कम ठान-बाट का था और जो बिनासी जीवन की सभी प्रकार की सुख-  
सुविधाओं से भी अपनी-माँति पूर्णतया सम्पन्न था। तथागत के स्वागत में भवन  
तथा उद्यान दोनों ही नूब सजाने गये थे और उनके भोजन के लिए विभिन्न  
प्रकार की बस्तुएँ तैयार की गई थी। उनके भोजन करने के उपरान्त धम्मपाली  
ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा "हे देव! मैं यह भवन उद्यान बस्त्र रत्न-सामुपण  
घादि अपना सर्वस्व तब के घरवालों में समर्पित करती हूँ। इस सुख्य भवन को स्वीकार  
करके मेरे हृदय की मनोकामना पूरी करने की कृपा करें।"

तथागत ने धम्मपाली की भेंट स्वीकार कर ली और उसको अपनी शिष्या

बनाया। तबसे कुछ ही दिनों बाद बीघाली से बने ममे किन्तु सम्बन्धी अपने नगर के लोगों की सेवा के लिए नहीं स्वीकृत। बर्मे के अनुसार उसके नियमों के वास्तव में उसने अपना शेष जीवन बीन-कुष्ठियों की सेवा करने में और अपने साधारण तथा विचारों में अधिक-से-अधिक परिवर्तन आने के प्रयास करने में बिताया। यद्यपि एक बार वह वेदनाश्रुति-जैसा प्रथम व्यवसाय अपना चुकी थी तथापि अब वह अपने जीवन को सुधारने तथा मानवता की महानता प्रकट करने में अपने साधारण का उपयोग करने में शर्मा उसका सिद्ध हुई।

### संघमित्रा

संघमित्रा भारत के महान् सम्राट् अशोक की पुत्री थी। पारशाल्य विद्वानों का कहना है कि वह उसकी बहन थी किन्तु वे, इस भारतीय परम्परा के विच्छिन्न जितके अनुसार संघमित्रा अशोक की पुत्री ही उद्घोषित पायी है, कोई प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत नहीं करते।

बीड धर्म स्वीकार करने के बाद अशोक ने अपना शेष जीवन धर्म के प्रचार में ही लगा दिया। बीड धर्म राष्ट्र-धर्म घोषित कर दिया गया पशु-पक्षियों के बच का निषेध कर दिया गया सारे राज्य-भर में पशु-पक्षियों के चिकित्सालय तथा मनुष्यों के लिए उपचारालय स्थापित कर दिये गये और निर्धनों तथा सुपात्र लोगों को साहाय्य तथा बस्त्रादि बाँटे गये। सरकार की ओर से एक नया शार्वजनिक धार्मिक शिक्षा-विभाग स्थापित कर दिया गया मठों को अनुदान तथा सरकारी सहायता दी गई और धर्म के प्रचार-वाहन का कार्य तीव्र गति से प्रारम्भ कर दिया गया। मन्दिरों तथा मठों की बीमारियों पर, बटुली पहाड़ियों की चोटियों तथा स्थलों पर, कस्बों तथा नगरों में शार्वजनिक बहल-गहल के स्थानों और भारत के कोने-कोने में निर्जन स्थानों तथा संसार के अन्य देशों तक में इस धर्म पराजय सम्राट् के नैतिक तथा धार्मिक भावों और धारणाओं को बुलवा कर सिद्ध कर दिया गया। सम्राट् के नियन्त्रण तथा संरक्षण में स्थान-स्थान पर समाधियों तथा स्तूपों का आयोजन किया गया जिनमें विद्वान् मनुष्यों तथा संन्यासियों ने धार्मिक समरस्यों पर परस्पर विचार-विमर्श किया वेणु में एक छोर से दूसरे छोर तक उत्त-महारजाधो तथा योग्य उपदेशकों के उपदेश आदि करवाये गये और इन्हीं बीड धर्म के अनेक साधारण-विचारों तथा शिक्षाओं के प्रचार और प्रत्येक जीवन-मात्र के प्रति प्रेम की भावना का उपदेश देने के लिए विदेशों में भी भेजा गया।

संपत्ति तथा उसके भाई महेश्वर की शिक्षा पर उनके पिता ने विशेष ध्यान रिया। इस समय राजकुमार की आयु २० वर्ष तथा राजकुमारी की आयु लगभग १८ वर्ष की थी। दोनों सुन्दर, सुश्रुभाषी बुद्धिमान तथा धारम्य स्वभाव के थे। विद्युषों के साथ उनके निकटतम सम्पर्क और उनके बातावरण की नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की उन दोनों के सुकुमार हृदयों पर सही छाप पड़ी जगमें बर्न के प्रचार कार्य के प्रति अपने पिता से कम जल्दाह नहीं था और उनको यह कार्य अपने पिता की भाँति ही शक्तिर थी था।

एक बार जब अशोक ने अपने पुत्र को अपने उत्तराधिकारी के रूप में राजसिंहासन पर आरुढ़ करना चाहा तो एक उपरोक्त उसके पास आया और बोला "धर्म के प्राप्त ही तो सन्त मित्र हैं जो अपनी सन्तानों को भी इस कार्य के लिए सदा समुच्च कर सकते हैं।" सम्राट् ने उसकी बात पर ध्यान देकर अपने पुत्र तथा पुत्री की ओर धारम्य प्रेममयी दृष्टि से देखते हुए उनसे पूछा "क्या तुम दोनों जीवन-पर्यन्त निर्यन्ता पवित्रता तथा संसार की सेवा में ही अपना जीवन बिताने के लिए उत्सह हो? सम्राट् के इस प्रश्न पर पतिव्रता तथा सुकुमार हृदय वाले महेश्वर तथा सचमिता की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। संव की सेवा करने की परम धर्मिणा उनके हृदय में पहले से ही संजगित हो रही थी किन्तु अब तक वे दोनों मही सोचा करते थे कि राजपरिवार में जन्म लेने के बाद उनके कर्तव्यों तथा उत्तराधिकारियों के कारण उन्हें संसार का परिचय कराने की अनुमति नहीं मिल सकेगी। पर सम्राट् के इस प्रश्न को सुनकर वे दोनों एक-ही स्वर में बोल उठे "यह हमारा परम सौभाग्य होना यदि हमें मरवान् बुद्ध हाथ बिये गये सार्वभौमिक प्रेम तथा धारम्य के सन्देश का प्रसार करने की सहाय्य अनुमति प्रदान की जाये। आप यदि हम लोगों को अपनी अनुमति देते हैं तो हम दोनों संघ में सम्मिश्रित होकर मानव जीवन के उत्कृष्ट तथा सत्य की प्राप्ति में अपना भी योगदान दे सकेंगे।"

अपने पुत्र तथा अपनी पुत्री के मूँह से इन श्राव्य मते शब्दों को सुनकर अशोक का हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठ। उसने संव को दूरस्थ यह सन्देश मित्रता रिया कि अशोक ने अपनी दोनों सन्तानों मरवान् बुद्ध (तथापठ) की सेवा में प्रणि कर दी है। यह समाचार विजली की तरह पाटलिपुत्र नगर तथा मगध साम्राज्य में सीप्रता के साथ फैल गया और लोगों ने इस महान् निर्यन्त और माता-पिता तथा उनकी सन्तानों की इस निस्वार्थ सेवा पठ्यगता की मूर्ति-मूर्ति प्रशंसा की।

महेश्वर की 'धर्मपाल' और सचमिता को 'आयुषानी' के नये नाम से विनूयित



किया गया। दोनों ने संघ की वीधा ग्रहण कर ली और भगवान् बुद्ध के पद-चिह्नों का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया। ३२ वर्ष की आयु पार कर लेने पर महेंद्र को सिंहल द्वीप राजशाही की भेजा गया। श्रीलंका का तात्कालिक सम्राट 'तिष्य' साम्यारिभक ज्ञान तथा तब के प्रकाश में प्रवीण महेंद्र के सुन्दर मुक्त का देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। श्रीलंका के सम्राट् ने अनन्य धार तथा भक्ति के साथ उसका स्वागत किया और उसके साथ राजकीय प्रतिधि-वैसा व्यवहार किया गया। महेंद्र ने अपने उपदेश आरम्भ किये और हजारों मर-नारियाँ उसके अनुयायी हो गये।

कुछ समय पश्चात् श्रीलंका की राजकुमारी अनुमा तथा उसकी १०० सहैलिया न अपने-अपने घरबार तथा परिवारों का परिस्वाम कर बीड़ भिक्षुणी संघ में धारण लेने का निश्चय किया। इस प्रकार बीड़ धर्म में परिवर्तित इन नयी भिक्षुणियों की शिक्षा तथा इनके प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त महिला उपदेशिका का खोजा जाना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। महेंद्र ने विचार किया कि इस अत्यन्त कठिन परिश्रमसाध्य कार्य के लिए उसकी बहुत बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होगी और इसलिये, उसने अपने पिता से यह सिलकर पूछा कि सिंहली महिलाओं में प्रचार-कार्य करने के लिए क्या वह संभिक्षा को सिंहली द्वीप भेज सकेगी? संभिक्षा ने जब अपने माई के इस अनुरोध की बात सुनी तो उसका अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वह तुरन्त अपने नये अत्यन्त स्थान के लिए चल पड़ी।

भारत के इतिहास में यह पहला ही प्रसन्न था जब एक महान् सम्राट् की पूर्ण रूप से प्रतिदान-प्राप्त तथा शिक्षित पुत्री एक अन्य देश की महिलाओं को धार्मिक तथा प्रेम के सम्बन्ध का पाठ पढ़ाने के उद्देश्य से विदेश गई। भारत के तात्कालीन लोगों ने इस समाचार का कितने उत्साह के साथ स्वागत किया होगा ध्यान हमारी सम्पत्ता से बहुत परे की बात है। यह कहा जाता है कि जब संभिक्षा सिंहल द्वीप पहुँची तो द्वीपवासी उसकी तेजस्वी पवित्रता उसके अत्यन्त स्थापपूर्व परिधान और उसकी भौष्ट्य तथा मस्तिष्क पर स्पष्ट रूप से विद्ययी पढ़ने वाली धार्मिक तथा धार्मिकता को देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित हुए और किसी चित्रित चित्र के मूर तथा कतिहीन पात्रों की भाँति स्तम्भित-से रह गये। उसने दीर्घ ही एक भिक्षुणी संघ की स्थापना की और भिक्षुणियों के प्रतिदान का भार अपने ऊपर ले लिया। माई तथा बहुत बहनों के प्रथम के परिणामस्वरूप सारे-के-सारे श्रीलंका द्वीप पर बीड़ धर्म का साम्राज्य हुआ। द्वीप के मध्य में अनुमापुर नामक एक महान् नगर बसाया गया। बड़े-बड़े स्तूपों तथा मीनों-सम्बन्धे परवर व

सभना क बान्धहरा से हम उमक वास्तविक विकास की स्थिति का दर्शन होता है । ध्यानावस्थित बुद्ध धनका उपपन्न होए बुद्ध धनका निर्वाण प्राप्त करते हुए बुद्ध की धनेको विद्यावकाय मूर्तियां गढ़ी गई थीर मे मूर्तियां होने मात्र भी बौद्ध काय की समृद्धि तथा विकासामुक्त स्थिति का स्मरण कराती है ।

'महावक्त्र' नामक एक बौद्ध स्तम्भ म लेखक कहता है 'सधमिमा म पुर्म ज्ञान प्राप्त कर लिया था । द्वीप के अपने निवास-काल में उसने धर्म के प्रचार के लिए कई प्रसंगीय कार्य किये । उसकी मृत्यु के प्रथम पर सिंहस के सम्राट् ने उसकी स्मृति के अनुकूल बहुत ही प्रभावपूर्ण रूप से उसका प्रतिम दाह-संस्कार किया ।

दा हकार बर्ष बीस बुक है किन्तु महोन्न तथा सधमिमा द्वारा प्रकथित प्रेम तथा सत्य क धीप मात्र भी थीसका द्वीप म प्रकथित हो रहे है ।

## २ जैन सन्त महिमाएँ

जैन सन्त की सन्त महिलाधो का उल्लेख उसक 'बेनी मुर्य पन्थों— इबताम्बर तथा विजम्बर पन्थों—के साहित्य म मिलता है । यद्यपि इनमें से कुछ कबल काम्यनिक है, तथापि वेप वास्तविक रूप से ऐतिहासिक पात्र है । ये सन्त महिलाएँ ऐतिहासिक हा धनका न हों किन्तु यह तो निश्चित ही है कि जैन सन्तलिखिता का चाहे वे लिख रहे हा धनका साकारण गृहस्थ कई पीढ़ियों तक इनसे प्रेरणा प्राप्त होती रही ।

जैन धर्म में भोष्ठनम धारर-मात्र माता-पिताधों को ही विपा जाता है और धीनियों ने विशेषकर २४ तीर्थकरों की माताधों के प्रति अधिकतम धापर-मात्र प्रवर्धित किया है । मातु गिरनार तथा धम्म स्थानों के जैन सन्तियों में ऐन मिमापनों की मात्र भी पूजा-उपासना की जाती है जिनमें से माताएं धपनी गोशों में धपने धपने सिद्धियों का लिए बँटी लितापी गई है ।

'महदेवी' प्रथम तीर्थकर धूपसनाय की माता थी । उसने जब यह सुना कि उसक पुत्र मे पुरीमताय नगर में 'केवल्य-ज्ञान' प्राप्त कर लिया है तो यह हाथो पर बड़कर धपन पूरे राजपरिवार क साथ उसको देखने गई । तीर्थकर की धाध्यात्मिक प्रतिमा से यह इतनी अधिक प्रभावित हुई कि यह एकदम ध्यानावस्थित की स्थिति को प्राप्त होकर समाधिस्थ हा गई ।

सन्तनाय का एक राजकुतारी थी उमीयनी तीर्थकर हूँ । इबताम्बर धीनियों का कहना है कि यह मिमिमा (धाय का विहार) के गामर कुम्मा की पुत्री थी और बहुत ही सुन्दर तथा विदुषी थी । कई राजा-महाराजाधों ने इनसे विवाह करना

बाह्य किन्तु उसके पिता ने उन्हें विवाह की स्वीकृति न दी। इस अन्वीकृति से वे भोग कूट हो गये और उन्होंने मिथिला पर भयंकर रूप से आक्रमण कर दिया। मन्वि के पिता जब पराजित ही होने वाला थे तो उसने अपने पिता से सभी राजाओं को उसके कमरे में बुलाये जाने की अनुमति देने की प्रार्थना की जिससे वह उन सबके पास चके। उन लोगों ने ज्यों ही कमरे में प्रवेश किया त्यों ही धरमन्व सुन्दर मन्वि को नहीं बड़े वैद्यकर वे भोग आश्चर्यचकित रह गये। कुछ ही बेर में लड़ी हुई आकृति जितनी ही सुन्दर एक दूसरी आकृति से बूधरे द्वार से कमरे में प्रवेश किया और उनको यह बता कर कि उन लोगों ने पहले जो-कुछ देखा था वह उसकी केवल एक स्वर्ण प्रतिमा ही थी उनका धम डूर कर दिया। उसने तब प्रतिमा के सिर का इच्छन खासा और उस प्रतिमा से दुर्गन्ध निकली। वह प्रतिमा खोदसी थी और उसमें कुछ लिखा तक दाख नस्तुएँ भर कर रखी हुई थी जो राजाओं के देखने के समय तक सङ्गाल चुकी थी। मन्वि ने तब उन राजाओं को बताया कि उसके बाह्य सीन्ध के पीछे भी बीसा ही सङ्ग-गमा तक है। उसने उनको यह भी बताया कि वह सांघारिक सुक-भास का परित्याग कर साधुनी बन जा रही थी। यह सुन कर राजा-महाराजा बहुत पछताये। उन्होंने भी यह अनुभव किया कि वास्तविक पान्थि पवित्र आचरण तथा पूजा-उपासना के परित्यागस्वरूप ही प्राप्त हो सकती है। इसलिये उन्होंने अपनी-अपना राज्य अपने-अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दिया और मन्वि के पद-चिह्नो का अनुसरण कर वे भोग भी साधु बन गये।

यह स्वामाविक ही था कि महिमाओं के प्रति धार के भाव और महावीर द्वारा अम्यास क्रिये मने तथा बताये गये त्यागपूर्ण जीवन के धारों से मुक्त जैन धर्म में कई मिश्रणियों का प्रादुर्भाव हो। जैन मिश्रणी-संघ बीड मिश्रणी-संघ से अधिक प्राचीन मान्ये जात्रा है। इनमें सभुस प्रसिद्ध जैन मिश्रणियों के विषय में नीचे बताया गया है —

(१) धार्य चन्दना' महावीर की समकालीन थी। यह धार्मिक विचारों वाली महिला थी। यह महावीर की सर्वप्रथम महिला शिष्या तथा उनका जैन मिश्रणी-संघ की धर्मजा बनी।

(२) 'जमनी' राजा सठानीक की बहू थी। यह महावीर के उपदेश सुना करती तथा उनके साथ जीवन तथा मरण की समस्यार्यों पर विचार-विमर्श किया करती थी। अन्त में इसका राजनी सुल-मुनिचार्यों से बुक राजमहम के जीवन का परित्याग कर मिश्रणी-संघ में गये थी।

(३) 'मुयाबती' राजा घतानीक की सुन्दर रानी थी। इसको इसके सतीत्व तथा बौद्ध के प्रतीक-स्वरूप ही प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसकी सुन्दरता की धोर धार्कषिष्ठ होकर उज्जयिनी के राजा 'प्रघोत' ने घतानीक के कौसाम्बी राज्य पर धार्कष्य कर दिया। घतानीक बीमार हो गया और अपनी युद्ध बस ही रहा था कि उसकी मृत्यु हो गई। मुयाबती ने अपनी घोषणा में बताया कि राजा भस्मस्व है। सेना का नेतृत्व इसने स्वयं अपने हाथ में ले लिया और सपु को लपेट कर ही इसने राजा की मृत्यु का समाचार दिया। सेना बक चुकी थी और सब बहू अनु की धपार शक्ति का और समाना करने में धतमर्ष थी इसलिए, मुयाबती ने अपनी धार्कष्य बयान की और बहू राजा के साथ इस सर्त पर बसने को ठीकार हो गई कि बहू उसने राज्य क धारा और चारदीवारी बना दे और उसके पञ्चसुवक पुत्र 'उदयन' को एक स्वतन्त्र पाषक के रूप में अपने राज सिंहासन पर धाडील कर दे। बहू यह सब कृष्ण हो गया तो यह महावीर की समा म गई और इसने प्रघोत की सहमति से बौद्ध भिक्षुनी बनने की अपनी इच्छा व्यक्त की। प्रघोत विस पर महावीर के उपदेशों का प्रभाव पड़ ही चुका था उस समय धन्व सहस्रों के साथ उसी समा में उपस्थित था। मृतकाल की अपनी मूर्तों के लिए प्रायश्चित करतै हुए उसने उत्तम जीवन बितान का निश्चय किया। उसने मुयाबती के भिक्षुनी बनने पर अपनी महमति भी तुण्ड दे दी यही लक्ष्मी इसने अपनी कृष्ण शक्तियों को भी बौद्ध भिक्षुनी संघ में सम्मिलित हो जाने की धनुमति दे दी और इन्हू स्वयं महावीर के हाथों ही पोषा लेने का तीनाम प्राप्त हुआ।

(४) 'स्फुस भद्र' (महावीर के समय १५ वर्ष बाद) की साथ बहूने मण तथा धम्य सभी बौद्ध भिक्षुनियों बन गईं।

(५) 'बाकिनी महत्तर' ईसा की सातवीं सताब्दी की एक धरन्त विसलक्ष तथा प्रतिभावान भिक्षुनी थी। बौद्ध धर्मधर्मों को प्रकाश में लाने का ध्येय धम्य भिक्षुनियों से धार्कष्य इसी को प्राप्त है। इसने हरिमहमूर्ति नामक विज्ञान शास्त्र को धारधार में इरुमा जमाने इसको धपना पुत्र मान लिया और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। हरिबद्ध एक बहुत बड़ा बौद्ध विज्ञान हुआ जिसने धार्धारधार धाय तथा धर्कषास्त्र पर कई धम्य प्राचीन धर्मों की टीकाएँ तथा कई कहानियाँ लिखीं। इसने बौद्ध-सम्प्रदाय का धुधार भी किया। इन धम्य से कि यह महान् विज्ञान धपने को बौद्ध 'मधुमी बाकिनी' का पुत्र कहाने में वर्ष का धनुमन करता था कोई भी समय सकता है कि इसमें किठनी धार्कष्य प्रतिभा होगी।

(६) 'पुना शास्त्री' एक बहुत-ही उच्च कोटि की तथा महान् विज्ञानधानी

मिथुनी की जिसका जन्म ईसा की ६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। ६०५ ई० में इन्होंने सिद्धिपि के अलौकारिक ग्रन्थ 'उपमितमथ प्रपञ्च-कथा' की पहली प्रतिनिधि रच्यार की।

(७) १११५ ई० में 'महानन्दायी महतरा' तथा 'गजिनी बीरमती' नामक वा मिथुनियों ने जिनमन्त्र के 'विशेष-प्रावस्यक-भाष्य' पर एक बहुत लम्बी टीका रच्यार करने में 'मस्यारि हिमचन्द्र' की काफी सहायता की।

(८) १२५ ई० में 'गुणसमृद्धि महतरा' में 'शैलमा-मुन्दरी चरित' धीपक प्राकृत ग्रन्थ की रच्यार की।

बौद्ध मिथुनी संघ के विपरीत जिसकी प्रथा ईसा की पाचवीं शताब्दी के बाद समाप्त हो गई, वही मिथुनी-संघ आज भी जीवित है। ये मिथुनियों पवित्र सेवस्त्री तथा त्यागी होती हैं। ये प्रत्येक जीव को कोई हानि न पहुँचाने के अपने धार्मिक नियम बहुत प्रचिद्ध हैं। उपवास रचना इनकी एक योग्यता मानी जाती है। उपवास की प्रथा जिसकी अधिक हो उसकी उतनी ही अधिक योग्यता समझी जाती है। बहुत-सी महिलाओं में विशेष कर कर्नाटक में 'सस्तल' के ब्रत (व्रत द्वारा मृत्यु) का पालन किया क्योंकि यह सबसे अधिक योग्यता का परिचामक समझा जाता है।

## धर्मा की एक पवित्र महिला—मि-काओ-बू

पन्द्रहवीं सताब्दी में रामम्न भूमि (सोघर बर्मा) एक ऐसे प्राणी के जीवन कास से बन्ध हो गयी जिसके जीवन तथा घासन से नाबी सम्पत्ति के लिए, विशेषकर बर्मा के स्त्री-समाज के लिए, एक ऐसी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त हुई जिसको घाटना विष्कृत प्रतम्नव ही है। यह प्राणी जितना ही दयाभु तथा सहृदय वा उतना ही यह धकितपानी तथा निर्भय भी था। यद्यपि यह ही एकमात्र ऐसी रानी थी जिसको घासन की बायडोर सीधे उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी और जिसने कभी इन पर घासन क्रिया तथापि उसको एक महान् घासक के रूप में उतना स्मरण नहीं किया जाता जितना कि एक घासक माता के रूप में। बर्मावासियों की दृष्टि में यह घास भी बीवित है तथा सदा उनके निकट ही रहती है, घोर संकट तथा कष्ट के समय में उसका प्रयोजन ही म्याग हो जाता है।

एक ऐसे प्राणी के विषय में सिखना जिसको घपने देण क नापों के हृदयों में इतना उष्ण स्थान प्राप्त है मेरे लिए बहुत कठिन है। मैं केवल इतना ही कर सकता हूँ कि मैं उसके जीवन की एक क्षण पर प्रकाश डालूँ। तनासरीम में मीन माया ने ताड़ के पत्तों पर लिखे हुए ऐतिहासिक घमिलेसों से उसके जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

७७१ के माघ मास के कृष्ण-पक्ष की १२वीं तिथि को बुधवार के दिन हुंसाबोई (पेयु) के सम्राट् 'राजाधिरज' तथा सम्राज्ञी 'शुद्धमाया' के घर एक पुत्री का जन्म हुआ था प्रिंजी पंथांग के अनुसार १३६३ की २१ जनवरी को पड़ती है।

धर्म की शशी द्वारा मि-काओ-बू का नाम पाकर घपने नाम की पूर्ण रूप से सार्थक करते हुए उसका पूर्ण विकास होता गया—'मि' धर्मत् मां 'काओ' धर्मत् पीथी तथा 'बू' धर्मत् सुन्दर। सुन्दर पीथी के रूप में उसे धर्म की कृपा शशी के जीवन के अन्तिम वर्षों को सुखमय बनाना था और धर्म की धर्मस्या में उसे स्वर्ग मा बनाना था जिसके हृदय में बड़े-मारे धर्मियों के लिए विद्या का स्थान था और 'म्याक इयू' नावक बड़े पगोडा में उसकी सन्तानों (हमारे) के लिए ऐसे उनक बनकीने उत्तराधिकार का उद्भव हमें धर्मना के लोक में लक्ष्मण

पहुँचाने के लिए प्रेरणा देना था कि हम नित्य-प्रति के अपने जीवन की छोटी-छोटी बातों से ऊपर उठें ।

वह जब साठ वर्ष की थी उसके पिता की बाबी द्यू रंजून ने निकटस्थ राज्य से उसे मिलने के लिए घायी । मोह-माया से निर्लिप्त दिखायी पड़ने वाली उसकी बाबी भी अपने भतीजे की छोटी-सी मुस्करावणी के प्रति धाकबिभक्त हुए बिना न रह सकी । उसने राजाधिराज से इस बच्ची को अपने साथ अपने राज्य में ले जान की अनुमति देने का अनुरोध किया जिससे वह इसकी धोर बैठ बर्म तथा संस्कृति के अनुसार अभिक-से-अधिक ध्यान देकर इसका पालन-पोषण कर सके । राजधिराज की सहमति से वह इसको अपने घर ले गयी जिससे वह अपने द्यू राज्य की बाबी उत्तराधिकारिणी के रूप में इसे पदासीन कर सके । द्यू राज्य में मि-काप्रो-नु का उसके गये घर में पालन-पोषण हुआ । वह अपनी किशोरावस्था में ही उस राज्य की संस्कृति के धाद्यों के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करने लगी तथा उसके समझे बिना उसकी धाद्यों के अनुरूप उपाका स्वतः बिकास होता गया । एक सुकुमार उपजाऊ भूमि में एक गए स्वस्थ बीज की भांति उसकी दाबी के नित्य-प्रति के जीवन की छाप उसके जीवन पर पड़ती रही और इस प्रकार इस बच्ची का वहाँ उत्तरोत्तर बिकास होता गया जिसकी बाद में एक अद्वितीय तथा पश्चिम पूरु के समान एक सर्व मृष-सम्पन्न समुद्र के रूप में संसार के सामने आना था ।

धीरे-धीरे समय बीतता गया और भ्रान्त प्रसन्नता के एक प्रेरणा-स्रोत के रूप में वह अपने पिता की बाबी के अन्तिम काल को सुखमय बनाती चली गई । मि-काप्रो-नु अपनी १२ वर्ष की ही थी कि उसकी बाबी द्यू का राज्य उसके लिए छोड़कर स्वर्ग सिंघार गयी । इसके तुरन्त बाद राजधिराज ने अपनी पुत्री को हंसावतीई राज्य बापस बुला लिया और जब वह २० वर्ष की हो गयी तो उसके पिता ने उसका बियाह मत्तमापति (मत्तवान) 'स्मिन सेतु' नामक एक सम्बन्धी के साथ कर दिया । मत्तमा राज्य में उसने एक सुवर्ती बन्धु के रूप में प्रवेश किया । पाँच वर्षों तक वह वहाँ सुखमय बिबाहित जीवन बिताती रही और इस अवधि में उसने तीन सन्तानों को जन्म दिया । दुर्दिनों के घाने से पूर्व तक उसका इस प्रकार समय बीतता गया । २५ वर्ष की आयु में मि-काप्रो-नु अपनी तीन सन्तानों के साथ बिबाहा हो गयी । दुत की इस बही में उसका ध्यान तथा मन द्यू की धोर गया और वह वहाँ बापस घा गयी । जहाँ वह अपनी मन्तानों के साथ कुछ समय तक रही । उसकी देवभान का कार्य उसका छोटा भाई 'बम्प राम' करता रहा ।

द्यू के बापस घान के समय तक उसके पिता धनी भी हंसावतीई पर राज्य कर

रहे थे किन्तु कुछ ही समय बाद एक घाव के विपाक हो जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी थी और उसका बड़ा भाई 'बन्धु किम' गद्दी पर बैठा। राजबिराज की मृत्यु के उपरान्त उसके राज्य में शान्ति कायम न रह सकी इसलिए अपने बड़े भाई के सरकार में रहने के लिए वह अपनी सन्तानों तथा अपने छोटे भाई के साथ हुंसाबतोई चली गयी। उस समय हुंसाबतोई पर 'बन्धु किम' राज्य कर रहा था।

हुंसाबतोई से अस्तर बह पचास मील दूर स्थित 'क्याक द्गु' की तीर्थयात्रा पर चली जाना करती थी।

घावा का राजा 'तिहालु' चार सेनापतियों की अधीनता में गुप्त रूप से सेना ले जाने के लिए पहले से ही चारों बम रखा था। इन सेनापतियों को हुंसाबतोई तथा द्गु के बीच एक ऐसे निर्जन तथा सुगन्धम स्थान पर पड़ाव आसने का आदेश दिया गया जहाँ वे मि-कापो-बु तथा उसके साथ जाने वाले अन्य सभी व्यक्तियों के उधर से निकलने पर उन सब को पकड़ लें और उन्हें धाबा से धार्यें।

भिक्षुका डोकर धारण से बीरे-बीरे चरम रहते हुए अपनी मार्ग तय करने में इस बन्धु प्रदेश में होकर गुजरते समय अपने प्राप्त-यात्र से गुप्त रूप से निकलन वाले लोगों को घाटे-जाते देल उसको कुछ भी धारण्य न हुआ। बोड़ी ही रूप में बोड़ों की हिमझिनाहट तथा झाषी के मारी पारों से भूमि के रीसे जाने के पश्य उसे मुनाई पड़े और तब उसे बहुत अधिक चिन्मय होने लगा। अपनी स्थिति को समझने-बुझने का उसे समय भी न मिस पाया था कि उसने अपने प्रापको तथा अपने सभी साथियों को सेना के बेरे में बिग हुआ पामा और इस समय उनका बच निकलना बिल्कुल ही सम्भव रह गया था। वह तथा उसके सभी साथी उतर की दिशा में भागा राज्य की धोर चलने के लिए बाध्य हो गये।

एक बर्मी दन्तकथा के अनुसार इस प्रकार वह राजा तिहालु के राज्य में धाबा लगी गयी। राजबिराज की मृत्यु के बाद दोनों भाइयों में एक विवाद उभड़ा हुआ। तिहालु भावा और उसने मित्रतापूर्वक यह विवाद निपटा दिया। इस विवाद के बदले में इसक दोनों भाइयों ने तिहालु को प्रति अपनी धारण्य प्रकट करते हुए उससे उद्धार होने के लिए मि-कापो-बु का तिहालु के साम विवाह कर दिया।

२१ वर्ष की आयु में मि-कापो-बु औपचारिक रूप से तिहालु की प्रमुख रानी बनी। ऐसी कठिन तथा अटिम परिस्थितियों में युक्त बालाचरण में उसे भी अपनी ही कठिनाई हुई बिगनी कि अन्य किसी भी व्यक्ति को होती। मौमाम्यकत उसकी प्रकृति तथा बौद्धिक कार्यों की धोर ही अधिक रहती थी। इस प्रकार अपने जाने



को अध्ययन-अध्यापन में व्यस्त किये रखा । अपने नित्य प्रति के जीवन में वह राजमहल की स्त्रियों के अध्यापन तथा मार्गदर्शन में लगी रही जिसके कारण इस राज्य में उसके पाँच बरों के आवास काल में संस्कृति प्रायः काफ़ी विकास हुआ ।

भावा में उसके पहुँचने के बाद एक-दो बरों में ही तिहानु की एक धर्म रानी न राजा के एक दास के साथ मिसकर राजा की उस समय हत्या कर डालने का पद्वयत्न रखा जिस समय वह भीम के सुदाई-कार्य के निरीक्षण में व्यस्त था । उसकी मृत्यु पर उसका सबसे बड़ा पुत्र गही पर बैठे किन्तु उसी रानी न उमक भाजन में बिप मिसबाकर उसे भी मौत के घाट उतार दिया । इस प्रकार उस रानी का अपने ही पुत्र को गही पर बैठाने की याचना को सफल होते देख बहुत ही घातक हुआ किन्तु यह घमागा राजा बहुत धाँधे ही समय घामन कर सका क्योंकि मोहम्मदीय के राज्यपाल ने भीम ही भावा पर चढ़ाई कर दी थीर लक्ष्मणक राजा को हराकर उससे भावा ली गयी थीन सी । इसी समय १४ वर्ष की आयु में मि-काघा-बको बचकर रामय्य निकल भागने का एक मुषकमर हाव मया ।

यद्यपि उसने अपने-आपको व्यस्त रचना ही श्वेत्स्फर समझा तथापि उसे ऐसा महा मया कि वह बहा अधिक समय तक रह सकगी क्योंकि उसका ध्यान मया दक्षिण की ओर अपने भर तथा सन्तानों की ओर ही लगा रहता था । उसकी बासिया उसको बहुधा दक्षिण की ओर स्थित सिङ्गी के पास लड़ी तथा सामने की ओर दूर तक देखती हुई ही पाती । आकाश में मंडराते हुए बने बादलों को देख कर वह मान मान से उनसे उसके भाई के पास सन्देश ले जाने का विचार प्रकट करती कि वे जाकर उसके भाई से कह दें कि वह बर ही वापस घाना चाहती है ।

प्रकरमात् उसके अपने प्रदस की ओर के दो बह्यचारी घूमते-घामते भावा घामे माना ये उसकी प्रार्थनाया के फलस्वरूप ही घाय हो । राजा की घमूमति से उसन इन दोना बह्यचारियों का भोजन के लिए घामप्रित किया । इसत जब उसने यह सुना कि उसके बड़े भाई की मृत्यु हो चुकी है थीर उसके स्थान पर छोटा भाई ही राज्य कर रहा है तो उसने इनको घानी हाविक इच्छा कह सुमापी कि वह घर वापस जाना चाहती है थीर इन दोना बह्यचारियों ने ही उनसे माग निकलने की योजना बनायी ।

इनाबनोई पहुँचने पर उसके भाई न उगाहा बड़े प्रेम से स्वागत किया थीर उगाहा उसकी तीना मलाना के साथ अपने राजमहल के निकल ही एक घर में टहरा दिया जहाँ वह घान्तिपूर्वक कई बरों तक रही थीर उमही मलानों का

अब उसी प्रकार पासन-पोपन होने बना जिस प्रकार उसका अपना पासन-पोपन उसकी बूढ़ा दादी के महल में हुआ था। यहाँ वह काफी सन्धे समय तक सानि पूर्व बर्बत व्यतीत करती रही। अपनी सम्पत्तियों के पासन-पोपन के प्रतिरिक्त अपना बचा हुआ समय वह भिक्षुओं निर्धनों तथा मनाब व्यक्तियों की सेवा में सपानी जिसके लिए वह सदा में सामावित रहती आई थी। केवल इतना ही नहीं जब उसके भाई की मृत्यु हुआ वही घोर उसका कोई उत्तराधिकारी न रहा तो १० वर्ष की आयु में अपने इंसाबतोंई का राज-काज स्वयं सम्हाला। लोगों को उस पर घट्ट घड़ा तथा पुरा विश्वास था।

उसका एक पुत्र छोटी आयु में ही मर गया था। उसकी बड़ी पुत्री का विवाह एक राजकुमार के साथ और छोटी पुत्री का विवाह 'धम्मसेटी' नामक एक विद्वान व्यक्ति के साथ कर दिया गया। अपने सासनकास में उसे धम्मसेटी पर पुरा तथा घट्ट विश्वास बना रहा जो उसकी राजकीय मामलों की व्यवस्था आदि में बहुत परामर्श तथा सहायता किया करता था।

उसने अपनी बड़ी पुत्री तथा जामाता राजकुमार को फ्लेम (बर्मी) भेजा जहाँ उन्हें नगर की रक्षा के लिए किलों आदि का निर्माण करने तथा उत्तर से आक्रमण होने की स्थिति में सेना में सक्रिय होकर तैयार रहने का आदेश दिया गया। रानी से समय-समय प्रकार की बुकिबाएँ पाकर राजकुमार हुनाबतोंई पर सासन करने की तैयारी करने लगा क्योंकि वहाँ उसे धम्मसेटी की बकूती हुई सक्रिय भव्य हो उठी थी। यह समाचार सुन न रह सका और वि-कापो-बु में इन बीजता की आरम्भ में ही कुशल देने की व्यवस्था की। रानी ने अपनी पुत्री को बरबत बुसा लिया और उमर (पुत्री के) पुरुषने पर उसे (पुत्री को) बन्दी बना लिया गया। रानी की सेना फ्लेम की घोर बल बड़ी और बड़ा एक भीषण इन्ड मुह में राजकुमार मार डाला गया। अपने पति की मृत्यु का समाचार सुन कर राजकुमारी के बुक का टिकाना न रहा। उसने स्वाक गुण जाने की धनुमति माँगी और वहाँ पुरुषने पर अपने अपने को घटका कर बनेत बन्ध बारन लिये और घत लेकर वह एक भिक्षुणी की भाँति चले लगी।

एक दिन जब वि-कापो-बु पासकी में बैठी कही जा रही थी तो अन्टी रिमा से एक बूढ़ पुरुष उसकी ओर आता हुआ दिनायी दिया। उसकी पासकी होने बाना में उस बूढ़ पुरुष को दूट जाने के लिए कहा किन्तु वह न हटने के लिए कटिबद्ध मकता था। और वह निस्संकोच भाव से सीधा उसकी घोर बड़ घासा तथा उसकी घोर देवना हुआ बोना 'मोह, यह बड़ी बूजा रानी है। इन राज्यों

के साथ ही वह व्यक्ति तुरन्त घन्टघन्टा हो गया। कोई भी यह न जान सका कि वह व्यक्ति किस विधा में गया। रानी के घन्टघन्टा में अनुभव हुआ कि कोई वधाएँ 'दिवता' उसके लिए मनुष्य का रूप धारण कर इसीलिए भागा था कि उसको मित्रतापूर्ण ढंग से वह स्मरण करा दिया जाये कि वह पुरुष नृत्ता ही यही है और उसे संसार तथा बर-बार का परिव्याप कर अपना जीवन धर-भजन-भाव में ही बिताना चाहिए।

कुछ वर्षों और बीत जाने के बाद उसने अपने मन्त्रियां राजसिंहासन से धरकाए गइए करने तथा धम्मसेटी को अपना उत्तराधिकारी बनाने को वात पठायी। इस प्रकार धम्मसेटी (गामाधिपति) हुंसाबठोई का राजा बना। उसका वातावरण अपने सब से मन्त्री धरवि और शक्ति तथा समृद्धि के लिए धरपत्त प्रसिद्ध है। उसने स्वयं तथा शक्ति के साथ मन्त्री प्रकार धामन किया और धर्मा के राजाओं की भाषाओं में उसका नाम सब से पहले धाता है। जो एक बहुत ही योग्य धासक था। उसने ऐसे मन्त्री विधानों को रूढ़ कर दिया जो समयानुक्रम गृहीत व तथा मन्त्री परिस्थिति को देखते हुए धर्य कई नये विधान बनाये। ऐसे किसी भी धामि-पूर्व तथा समृद्धि धामन में धर्म तथा धर्मा सब धरते-धरते हैं। धम्मसेटी के धामन-धामन में ऐसे बहुत से धर्यकों तथा धरना धरि का निर्माण किया गया जो धरम्य धामन में धात भी विद्यमान है तथा उस समय का धरम्य धरने हैं।

धरु के लिए धर्यधाम धरने समय उसने इन धरशा में धरस विधा सी 'धरना जीवन तथा धरने धर्यों के लिए धरने के धरयमा का ही धरना धरधार धरते हुए धरया तथा धर्याधरिधरता के धरस धरतन धरिण। धरगा कि मन्त्री धरधरको के लिए धरनाया गया है। निर्धान के धरार धरधरके लिए स्वयं धरधन धरध ही धरुन धरधये। क्या इन धरधो में धरने जीवन के धरिधरन धरय का धरध गृही होता? क्या वह धरय गृही है कि धर्याधरिधरता धरधरिधर' तथा 'धरिधरना' के धरसधर्य ही धरधर होनी है? धरधरिधर का धरधन धरने धर धरिधर को धरधर धरध धरिधर धरन तथा धर्याधरिधर का गृही धरता धरना धरमी धरिधर धरधर होनी है। इसधरिधर धरधने धर 'धर्याध' धरधर धरता है। धरर 'धरने' धरिधरना' धरस धर धरधरिधर है? धरध में 'धर' धरिधरना धरध धरधा धरनी ही धरध में धरिधरना धरधरी। धर' को धरिधर धरिधर का धरधन धर धरधा धरिधर है कि धरध धरधर की धरध धरध धर'। इसधरिधर 'धरधरिधर' धर धरधर तथा धरिधर 'धर्याध' का धरध धरना है तथा 'धरिधरना' के धरध धरधर में धरध 'धर्याध' को धरधरिधर धरने के धरधर तथा धरध का। धरध धरधर धर धरिधर मधर धरना ग ही 'धर्याधरिधर' का धरध धरना है। धरर धरध में

'रवा' जैसे उत्पन्न हो सकती है। यह हम में उसी रूप में प्रकट होती है—कम धनवा अधिक—बिना रूप में हम उसके साथ धनवा तादात्म्य स्थापित करते हैं। अब हमें यह देख लेना चाहिए कि धासक के लिए धर्म के नियम क्या हैं। उसके राग्मा-बिकार में क्षोभण तथा धतिभ्रमण का दमन करना और घोषित तथा सत्ताये हुए व्यक्तियों की रक्षा करना घाता है। बुने भये धासक के रूप में उसके अधिकारों के साथ-साथ उसके बाधित भी उठने ही हो जाते हैं और इसके लिए उसको धनक परिचय तथा सामना करनी होती है।

मि-काधो-बु राज्य का धासन कार्य धम्मसेटी के हाथ में छोड़ रखी थी क्योंकि वह अनुभव कर चुकी थी कि जब उसे इसमें नहीं पड़ना चाहिए। राज्य का भार सम्हालने के बाद उस पर धनेकों उत्तरदायित्व तो आ ही गये पर इतना ही नहीं उसे तो धनी बहुत से कार्य करने थे। उत्तरदायित्व तो केवल निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के साधन-साध होते हैं, न कि स्वयं लक्ष्य। क्या वह निर्वास की प्राप्ति के लिए साधनके रूप में उत्तरदायित्वों (कार्यों)के प्राप्त के महत्त्व पर बल नहीं देखी थी ?

सोप उसके चम जाने पर बहुत दुःखी वे धीर वह भी एक ऐसे घभाव के लिए जिसकी पुति धम्मभ्रम थी। साय तपर शोकमण्य था। वह अपने धान के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया पर भी ध्यान दिये बिना न रह सकी धीर इसलिए उसने तपर में विरोध पिटका दिया कि जो चाहे उसके साथ चम सकता है। वह जैसे ही चलने को हुई तो ठीक-बीबाई बनता भी उसके साथ चलने को तैयार हो गयी। यह एक बड़ा उत्तरदायित्व था किन्तु उसने किसी का रोका नहीं। कन्धम्य स्वात पर पहुंचने पर उसने सब को धायम दिया धीर सब-के-सब बहा बस गए।

तब उसके सभामय जीवन का मूलपात्र हुआ—सेवाकार्य तथा प्रापना के पूरे दक्ष बर्ष का जीवन। उसने पगोडा के निर्माण-कार्य का बड़े ध्यान से स्वयं निरीक्षण किया और इसके निर्माण में उसने अपने सारे बिकारों तथा भावनाओं का ठीक उसी प्रकार से मूर्त रूप दिया जिस प्रकार एक बिकार अपनी भावनाओं का अपने चित्त में उड़सता है। इस समय तक यह पगोडा बहुत छोटा तथा अधूर्ण था किन्तु अब उसने अपना साथ समय तथा अपने समस्त साधन इस पगोडा को पूर्ण रूप से सवारने तथा इस पूरा करने में लगा दिये। उसने उस समय सम्भवतः धापर बद्ध न सोचा हो किन्तु धाब हमें तो यही लगता है कि उसका ध्यान प्रार्थना तथा उपस्रना की धीर मोह बल में 'दपठा' पर नरररर यही रहू होना कि भावी समृद्धियों के लिये जमवान् के स्मारक का निर्माण तथा स्थापत्यकार बनने का भेय धरती का प्राप्त है।

प्राज्ञ के 'क्याक दुगु' की प्रत्येक रेखा और भाकृति तथा उसकी रचना की भव्यता-मुन्दरता में हमें 'मि-कामो-नु' की आत्मा के ही वसन होते हैं जिस वर्धन से हमें उसके अरित्र-ब्रह्म तथा आरित्रिक सौन्दर्य का पूर्ण आभास मिलता है और हमारे सामने यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य केवल शक्ति में ही परिमणित होता है ।

७५ वर्ष की आयु में अपने सखित कार्य को पूरा कर और इस कार्य के द्वारा मगवान् की उपासना करके वह अपने पाश्चिमी शरीर को छोड़ कर अन्त में 'उसमें' ही विभिन हो गयी । अपने अन्तिम क्षणों में उसने अपने धाम-मात बड़े लोपों से अपनी धम्या उम किड़की के पास से जाने को कहा जहा स वह 'उसकी' धमाधि को देखती रह सके और 'उसकी' ओर अपना सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करते हुए वह अन्त में 'उसमें' ही पहुँचकर विभिन हो गयी । इस प्रकार एक ऐसे जीवन का अन्त हो गया जो प्रारम्भ में ता ध्यानस्वपूर्ण तथा चिन्ताओं से मुक्त था किन्तु बाद को विभिन्न परीक्षाओं तथा संकटा में से होकर गुजर चुका था । ऐसा प्रत्येक मानव-मात्र के लिए स्वाभाविक होता है और अन्त में एक ऐसी स्थिति का पहुँच गया जो दूसरों के प्रति प्रेम करने वाला के लिए प्राचीर्वाद स्वल्प है ।

यद्यपि पाँच सताब्दियाँ बीत चुकी हैं तथापि उसका 'मि-कामो-नु' नाम जो सभी लोपों में 'चिन धा नु' के नाम से प्रचलित है प्राज्ञ भी जीवित है और यह लोपों का धमी-मी बहुत प्रिय है । सम्पूर्ण बर्मा देश में यह नाम प्रेम धादर तथा शक्ति के साथ लिया जाता है । उसको बन्दी बनाये जान जाने स्थान पर जाकर लोग प्राज्ञ भी उसके जीवन के अनेक पुष्प-असंगों का स्मरण कर उनका अभिनय करते हैं और शक्ति की भावनाओं में विभोर हो उठते हैं ।

उसके सम्पूर्ण जीवन पर एक दृष्टि बीडाले हुए हम यही अनुभव करते हैं कि प्राज्ञ में उसको बसपूर्वक से जाया जाना तथा बन्दी बनाया जाना और उसके साथ-साथ उसके अत्यन्त कष्टपूर्ण साथ उसके जीवन में जो ही स्पर्श मही गये बस्तु उनका भी अपना महत्व है । यदि उसका जीवन केवल एक साधारण सुगमय दाम्पत्य जीवन ही होना था मैं कह सकता हूँ कि वह एक साधारण स्त्री की भाँति ही मर गयी होती । किन्तु जैसा कि उसके जीवन में घटा उसका जीवन में धाये उतार-चढ़ावों तथा इसका साथ-साथ अपने दुःख-दर्द में उसने सामने जीवन के मरग साथ को ग्राह्य कर रख दिया और विषम परिस्थितियों का अत्यन्त यथासूत्र ढंग से सामना करने में उसे सेवा तथा पराधर के द्वारा अपनी कठिनायियों की ओर से धाना ध्यान दूसरी ओर मोड़ देना तथा निरिधन





भाग ३

ईसाई धर्म की सन्त महिलाएँ



## ईसाई या मसीही धर्म में नारी का स्थान

परिषयात्मक

पादमागोरस का यह मत था कि 'स्त्रिया सामुदायिक रूप से भक्ति की धीर स्वभावतः अधिक धाड़पट रहती है। उनके विषय में यह कहा जा सकता है कि उनमें अपने नैतिक सिद्धांतों का तत्त्व बमिस्टोबिसया नामक एक इस्किर (इस्किर की धाकासबाधी से सम्बन्धित) पुनारिण से बहुत क्रिया था। तब यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मानव की धार्मिक गति विधियों में नारी का स्थान पारंपार्य जगत में बहुत पहले मान्यता प्राप्त कर चुका था। पादमागोरस स पाय इन उत्तराधिकार को ही अफलातून (प्लेटो) अपनी पुस्तक 'परिसबाद' (सिम्योजियम) में डिप्लोमिया धीर मुकराण (साफेनीज) के संवाद के रूप में बनीमन करणा इपिगोचर हाता है। बाद में मसीही धर्म के धाममन के साथ ही गिरजो के धारमिक पादरियां न ग्रीक धार्मिक विचार धारा में प्लेटों की विचार-धारा को ही सैद्धांतिक बाह्य का धारार बनाया—नए धारक के लिए पुराने पाठ लिये—जो कि नये धर्म को ज्ञानात्मक रूप देने की प्रक्रिया में आवश्यक गुणा को तनिक हाजि पहुंचाये नही, बही सरसता से स्वीकार किया जा सकता है।

इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि मसीही धर्म अपनी धार्मिक अभिव्यक्ति के लिए ग्रीक पद्धति का श्रेणी है। प्रस्तुत प्रश्न में सम्बन्धित बातों की गहराई का जहां तक प्रश्न है वह अनुमतीय है। इनके विपरीत उनमें नारी के लिए गोरबपूर्ण स्थान पूर-निदिषण है। यदि अन्य किसी चीज से नहीं तो कम से कम संसार में उनके प्रयोग की धारमिक परिस्थिति इन तथ्य को मुरार करती है कि उनके ईशिक मर्यापट को धीरे धारण के लिए नारी को मुक्त स्वीकृति की धारम्यकरता पनी थी। उनकी यह बात भी बेजोड है कि वह कीमतीकरणा को सम्मान देनी गरी है धीर उक्त नारी कुमारी ही थी। इन प्रकार जब इन बातों के लिए तथा दूसरी उक्त काटि की वपार्थ धीर धार्य मात्रों के लिए धार्मिक अभिव्यक्ति हुई जाती है तब धारमियो तक धीर प्लेटोनिन परम्पराओं में

इसकी रूढ़ि बाकी मानव प्रजा के लिए यह आभार एक कुस्त बस्त्राभरण के हेतु हुआ पर्याय बीसा कि माजरेय की क्रुमारिका ने अपने क्रौमार्य उरव को अपने ईबिक प्रवर्तक के उपयुक्त शारीरिक धारण्य के रूप में प्रस्तुत किया। इसके प्रतिरिक्त धर्म ग्रंथ इस बात की सखी प्रस्तुत करते हैं कि धनेक स्त्रियों ने 'उर' के पारिष जीवन और कामों के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

इसलिए इस प्रकार का धारण्य होने के उपरान्त यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि ईसाई गिरजों का इतिहास पवित्र स्त्रियों के तेजोमय स्वरूप से शीघ्र होना चाहिए इनमें भी बहुमत क्रौमार्य स्थिति की उत्तम धारणा से धार्मिक होना। इसमें धारण्य की कोई बात नहीं कि गिरजे सदा की भाँति इन तेजपुत्र स्त्रियों को भय और प्रतिष्ठा निरन्तरगति से द रहे हैं और उनको निर्वाचि रूप से अपने बन्धों के लिए प्यार और अनुकरण का ढंका धारण्य मानते हैं।

'उर' की धरणी सृष्टि के मुक्त और स्वतन्त्र प्राणी के लिए—प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए—वैदिक सम्मान की स्वीकृति से ही भय कराने के इस एककी और विधेय मुष का धार्मिक स्वत ही हुआ है। यह वैदिक सम्मान भी ऐसा कि जो प्राणि-सास्त्र के नियमों और धारण्यकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उन समस्त बंधनों और बन्धनों को कुचल सके जिन्हें हम मानव जीवन का अनुभव समझते हैं। दूसरे शब्दों में यह पूर्वत यौन से धसम्बद्ध है। यदि केवल उपर्युक्त सिद्धि प्राथमिक परिस्थितियों से देखा जाय तो प्रतीत होया कि यह शोनों सिगों की अपेक्षा स्त्री-सिग से धकिक पक्षपात-युक्त है। क्योंकि मानव बनने की शर्त और मानव रूप में प्रविष्ट होने के उत्तमक काय के लिए पहले स्त्री को बुना पर्याय जिसके द्वारा ईश्वर अनुप्य रूप में परिवर्तित हुआ।

मसीही गिरजों द्वारा शीघ्र ही उन इच्छुक महिलाओं के नाम के लिए ऐसी व्यवस्था का बनाया जाना नितास्त स्वाभाविक था जिससे कि वे अपने स्वीकृत धर्मसिद्ध धर्माचार का पूरा साम लेते हुए विधेय संकल्प द्वारा स्वयं को धार्मिक जीवन के गहरे धारण्य में व्यस्त रज सकें। तबर्न महिलाओं के प्रथम शीघ्रिय विहारों की स्थापना हुई जो सामयिक धार्मिक व्यवस्था के अनुप्य नहीं था जबकि धर्म-बिधवासी धर्माच लोगों के समान ही शीघ्रिय महिला वर्ग के बड़े भाग के लिए सृष्टि का सामान्य स्वीकृत मार्ग—विवाह और मातृत्व का प्राकृतिक मार्ग—ही कायम रहा तब भी निरन्तर बढ़ने वाली संख्या (जो यद्यपि धारण्य में ही रही) ऐसी स्त्रियों की थी जो दूसरे मार्ग के प्रति धारण्य थीं। ऐसे लोगों के लिए सर्वप्रथम गिरजों ने बहूत पहले (हिंसा और उत्पीडित के उन दिनों में)

अपने कामार्थ की उत्पत्ति करने की विशेष प्रतिज्ञा प्रतिष्ठापित की। यह प्रतिज्ञा विवाह-धर्म्य धाम की सङ्कियां अपने परिवार के मध्य रहते हुए भेटी थी। बाद में जबकि उत्पीड़न समाप्त हुए और वर्ष को सुनी मान्यता प्राप्त हो गई तब धार्मिक दूरस्थानी उपाय संभव हुए? पुस्तकों की तरह महिलाओं के लिए भी धार्मिक प्रतिष्ठाओं के निर्माण के लिए उपर्युक्त पद्धति को नियंत्रण कर दिया गया। इन प्रतिष्ठाओं को ऐसा रूप दिया गया जिससे कि वह एकान्त और शांत परिस्थिति प्रदान कर सकें जिनमें धार्मिक जीवन का पूज्यता के साथ प्राप्त हो सके।

यह बात निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सनी कि कहाँ कब और किसके द्वारा सर्व प्रथम ऐसे प्रतिष्ठान का निर्माण किया गया। इस सम्बन्ध में मठ वैमिन्य है—(घ) लगभग २७१ ए० डी में सेंट एंटीनी की संस्थापित एक सिस्टर (जिसका नाम ज्ञात नहीं है) द्वारा मध्य मिर में (ब) सेंट सिगनेटिका द्वारा चौथी शताब्दी के मध्य एंसेब्रैडिया में (घ) सेंट मैरिया द्वारा ३७६ के पूर्व एनेसी (अनाटोलिया) में (द) सेंट जेरोम के धार्मिक मित्रों सेंट पीसा और इस्टोपियम द्वारा ३८८-९० के लगभग वैभवसह में।

पहले प्रतिष्ठान के समय से जब के बिकास के साथ ही महिलाओं के लिए विहारों की संस्था निरन्तर बढ़ती जा रही है। ये प्रतिष्ठान पुस्तकों के उद्देश्य-सिद्धि के लिए बनाए गए विहारों के समान स्तर के थे और समान गति से बढ़ रहे हैं। बिसिष्ट प्रतिष्ठाओं को धार्मिक मान्यता प्रदान करने की प्रतिज्ञाएँ, मृत्यु से पहले और धार्मिक-कर्मकात्मक प्रवेश तथा सामान्य अभिषेक वहाँ पर कभी-कभी प्राप्त की गई धार्मिक श्रेष्ठता के सुख प्रमाण हैं। उन पवित्र स्त्रीष्टी महिलाओं के परिचित जिनका कि धाम के पुत्रों में उत्सेह सम्भव हो सका है कुछ प्रसिद्ध प्रतिष्ठानों के नामों का (सेंट टेरेसा की छोड़ कर) इस प्रकार उत्सेह किया जा सकता है। अथी शताब्दी में पापटियर्स की सेंट रेबेका सातवीं शताब्दी में सेंट बरबरे सेंट एब्रुडवा सेंट ऐसबर्ने सेंट हिस्बा बारहवीं शताब्दी में जिन की सेंट हिस्बगार्ड, तेरहवीं शताब्दी में सेंट क्लारे (सेंट फ्रांसिस की सहयोगिन) चौदहवीं शताब्दी में स्वीडन की सेंट क्रिस्टिन् बन्धुकी शताब्दी में रोम की सेंट फ्रांसिस सेंट क्लारेट, ब्रिटेन की सेंट फ्रांसिस बोमोना की सेंट कैथीन सत्रहवीं शताब्दी में सेंट मैरी मेगडालन डी पाडी सेंट जीन डी काइज डी शैप्टान और सेंट मैरी डी इन्कार्गन (सैडम एकी) इनमें स अनेक ने (उदाहरणार्थ सेंट क्लारेट) बोमोना की सेंट कैथीन और अन्तिम तीन ने उद्देश्यकारी धार्मिकता के उत्कृष्ट स्तर को प्राप्त कर लिया था।

इसके प्रतिरिक्त पृथक्पृथ सोचों में से बहुत प्रख्यात बोहे य जागों का उत्पन्न किया जा सकता है उदाहरणार्थ—पेरिस की सेंट जेनेवी जेमोषा की सेंट कैथीन सीमा की सेंट रोज धीर भार्थर्यचकित कर देने वाली सेंट जीन डी फ्रांक में जिसमें कौमार्यवस्था का तेज इस मतत्व के साथ बीज्य हुआ कि वह 'दि देव' (तस्त्री) के नाम से प्रसिद्ध थी।

धर्म ही इसका यह धर्म नहीं कि पूर्वत एकाकी जीवन में धर्मवा विहारों के संकलित जीवन में स्त्रियों ने पवित्रता प्राप्त की है। मसीही धर्म ने व्यक्तिगत मात्मा के अधिकारों के निर्वाह निर्वाह में विवाह की सांस्कारिता की घोषणा कर एक अधिक सांवेधिक और अनुकरणीय मार्ग प्रदान किया जिस पर चलकर भी उसी सत्य की प्राप्ति की जा सकती थी। विवाह में जिसे सांस्कारिक रूप में स्वीकार किया गया स्त्री सम्पत्ति सावक धर्मवा धर्मने पति का धर्म भी नहीं समझी बनी। इस स्थिति में स्वतन्त्र भाषीधार के रूप में प्रवेश करते समय यह सत्य है कि यह कुछ वास्तविक उदरधारित बहूण करती है, जिनके विस्तार और भार का निश्चित ज्ञान वह प्रारम्भ में नहीं कर पाती। विवाह की स्थिति में उसकी समस्याएं, पूर्वता को प्राप्त करने की मात्मा की सकृसाहट के रूप में धर्मनी उस बहूण की धर्मवा कठिन है जो पवित्र कौमार्य जीवन में प्रविष्ट हुई है। तिस पर भी प्रस्तात उदाहरणों में धर्म का इतिवृत्त काशी व्यापक है। विवाहित स्थिति की प्रसिद्ध महिमा सन्तों में से नाम उत्पन्ननीय है सेंट मेथिलियस एंग्रेस धॉक जर्मनी सेंट माथेट, स्वीन धॉक स्काटलैंड सेंट जॉर्जे धॉक कन्टाइन फ्रांस की रानी (सेंट लुई की माता), पूर्व्यास की रानी सेंट एलिजाबेथ (या इजाबेथ) हंगरी की रानी सेंट एलिजाबेथ, पोर्तूग की सेंट हेडविग (या जदविग) धीर फ्रान्स-मरिया टैनी। सेंट जीन डी बार्णान फ्रान्सामु में ही विधवा होने से पूर्व एक विधवागनीय पत्नी धीर माता थीं। इसी प्रकार सेंट बार्ने एबेटी भी थी। बानो ने ही विहारों में उसी धर्म को बनाया जो अपनी सांसारिकता में प्रारम्भ कर चुकी थी। जेनेवा की सेंट कैथीन अपनी तथा किसी धर्म्य सताम्नी की महानतम उद्यमवादी धारणा थी। वह धारी से दुखी की परन्तु धर्मने पति का पूर्व मुधार बहने क लिए जीवित रही।

एसे ही कुछ प्रकरण है जो विवाह की सांस्कारिता से सम्बन्धित धर्म के विज्ञान और व्यवहार पर संक्षिप्त विवेचन की मांग करते हैं। यह उसकी सिद्धांत कि सांस्कारिक प्रविष्टा धर्मनी पूर्वता के साथ अनुभव के हूर वस तक धर्मना विस्तार करती है। प्रजनन और प्रजनन की क्रिया, इसीलिए सांस्कार्य की क्रिया

## पुन तथा पश्चिम की सन्त महिमाएँ

क साध सम्बन्ध कर दिए गए हैं और अपने बच्चों के विद्यालय बहुमत के लिए बर्ष  
 पश्चिम की शारीरिक प्राप्ति की व्यवस्था करता है। तब इस तथ्य के उद्घोष  
 हुए भी बर्ष की यह भी निशा है कि संस्कार का सार उसके शारीरिक पक्ष  
 में निहित नहीं है परन्तु वह इस तथ्य में निहित है कि दा बिरोधी तियों की  
 मानव धारणाओं ने धार्मिक सहयोगी रहने और परस्पर प्रेम करने का बन्धन  
 स्वतन्त्रता से बना है और इस सम्बन्ध की अवधि में शारीरिक मित्र सम्मिलित  
 हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती। इसीलिए धर्मक ध्वज पर बर्ष ने  
 पुनतापूर्वक उस मत की निन्दा की है जिसमें कहा जाता है कि विवाह की स्थिति  
 को पूर्वता तक पहुँचाने के लिए शारीरिक समापन की क्रिया धार्मिक है। उसने  
 सेंट थामस एक्वीनास तथा कुछ दूसरे प्रकरणों में विवाह के विज्ञान को मंत्री  
 के रूप में स्वीकार किया है। वास्तव में इसके विपरीत हो भी शक्य सकता है ?  
 धर्मार्थ रूप से मानना पड़ता है कि उन पवित्र मा और उनके प्रति सेंट जोसेफ  
 के मध्य प्रकटित धनुष्य का सार शारीरिक समागम के प्रतिरक्त ही बुझना  
 होता क्योंकि उसकी मायता है कि वह समागत हुआ ही नहीं। इस प्रकार मसीही  
 पवित्रता की मूर्त्ति में उन विवाहित युग्मों के लिए कोई स्वाग नहीं है जो धारणा  
 द्वारा अपने धनुष्य को जसी रूप पर बनाने के लिए शक्योरे गए और जिन्होंने  
 अपने सम्बन्धों को प्रारम्भ नहीं धारणत कीमर्त्य-मुक्त रखने का निश्चय किया  
 उनके निश्चय को विशेष प्रतिष्ठा द्वारा मुहरबन्द कर दिया गया। कुछ एतिहासिक  
 उदाहरण पर्याप्त होंगे—प्यारूची सताम्नी म पवित्र रोमन साम्राज्य की सेंट  
 क्यूनेगुडा सम्राज्ञी और सम्राट् सेंट हेनरी द्वितीय लख्खी सताम्नी म पोर्लंड की रानी  
 सेंट क्यूनेगुड और राजा बार्नेस्सा (उपनाम बेस्ट) लख्खी सताम्नी म एरिमानो  
 के काठक सेंट एल्डीयर डि सफेन और सेंट बेस्फाइन डि प्लेचिड डि मु मियेस  
 स्वीडन की राजकुमारी सेंट कैथीन (स्वीडन के सेंट डिगिड की पुत्री) और एपार्ड  
 सिडरन डि क्यरन और लख्खी सताम्नी में कार्वेरा की सेंट एनकसिम और  
 सिविटैसा का काठक ।  
 यह धारणा की जाती है कि यह संकल्पित चित्र मसीही बच में शारियों द्वारा प्राप्त  
 किन्ने नये उच्च स्थान की शक्य है सकेगा ।

पारम्भात्म्य सम्मता से प्रविष्टिगत और पूजनीय व्यक्ति के रूप में सन्तों का प्राथमिक ईसाई धर्म के प्रसार के समय में हुआ है। ग्रीक तथा रोमन धरमों जीवन यद्यपि कई रूपों में प्रबुद्ध वा सेकिंग क्रिस्ती स्त्री के लिए इतना क्षेत्र न पा कि वह अपने व्यक्तिगत विकास कर सके और अपना प्रभाव इस तरह फैला कर सके। इसके कुछ अपवाद जकर से। जवाहरण के लिए वेरिक्लीज की प्रिया प्रस्पसिया को लिया जा सकता है जो अपनी बुरता और बुद्धि के कारण पांचवीं शताब्दी ई० पू० के पहले भाग में ऐबेन्स के उच्चवर्गीय समाज में बहुत प्रभावशाली थी। यद्यपि प्रस्पसिया का पूर्ण और सुबिद्धित व्यक्तिगत वा सेकिंग हम उसे सन्त नहीं कह सकते। ऐबेन्स का तोय अपनी स्त्रियों को पर पर रखते थे और परिकल्पना में स्वयं एक बार कहा था कि किसी स्त्री के लिए सब से अच्छी बात यह है कि वह अपनी प्रविष्टि घर से बाहर न फैलने दे। स्पार्ट में स्त्रियों के साथ पुरुषों का-सा समानता का व्यवहार होता था सेकिंग उनके इस बात की प्राया की जाती थी कि वे अपने बच्चों पर सख्ती और बर्बटा से अनुशासन करें जिससे उनके सामने मां का वह प्रादुर्भाव रहे जो यह कहती थी कि मुझ से या तो वे बिजयी होकर लौटें या ठलवार की मार का शिकार बनें। रोम की महिलायें भी स्पार्ट की इस प्रभावशाली कठोर अनुशासिका बन जाती थी अपना फिर रंगहीन प्राकृतियां या बासियां या फिर सिखरो के इरमन क्लाडियस की बहिन क्लाडिया की तरह अपने अपना नाम से बहिष्कृत।

फिर भी ग्रीक और रोमन साहित्य में यत्र-तत्र हमें ऐसी स्त्रियों का वर्णन मिलता है जिनमें स बहुतायें सन्तों के गुण व और जो चुपचाप रहती थीं जिन्होंने अपना जीवन पति में लया दिया था और अपने कष्टों को सहन करते हुए भी जिन्हें क्रिस्ती यद्य की प्राकाशा न थी। इसी शताब्दी ई० पू० का एक समाधि-क्षेत्र है जिसमें संक्षेप में अच्छी पत्नी की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। उसके अन्त में लिखा है—'बढ़ कर की देन मान करती थी उन कानती थी। इस प्रकार प्रभाव

शब्दा और भक्ति का भाव का प्राचर्य घटावियों से मुक्त होता रहा है। हीमर के पैनसाप में ऐन्टीगोन की बहिन इसमीन में इसका बहुत कुछ धंसा है और घायल के लटिन दिलासेव में यह और भी स्पष्ट है। उस पर एक सम्झा समाधि-सेम है जिसको बस्विनो नामक एक बिभुर ने अपनी परनी ट्यूरिया के नाम लिखा था। उसकी कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उसने बंछ-मुस को बसाने के लिए अपने पति को दूसरा बिबाह कर लेने का आग्रह किया था। उसने कहा था कि मैं सौत के बच्चे को अपने ही बच्चे देना प्यार करूँगी अपना स्वाम मैं उस नई जाने वाली के लिए प्रायः पूरी और हम दोनों बिना पति स भरण हुए साथ-साथ रहेंगी। इस बात पर वह भयभीत होकर नामना करता है कि कास मैं ही पढ़न भर जाता और बही (मेरी स्त्री) मेरी अन्तिम क्रिया करती। पर सब तो यह कहता है।

मैरिगा का जीवन इसी तरह की भक्ति और सन्त बलि का परिचायक है लेकिन वह संन्यास के अनेक बिचरे घाटों के माध्यम से अनेक भाराओं की ओर उन्मुग भी है। प्रायः में उसके नाम का अर्थ है सौभाग्यदायी और यह नाम उसे प्रीठ रीति-रिवाजों के अनुसार दाही के नाम पर दिया गया था। इस महिला सन्त के बिषय में हम जो जानकारी मिलती है वह उसके भाई नेमन के देगरी से मिलती है जिसने एक ऐंटियोक प्रोलेम्पियस नामक मिशु को अपने एक पत्र में अपनी बहिन की संक्षिप्त जीवनी लिखी थी। यह जीवनी अपनी बिषयता में इस तरह की दूसरी जीवनियों में मिलती-जुलती है। यह पत्र मैरिगा के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री देता है और उसमें मैरिगा की मृत्यु और सम्प्रेषण क्रिया का बखन भी काफी बारीकी से किया गया है ठीक उसी तरह जिस तरह हम अपने अन्त में और कई-बाता को छोड़ देना की मृत्यु पर बहुत कुछ कहा गया है। देगरी द्वारा लिखी गई अपनी बहिन की जीवनी इन्सू के सोपरकलाई की थी। द्वारा अनुदित हुई है और १६१६ में जस एम० पी० सी० को० ने प्रकाशित किया है।

नेमन का देगरी करीब ३३३ ई० में सम्भवतः कपारोमिया के कैसरेवा नगर में पैदा हुआ था। मैरिगा घाट बच्चों में सबसे बड़ी थी और देगरी सबसे छोटी में एक था। इसलिए सम्भवतः वह करीब ३२३ ई० में पैदा हुई थी। सन्त बेथिस भ्रान्तु गज से बड़ा भाई था। और सबसे छोटा भाई पीटर सेवेस्ट का बिसप था। किसी परिवार के लिए यह बहुत बड़ा गौरव था। यह परिवार समृद्ध था और अभीष्टी पर निर्भर करता था। करीब दो पीढ़ियों में बेसोय विरिचनन व क्वोफि एक गमा संकेत मिलता है कि दाही मैरिगा को अपने

धार्मिक विरवास के कारण हुआ उठाना पड़ा था। उसने ईसा को एक धर्मियोग के समय एक अन्धे तबस्वी के रूप में माना है। पैगरी की मां जो स्वयं एक कुबसुरत स्त्री थी पवित्राहित जीवन की धोर ग्राह्यत हुई थी लेकिन बाद में उसने उन सब लोगों से बचने के लिए जो उसे भया सेना चाहते थे ब्याह कर लिया।

उस समय ईसाई जगत में सामु-जीवन से जोप किस तरह प्राकपित होते थे, यह जानने के लिए कई पहलुओं को समझना होगा। स्वयं ईसा बह्यधर्म जीवन के सफ़ल उदाहरण के बिन पर ऐसेनेस के सिद्धांतों के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा था। तब परसोक-विवास के कारण लोग इस अयत् से बचना करने लगे। लेकिन अभी भी गहटाई से यह भाव कई बमाये हुए था कि मनुष्य का सच्चा जीवन तब प्रकट होता है जब धरीर धीर उसकी इच्छाओं धीर बाहरी प्रामोद प्रमोद पर मनुष्य किजब प्राप्त कर लेता है। उपनिषदों का धीर बुद्ध का यही पान्तरिक सिद्धांत है। प्लेटो का भी यही कहना है कि आत्मा का सच्चा ध्यान तब प्रकट होता है जब इच्छाएं धीर कामनाएं मिट जाती हैं। बूधरे सभों में जब धरीर शान्ति में सीम हो जाता है। पारचाल्य साधना में इस प्रकार की पवित्रता विद्यमान रही। जिस ईसाई धर्म-साधना का केन्द्र धीर प्रेरक रहा है वहां सन्त जॉन की बाणी यह प्रकट करती है कि यहाँ बूधरी घताम्दी में ही ईसाई प्राकर बस गये थे।

धार्मिक साधना के विकास की दो सबस्थाएं थी—पहले वे लोग धामे जो अकेले वे बिनमें बौद्ध के पास तब से पहले वे धीर फिर बिस ध्यस्ति से अपने धारों धीर बिध्य जुटाने गुरु किए, वह का सन्त ऐस्टनी (२५०-३५९ ई०)। सामुधों के सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन का संघटन पाब्लोम या पैचालिपस (३५९ ई०) ने किया जिन्होंने सामुधों का एक आत्म-निर्भर समाज बनाया धीर जर्मै कई मनुष्यात्म में रखा। इसके सदस्य अपनी जीविका कमाने के लिए अनेक सिस्त्रों में जुटे रहते थे। इस धादर्श से वस्तु का भला ही हुआ है धीर धारीरिक धम धीर बिचलन के इस धादर्श के अनुयायी पूर्व में भी बन गये। बुद्ध का धादर्श उदना ध्यावहारिक नहीं था क्योंकि सन्तोंने निर्धनता का जीवन बिताने का प्रबोध दिया था लेकिन आपस के बौद्ध धर्मावलम्बी लोग कार्य धीर बिचलन दोनों में समुलन रख पाब्लोम के जन-जीवन पर छल गये। प्रो० डी० टी० लुजुकी का कथन है—“कार्य किसी भी धाधु-सन्त के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यह ध्यावहारिक है। इसमें वे बातें भी धामिन हैं जैसे धाडू देना सन्तों करना जाना पकाना लकड़ी



अच्छा धीर भक्ति का भाव का भाव्य सहायियों से मुपर हुआ रहा है। होमर के पेनसोप में ऐस्टीगोन की बहिन इसमीन में इसका बहुत कुछ घस है धीर प्रागस्टस के सेटिन सितानेक में यह धीर भी स्पष्ट है। उस पर एक लम्बा समाधि-सेस है जिसको वेस्विनो नामक एक विधुर ने अपनी पत्नी ट्यूरिया के नाम मिला था। उसकी कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उसने बंघ-मुम को बनाने के लिए अपने पति को दूसरा विवाह कर लेने का आग्रह किया था। उसने कहा था कि मैं सीठ के बच्चे को अपने ही बच्चे कीसा प्यार करूँगी अपना स्वाग मैं उस गई जाने वाली के लिए छाड़ दूँगी धीर हम दोनों बिना पति से असम हुए साब-साब रहूँगी। इस बात पर वह भयभीत होकर कामना करता है कि काद्य मैं ही पहले मर जाऊँ धीर नहीं (मेरी स्त्री) मेरी प्रतिम किया करती। पर घब तो वह मरनेवा है।

मैकरिना का जीवन इसी तरह की भक्ति धीर सन्त-विरम का परिचायक है लेकिन वह मन्वास क अनेक बिलरे घावनों के माध्यम से अनेक बाधों की घोर उन्मुख भी है। दीक में उसके नाम का अर्थ है सीमाप्यछासी धीर यह नाम उसे दीक रीनि-रिवाज के अनुसार बाबी के नाम पर दिया गया था। इस महिला सन्त के विषय में हम जो जानकारी मिसती है वह उसके भाई नेमन के देवरी से मिलती है जिसने एक एटिमोक मोसभियस नामक भिक्षु को अपने एक पत्र में अपनी बहिन की संक्षिप्त जीवनी लिखी थी। यह जीवनी अपनी विषमता में इस तरह की दूसरी जीवनियों ने मिसती-जुलती है। यह पत्र मैकरिना के सम्मन्य में पर्याप्त सामग्री देता है धीर उसमें मैकरिना की मृत्यु धीर अस्पष्ट किया का वर्णन भी जाती जाती से किया गया है दीक उसी तरह जिन तरह हर घम घब में धीर कर्त्ताओं को छोड़ ईसा की मृत्यु पर बहुत कुछ कहा गया है। देवरी द्वारा मिली गई अपनी बहिन की जीवनी डम्पू० के० मोपर क्लार्क बी० डी० द्वारा अनुदित हुई है धीर १९१९ में उम एन पी० सी० के० ने प्रकाशित किया है।

लेखन का देवरी करीब ११३ ई० में सम्भवतः कागाडोसिया के सेसरिया नगर में पैदा हुआ था। मैकरिना घाठ बच्चों में सबसे बड़ी थी धीर देवरी सबसे छोटी में एन था। इननित सम्भवतः वह करीब ३२५ ई० में पैदा हुई थी। लता बलिग मद्दान् गब से बड़ा भाई था। धीर सबसे छोटा भाई पीटर सीरैस्ट का विधाय था। जिनो परिवार के लिए यह बहुत बड़ा मोरल था। यह परिवार लम्बे था धीर असीशाली पर निर्भर करता था। करीब दो पीढ़ियों ने वे लोग विरिचयन व ज्योति एव एमा गकेन मिसना है कि बाबी मैकरिना को अपने

धार्मिक विश्वास के कारण हुआ उठाना पड़ा था। उसने ईसा को एक अभियोग के समय एक शब्दों के स्वामी के रूप में माना है। वेबरी की मां जो स्वयं एक सुबसूरत स्त्री थी धर्मविराहित जीवन की घोर ग्राह्यता हुई थी लेकिन बाद में उसने उन सब लोगों से बचने के लिए जो उसे भगा सेना चाहते थे ब्याह कर लिया।

उस समय ईसाई जगत में साधु-जीवन से लोग किस तरह प्रभावित होते थे, यह जानने के लिए कई पहलुओं को समझना होगा। स्वयं ईसा ब्रह्मपर्यं जीवन के सफ़ल उदाहरण थे जिन पर ऐसेनेस के सिद्धान्तों के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा था। जब परसोक-निवास के कारण लोग इस जगत् से बचना करने लगे। लेकिन अभी भी गहराई से यह भाव जड़ें जमाये हुए थे कि मनुष्य का सच्चा जीवन एक प्रकट होता है जब शरीर और उसकी इच्छाओं और बाहरी प्रामोद-प्रमोद पर मनुष्य विभक्त प्राप्त कर लेता है। उपनियतों का और बुद्ध का यही धार्मिक सिद्धान्त है। प्लेटो का भी यही कहना है कि आत्मा का सच्चा आनन्द एक प्रकट होता है जब इच्छाएं और कामनाएं मिट जाती हैं दूसरे शब्दों में जब शरीर शान्ति में लीन हो जाता है। पादशास्य साधना में इस प्रकार की पवित्रता विद्यमान रही। जिस ईसाई धर्म-साधना का केन्द्र और प्रेरक रहा है जहां सन्त जॉन की बाणी यह प्रकट करती है कि यहां दूसरी सताब्दी में ही ईसाई धारक बस गये थे।

धार्मिक साधना के विकास की दो अवस्थाएं थी—पहले वे लोग धामे जो धकेले थे जिनमें दौड़ के पास सब से पहले वे और फिर जिस व्यक्ति ने धपने वाले और शिष्य जुटाने शुरू किए, वह था सन्त ऐश्टनी (२५०-३३६ ई०)। साधुओं के सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन का संगठन पास्कोम या पैत्रिस्तिस (३४६ ई०) ने किया जिन्होंने साधुओं का एक धारम-निर्भर समाज बनाया और उन्हें कड़े अनुशासन में रखा। इसके सदस्य धपनी जीविका कमाने के लिए धनेक शिल्पों में जुटे रहते थे। इस धारध से जगत् का भसा ही हुआ है और धारीरिक धम और चिन्तन के इस धारध के अनुयायी पूर में भी बन गये। बुद्ध का धारध उठाना ध्यावहारिक नहीं था क्योंकि उन्होंने निर्धनता का जीवन बिताने का उपदेश दिया था लेकिन जापान क बौद्ध धर्माधसामी लोग कार्य और चिन्तन दोनों में सन्तुलन रख पास्कोम के धन-जीवन पर छा पये। प्रो० डी० टी० सुनुकी का कथन है—“कार्य किसी भी साधु-सन्त के लिए महत्वपूर्ण वस्तु है। यह ध्यावहारिक है। इसमें वे बर्तों भी धार्मिक हैं जैसे शाङ्कू देना सफ़ाई करना, खाना पकाना मकड़ी

झकट्टी करना खेती करना या दूर गाँवों में जाकर भिसा भाँव कर लाना । कोई भी काम प्रतिष्ठित के बिना नहीं समझा जाता है और सब में जनतंत्र और जातु-भाव ब्याप्त दिखाई देता है । मामूली नजरिए से काम चाहे किठना ही मुश्किल और नीचे हल्ले का समे पर न उससे मारेंगे नहीं ।”

उनकी एक लोकप्रिय कहावत है—“मिस दिन काम नहीं उठ दिन खाना भी नहीं ।” और प्रो० गुजुकी ने अपने विचार इस तरह व्यक्त किए हैं—“जब तक हाथ मस्तिष्क द्वारा काम करने के लिए धम्यस्त न कर दिये जाएँ, शरीर में रक्त समान रूप से प्रवाहित नहीं हो पाता । वह कहीं एक जगह जाम कर मस्तिष्क में धक्का हो जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि शरीर ही धम्यस्त नहीं रहता बल्कि मानसिक जड़ता और धम्यस्त भी पैदा होता है । इस धम्यस्ता में विचार, विचारों बाइलों का रूप धारण कर लेते हैं । उस बला में मनुष्य बेतनावस्था में तो रहता है पर उसका मस्तिष्क स्वप्न और कल्पनामा से भर जाता है जो यथार्थ नहीं होती ।” यह बात बहर मारेण्ड जैसे कई साधुओं ने महत्सुख किया है और विद्वान् एकराई ने भी कहा है—“मनुष्य विमलन में जो कुछ ग्रहण करता है वह उसे प्रम में समा देना चाहिए ।

दोई काम तक मिस फिसिस्तीन की धपरा पवित्र स्वान माना गया है क्योंकि वहाँ धम्यस्त साधु-सन्त हुए, जिनक पास मेडिटेरेनीन जगत् से धम्यस्त यात्री धम्यस्त रहते थे । इन यात्रियों में मीसा के रोपरी का बड़ा भाई और मीकरिना का छोटा भाई सन्त बेसिस भी एक था । वह पाओम द्वारा निर्धारित जीवन-प्रणाली से बहुत प्रभावित था और उसने निश्चय किया था कि वह पौण्ड्र की धपरी बस्ती में एक ऐसे ही धमुदाव को बसावेगा । इसके लिए जमने नात्रिन्वस के निवासी रोपरी को बुलाया और इत प्रकार ग्रीक धाम्यस्त-धम्यस्ता का प्रारम्भ हुआ । बेसिस की माँ ऐमेसिया और बहिन मीकरिना जो पाइरिस नदी के किनारे पर रहती थीं पहले ही इत घोर धाम्यस्त हो चुकी थीं । बहुत ही धम्यस्त धम्यस्ता के दो मठ उठ लड़े हुए जिसमें पुराणों की धम्यस्ता मीकरिना के छोटे भाई पीटर ने भी और शिष्यों की स्वयं मीकरिना ने । बहर रोपरी ने अपने कुछ साल स्टुडिया में बिताये । बाद में वे बीसा के विद्यप होने के लिए बुलाए गए । बेसिस १ जनवरी ३७६ का मर गया और रोपरी ने फिर जम्दी ही एण्टियाक में एक सभा में भाग लिया । उसके बाद बहुत मठ में मीकरिना के पास गया । जब वह वहाँ था तभी सन्त मीकरिना ने इहनीना समाप्त कर दी और जमने धोगिपद को एक पत्र में उत्तरा जीवन-चरित्र लिख भजा ।

प्राचीन काल की अन्य जीवनियों की भांति ही प्रेगरी द्वारा मिसा गया यह विवरण कमालमक नहीं है इसमें संकरिता की मृत्यु का वर्णन अनुपात से ज्यादा है (मृत्यु-पीया के बुध ईसाई मुधारक सम्बन्ध परसन्द करते हैं) और धातव्यक बातों की प्रवेसा उसमें साधारण बातों को धार्मिक-कारिक महत्त्व दिया गया है। इसके बावजूद भी हमें उसमें संकरिता के साम्य चरित्र का पता लगता है—बहु सस्य न होते हुए भी वृक्ष की धीर बचुर भी। प्रसस में बहु माटीत्व की चरम उपलब्धि थी। यह हमें अप्रत्यक्ष सक्तों से पता चलता है। उदाहरण के लिए प्रेगरी ने कहा है कि संकरिता ने अपने को मानवीय गुणों की उच्चता तक दर्शन-ध्यातन के माध्यम से उठाया है।<sup>1</sup>

ब्रह्म के विद्यार्थी के लिए बर्चन' शब्द बहुत धर्म-पूर्ण है। चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म में बहुत कुछ धोरेजनक के उपदेय और बर्चन के संस्नेपय से इसका धर्म साधना या उपस्या हुआ गया। हिन्दू धर्म में भी एक ऐसी ही समानान्तर बात मिलती है कि सत्य को केवल बुद्धि से नहीं उपस्या और ध्यान से पाया जा सकता है जिस सत्य का प्राविम ज्ञान तक पकित की प्रवेसा अधिक धीम हो सकता है। बर्चन का यह प्राथमिक रूप जीवन की कसा के लिए माण्ड की एक बड़ी देन है और यहाँ चौथी शताब्दी में प्रीक जगत् में बर्चन शब्द इसी धर्म में प्रयुक्त होता है।

संकरिता का जन्म ऐसे स्वनिज वातावरण में हुआ था जिसमें परिवर्तन प्रकट हुई थी और उन्होंने धिनु को 'बकला' कहकर पुकारा था जो पौराणिक भाषा में सन्त पाल की समसामयिक नहीं जाती है (ऐष्ट्य शॉक पाल एब्द बकला) इस तरह की अन्य पुस्तकों से अधिक सत्य है। इस बात से यह धर्मिप्राय मिया गया कि बकली को कुंभारा रहना पड़ेगा और लक्ष्मण उसकी मां जो स्वयं एक सदाचारण मुन्दर स्त्री की सरल और पवित्र जीवन को इतना अधिक पसन्द करती थी कि बहु ब्याह करने की इच्छुक ही न थी।<sup>2</sup> बचपन से ही संकरिता को मां ने बड़े साह-ध्यात से पाला-पोसा और बहु सामान्य पाठ्यक्रम को भी ह्येय और अनुपयुक्त समझती थी। कायक्रम के अन्तर्गत वैसा कि प्रीक विद्या में होगा या मुख्यतः होमर का विषय अधिक होता था स्त्री-विद्या की प्रवेसा पुण्य की विद्या के लिए अधिक उपयुक्त था। संकरिता को एग्री विद्या देने न बनाय धान्द टैस्तामेन्ट—वैसे

1. २६० सी  
- २६०-२

धर्म-ग्रन्थों का उसमें भी पछास्टर का पारमप्य करवाया गया। यही शिक्षा उसकी सदा की साधिन थी। सोते-जागते धर के काम-काज में खाना बनाते धीर जाते वह उसी में सोई रहती धीर प्रकृस्मात् रात को प्रार्थना के लिए उठती।

मैकरिना का विवाह एक युवावान् युवक के साथ निश्चित हुआ था जो विवाह स पहले ही मर गया। वह उसकी स्मृति से इस प्रकार भावत रही जैसे शारदादेवी रामकृष्ण से रही थी। मैकरिना तब भी यह सोचती रही कि जिस व्यक्ति से उसकी मंगली हुई थी वह मरा नहीं बल्कि ईश्वर के पास जाता गया है। वह उसे एक ऐसा बुद्धिमान् भी जो उससे दूर जाता गया है। उस युवक की मृत्यु के पश्चात् मैकरिना ने मां का साथ नहीं छोड़ा बल्कि उसकी सेवा में उसने अपने सप्त धीर नियंत्रित जीवन को समर्पित कर दिया। 'धीर अपने जीवन की प्रक्रिया से उसने अपनी मां को उसी प्रकार का उच्च दार्शनिक कोटि का जीवन बिताने के लिए प्रेरित किया धीर धीर-धीरे मां का भी उसी भ्रमौतिक धीर पूर्ण जीवन की धोर लीज लाई। वह अपनी मां के लिए अपने हाथों से खाना पकाती थी।

जब उसका माई बेसिन यूनिवर्सिटी से समस्त काव्य ज्ञान लेकर वहाँ पहुँचा तो उस पर मैकरिना का इतना प्रतिक्रम प्रभाव पड़ा कि 'उसने इस संसार के ऐश्वर्य का छोड़ दिया धीर काव्य-ज्ञान के पथ को चुना करने लगा। उसने अपने को भ्रम क कामो में जुटा दिया। उसके प्रति यह सबसे बड़ी श्रद्धाबलि है कि उसने अपने माई के जीवन का सुन्दर ही नहीं बनाया बल्कि उसे बरस भी दिया। वह धारदा देवी की तरह प्रभाव-शक्तिनी थी जिसके विषय में ऐमस्ट्र स्वैजर ने इन शक्तिम रणीय शब्दा में लिखा है—'हम सब धार्मिकत्व रूप से उस धेन पर जीवित रहते हैं जो हमारे जीवन के प्रमुख शक्तों में लौम हमें दे पाते हैं। ये महत्त्वपूर्ण शक्त कभी ऐसा नहीं करत हैं कि हम धा रहे हैं बल्कि वे धानक धा जाते हैं। वे अपने धाने का दिलावा भी नहीं करते वे बिना हीचे सुन्दर जाते हैं। उसकी महत्ता का पत्रा हमको तब मयता है जब हम पीछे मुड़ कर देखते हैं—जैसे किसी संवीत्र वा स्वर या स्वस का शीर्षक हमारी स्मृति में धा जाता है। मधता श्रद्धा बिरय दया धामा धारि की श्रद्धा में हम जो कुछ प्राप्त करते हैं वह हम उस ध्यवित के हाथ पाते हैं जिसमें ये गुण क्रियाशील होते हैं चाहे वे बड़ी मात्रा में हों या छोटी। एक विचार जो कार्यरत में परिणत होता है पहले एक विनमारी क रूप में प्रवेश करता है धीर फिर हमारे अन्दर एक नई ज्योति धमा जाता है।'

दूसरी श्रद्धा जिसमें मैकरिना की धार्मिक शक्ति का जना जाता है वह

उसके छोटे भाई नीकरेपियस की मृत्यु थी। वह सारे परिवार भर में बसवान् धीर सुन्दर था। संसार का कोई भी कार्य उसके लिए असम्भव नहीं था। वह एक उपस्थी का जीवन पसन्द करता था और अपने अनुभार क्रियापियस को लेकर वह पाहरिस नदी के किनारे एक पहाड़ पर एक सुन्दर स्थल पर बसा गया। (यह हमें इस बात का स्मरण दिलाता है कि भारत में भी साधु ईश्वर का ध्यान करने के लिए सुन्दर स्थलों को चुनते थे) वह धीर आइसेपियस एक अभियान में मर गये।

इस तरह की अभियान-यात्राएं वे अपने धार्मिक बूढ़ जनों के जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने के लिए किया करते थे। इससे पूर्व भी बौद्ध भिक्षु धीर संन्यासी इस प्रकार प्राय भिक्षा के लिए जाते रहते थे। यह विचारणीय है कि इस एकान्त जीवन में भी नीकरेपि से दुर्बल निर्धन धीर मुझे बड़े लोगों की देख-भाल आवश्यक समझी। उष्णकटि का रहस्यवाह सेवा श्राय भक्ति क इस घादघं से रहित नहीं है। सन्त मैकरिना यद्यपि स्वयं शोक की पीड़ा से सन्तुष्ट थी फिर भी वह निरन्तर अपनी मां की आत्मा को ऊपर उठाने में लगी रही और तब तक सपी रही जब तक वस्तुतः वह आत्मोन्नति को प्राप्त कर दुर्बलों से ऊपर नहीं उठ गई।

उपरोक्त प्रपरी के पत्र में हम मैकरिना धीर उसकी मां की आध्यात्मिक प्रमति का चित्र प्रकृत पाते हैं। उन्होंने नीकरानियों जैसे कपड़े पहनने शुरू किए और उन्हीं जैसे बिल्लरों में सोन लगी और बैसा ही भोजन खातीं। संयम ही उनका वैभव-विभाग था और प्रमात्त रहना उनका मद्य। यरीनी धीर ऐश्वर्य को धीर के मूल की तरह बहा देने की भावना ही उनकी सम्पत्ति थी। वास्तव में वे सब बातें जिनका लोग जीवन में अनुसरण करते हैं उनमें से एक भी ऐसी नहीं थी जिनसे वे आसानी से मुक्ति न पा गई हों। कभी-कभी तां वे उस प्रवस्था में होतीं जिसे हिन्दू समाधि कहते हैं। क्योंकि ऐसा कहा गया है कि धीर कर्म में जीवित रहते हुए भी धीर धार्मिक वस्तुओं को चाहते हुए भी वे धीर की आवश्यकताओं के सामने कभी मुकी नहीं बसिक उनका जीवन आकास से ऊपर उठ स्वयं की शक्तियों के साथ विचरन करता था।<sup>1</sup>

उसके बाद उस परिवार के सबसे छोटे सदस्य बेसिम माता धीर पीटर की मृत्यु का बर्धन माता है धीर हम देखत हैं कि मैकरिना हृदय के समस्त शोकों से ऊपर उठी धीर उसने सबके सामने एक सुदृढ़ उदाहरण प्रस्तुत किया। मां की मृत्यु के कुछ समय बाद तब वे लोग सन्तुष्ट रहे लकिन फिर घादघ पासन के

बाद में बरॉन सास्त्र पर बहुत घबरे और अपने जीवन से इस तरह सख्त करते रहे कि उनको पहले से भी अधिक सफलता मिली।<sup>1</sup>

बेसिल की मृत्यु के बाद प्रेगरी अपनी बहिन के पास गया। उसे इस बात का कुछ पूर्वाभास-सा हा मया था कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं क्योंकि उसे यामा में ही ऐसा अनुभव हो चुका था। प्रेगरी ने जो कुछ भी अपनी बहिन के बारे में लिखा है, शून्य कह अधिकतर प्रकृत्या धटित और अधूरा है। इसलिए इस प्रसंग विस्तृत विवरण पर हम बहुत कुछ निर्भर नहीं कर सकते। बहुधा हमें परम्परागत कथाओं, संक्षिप्त और अस्पष्ट विवरणों का आश्रय लेना पड़ता है। प्रेगरी स्वयं इस सन्त बहिन के उपदेशात्मक वक्तव्याका विवरण देते हैं, पर वह उसके व्यक्तिगत जीवन की कारीकियों में नहीं पड़े।

एक स्थान पर प्रेगरी लिखते हैं कि जब वह इस उच्च धारणा के सम्मुख उपस्थित हुए उस समय वह पीड़ा से कराह रही थी। उन्हें देखते ही दीकरिना न कराहना बन्द कर दिया। उसे दबाव लेने में सक्षम हो रही थी। उसे बचाने का वह सतत प्रयत्न करती रही। भाई से बातचीत करनी प्रारम्भ कर दी। बेसिल की मृत्यु से संक्राणु भाई को साम्बना दी। उसको डाइम बंधाकर प्रोत्साहन दिया। और धार्मिक विषया पर चर्चा करने लगी। ये सब देख कर प्रेगरी प्रारम्भिकतर रह गये।

उपर से सन्त मीकनिगा की शक्ति को बहुत क्षीण कर दिया था। जब वह मृत्यु तक पर अधसर हो रही थी। इतनी दुर्बल होते हुए भी उसने अपने शरीर को शान्त और पवित्र रखा। वह एक ही मस्तिष्क को प्रभु के चिन्तन में संमग्न रखती। शारीरिक दुर्बलता ने उसके मन को नहीं हटाया। इस समय स्थितियों का अनुभव कर हम पवित्र सन्त महिला की पवित्र धारणा का महत्त्व हमारी दृष्टि में और भी बढ़ जाता है। वह प्रकृति और धारणा भौतिक शरीर में प्राणों का अस्तित्व मृत्यु पुनर्जीवन की यात्रा का नम आदि दार्शनिक विषयों पर बार-बार करती। अपनी अस्वस्थता की दुःख स्थिति में भी उसे अपने भाई और अन्य लीया जो उनकी सेवा-सुधुया में मगे रहते थे उनके विद्या की चिन्ता रहती। वह प्राम उन सब की भोजनार्थ के लिए धारणपूर्वक भन्न पती। कभी कभी उन शक्त उनके वास्तव-जान के बारे में बातचीत करती। प्रेगरी के शब्दों में हम महिमा में कभी भी साधारण उपसर्ग और किसी महायना की आकांक्षा नहीं की। कभी भी मनुष्य के दान ने उस सामायित्व नहीं किया। कोई भी

प्रक्रियाएँ उसके द्वार से जाती ह्राय नहीं लौटा। स्वयं उसने कभी किसी प्रकार की सहायताकी माचना नहीं की। प्रभु स्वयं प्रसन्न रूप से उसके शुभ कर्मों की कीर्तियों को धींचते रहे जब तक कि वह मधुर फलों से प्राञ्छादित बृक्ष नहीं बन गये।<sup>1</sup>

शेवरी के पत्र के दोय भाग में सन्त मकरिना की मृत्यु और बाह-संस्कार का विवरण है। उन सब लोगों का भी वर्णन है जो इस महिमा सन्त के श्राव के साथ गय जिनका वह भला काशी रही।

हमारे पास इस सन्त महिमा के स्मृति चिह्न स्वयं उसके माई बेचिस और सन्त भगरी है। ये दोनों अपने प्राप्यात्मिक जीवन के पय-अवर्तन का श्रेय अपनी बहुत को देते हैं। ये दोनों माई पूर्वी अर्ध के इतिहास में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माने गये हैं। इस सन्त महिमा के व्यक्तिगत प्रमाण की महिमा स्केवीटजर के शब्दों में—“हम में से कोई यह नहीं जानता कि उसके जीवन का क्या प्रमाण है और वह दूसरों को क्या दे रहा है। ये सब तथ्य हम से प्रसन्न हैं और इनका प्रसन्न रहना ही श्रेयस्कर है। यद्यपि हमें कभी-कभी इसकी अनुभूति प्रसन्न होती है ठाकि हम अपने उत्साह को न छोड़ बैठें। ईश्वरीय शक्ति किस प्रकार सत्कार को प्रसादी है वह हमारे लिए तो रहस्य ही है।”<sup>2</sup>

<sup>1</sup> १८२ ए

‘शेवरीयतं प्रांट चाइरुडहुड एंड मून’ पृ० ११ ।



## किलबारे की सिजिट

ईसा संवत् की प्रारम्भिक शताब्दियों में धाररसैड पश्चिमी संसार की संस्कृति और सम्यता का केन्द्र था और यूरोप का सबसे अधिक शिक्षित देश माना जाता था। धर्म और शिक्षा बहा परस्पर पूरक थे और भिक्षु एवं पाठरियों के सीमे नियंत्रण में थे। रोम नाम जर्मनी मिस्र आदि दूर-दूर देशों से बहानों में भर कर विद्यार्थी जिज्ञा ग्रहण करने के लिए यहाँ आते थे। इस्लैड का राजा भी आता और फ्रांस का राजा भी। सम्माननीय बेड मिलते हैं कि जब फ्रांस पीले प्लेग से भाग कर धाररसैड आये तो धाररसैड निवासियों ने उन्हें ग्रहण स्वीकार किया। उन्हें भोजन दिया पढ़ने के लिए ग्रन्थ बिये जिज्ञा के साधन बिये और सब बिना किसी मूस्य के। जिज्ञा केवल धार्मिक बिषयो में ही नहीं अपितु कविता साहित्य कानून और चिकित्सा शास्त्र में भी दी जाती थी। बिद्वता और उच्चतम उपाधि के लिए बाप्ट बप की दीक्षा धाररसैड की और उस जिज्ञा का इतना मूस्य था कि इन उपाधियों को धारण करने वाले राजा के सिहासन के साथ बैठाने आते थे। शिक्षित धाररसैड निवासी समस्त महादीप में उपवेशक के रूप में ही भ्रमण न करते अपितु यूरोप के सांस्कृतिक केन्द्रों में प्रोफेसर और धम्पापक के आते भी उनकी कांठी मांग रहती।

कहा जाता है कि पांचवीं शताब्दी में ईसाई मत के प्रचार के साथ धाररसैड ने लौह-युग से स्वर्ण-युग में प्रदापर्ष किया। समृद्ध नागिक संस्कृति बिचार और दर्शन की गहनता से परिपूर्ण हो उठी। लोग पाठितयता से एक मन्थने परमेस्वर की उपासना की ओर बहने लगे। युद्ध की बिभीषिणाओं से हट कर शान्तिमय जीवन में बिबिदास स्थापित हुमा। लैटिन के परिचय के साथ साहित्य का बिकास हुमा। कैनटिक प्रभाव के साथ मेटिक भयरो पर प्रापारित गई और मुन्बर सेजन-कमा के प्राबिष्कार के साथ इतिहास और परम्पराएं मेस-बद्ध होने लगीं जो धर तर पर्यटक बिज्ञानों द्वारा मौलिक रूप में उत्तराधिकार में बनी आनी थीं। परिकामन धाररसैड के इस स्वर्ण-युग में संसार की कुछ उल्लुष्ट कोटि की रचनाएं तिगी गईं जो धार भी प्रबलित हैं। तीनों चांदी बांध और एनेमस के काम में बारीबर प्रामूयन बनाने में धरनी सुदन बसा के लिए प्रतिष्ठ थे। लंपीनजो की मयात्र में लम्पान-युग

स्वाभ दिया जाता था। पहले राजा और सरदारों के परस्पर मुठों के कारण देश छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त था पर अब समस्त देश में ईसाई मत के प्रसार के साथ उनकी युद्धप्रियता जलरोत्तर कम होती जा रही थी। मनुष्य और पशु एक पालतू-जीवन बिछाने लगे थे जिसमें किसान प्राग्नि-युग्मक हल पलाते योद्धा पशु पचाते थे और विद्या एवं कला का पोषण और विकास हो रहा था।

इस संक्रमण काल के लोगों के जीवन को सही रूप से समझने के लिये—ईसा-पूर्व युग को भी थोड़ा-बहुत समझना आवश्यक है। प्रायःसर्व निवासी कौन थे? उनकी संस्कृति क्या थी? पांचवीं शताब्दी के प्रायःसर्व निवासी कैन्ट थे। सम्भवतः ये सोय मूलतः मध्य यूरोप के थे जो पश्चिम की ओर खदेड़ विद्ये जाने पर प्रायःसर्व में आकर बस गये थे और बहो के मूल निवासियों के साथ मिल गये जो परम्परा से ग्रीस सऊ और इबेरियन बंध से सम्बन्धित थी। कैन्ट लोगों की अपनी भाषा भी अपनी संस्कृति भी और अपना इतिहास था जो फिर-भी विद्वानों द्वारा संकलित और संरक्षित रखा जाता था। वे लोग स्वर्ण-मण्डित मूर्तियों की पूजा करते थे। उनके अपने आङ्गार थे और स्वामीय बेबी-देवता भी थे।

कैन्ट प्रायःसर्व में अनेक राजा और असंख्य सरदार और राजकुमार हुए जिनमें से अनेक देवत्व को प्राप्त कर चुके थे अनेक पौराणिक रूप धारण कर चुके थे और अनेक मानव रूप में ही जन-विश्वास और परम्परा में जीवित थे। वे सभी अनेकानेक छोटी-बड़ी रियासतों में अस्तित्व-सम्पन्न बनाये रखने के लिए परस्पर अनेकानेक मुठों में रत रहकर देश को अनेक भागों में विभक्त कर चुके थे।

समाज पांच वर्गों में विभक्त था। इन वर्गों को ज्ञाति नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाता प्रचलित था। इन वर्गों में राजा थे जिनकी संख्या सौ से ऊपर थी। सरदार स्वतन्त्र मू-स्वामी सम्पत्ति रहित स्वतन्त्र नागरिक और अनुबद्ध तापीरक थे। दास-प्रथा प्रचलित थी। अंग्रेज अपने बच्चों को प्रायःसर्व निवासियों के पास दास बना कर बेच देते थे।

सोय सरदार की लाई से बिरी हुई पढ़ी के दास-पास मिट्टी और टहनियों के मकर बना कर रहते थे। ये मकान रथों के जमाने योग्य सड़कों से जुड़े रहते थे। स्त्री का संसार परिवार के भेरे में सीमित था। परन्तु प्रथम बार बर्षों की स्त्रियाँ समाज में दलित नहीं थी और न अत्याय का शिकार थीं। उनके वैवाहिक अधिकार पुरुषों के समकक्ष थे। किसी कन्या को पत्नी बनाने के लिए पुरुष को उसके पिता को बहुत्र-भग देना पड़ता था। यद्यपि स्त्रियाँ केवल बरैमू संसार तक ही सीमित थीं और बाहरी क्षेत्र में

भाग नहीं सेती थीं तथापि प्रत्येक स्वतन्त्र स्त्री सभी प्रकार के बूढ़-कौमल में शिक्षा प्राप्त करती थी और उसके पास तकली टेकुई बस्की प्राप्ति होती थी और उसका ज्ञान रत्न वासी प्रत्येक स्त्री 'निपुण-कर्मी' कहलाती थी और बिबाह के लिए वह प्रस्ताव कर प्राप्त कर सकती थी। परन्तु धनुनद बयों की स्त्रियों में अन्य स्त्रियों के कोई अधिकार नहीं थे और वे अपने स्वामी की सम्पत्ति समझी जाती थी। उनसे निरस्त शारीरिक श्रम लिया जाता भेड़ें चरवाई जातीं घनाज पिसबाया जाता प्रतिशियों क पात्र बुसबावे जाते और साने की मर्जों पर सैम्पों के साथ बड़ी की जाती थीं।

घायरसैड के इस संक्रमण कालीन इतिहास के युग में सेंट पैट्रिक के ईसाई मत के प्रचार के समय बीस वर्ष उपरान्त लन्दन की राजधानी में समय ४३३ ईस्वी सदी में एक सामान्य राजकुमारी डम्पक के घर में एक कन्या उत्पन्न हुई जिसकी माता धनुनद स्त्री थी और वह कन्या ही किलशारे की सेंट ब्रिजिट कहलाई जो घायरसैड के बेगमकन सन्त और धनत युग की सर्वश्रेष्ठ महिला के रूप में प्रकट हुई।

इस असाधारण बुद्धि-सम्पन्न मन्त्र महिला के सम्बन्ध में कहा जाता है— "यद्यपि वह बेबी और मानवी प्रतिभा से सम्पन्न बाणी प्रकट करती थी परन्तु वह स्वयं तो सदैव तुच्छ समझती रही। उसने अपने आप को श्रेष्ठ करने वाली बात से अधिक नहीं समझा। एहिक सम्पत्ति के शान में वह उदार और मुक्त-हस्त थी किम्वद त्व से जब निर्धन और दुःखी व्यक्ति उसकी शरण में आते। वह मुक्त-हस्त दानशीलता स्वार्थ-निष्ठि प्रपवा बहूकार की भावना के साथ प्रकट नहीं होती थी न ही उसके पीछे कोई छिपी हुई महरबकाला ही थी। जब कोई धनत व्यक्ति उससे भिला मांगने या जाता तब भी वह न तो स्पष्ट ही होती और न किमी का बुरा सोचती थी। जब दुर्भाग्य ने उसे पीड़ित किया तब भी उसने दूमरो से ईर्ष्या नहीं की। सर्वश्रेष्ठ सम्मान पाकर भी उसने अपने आपको सबसे छोटा समझा। न्याय और न्याय के पक्ष पर बहते हुए उसने जो अपमान और दुर्भ्यवहार प्राप्त किया उसे भी उसने धरमन्त सहनशीलता और शैर्ष के साथ ग्रहण किया। कर्म और धार्म्यात्मिक श्रय के लिए उसने निरस्त संशय किया।"

पौराणिकता ऐतिहासिक तथ्यों का रोमांचपूर्ण बना देती है। यद्यपि प्रेरित भावनाएँ एक सन्त के जीवन और चरित्र को जमलकारो से भर देती हैं। और जब उन सन्त का जन्म किसी नव युग की देहरी पर हो प्राचीन विश्वास और परम्पराएँ धर्म-विरवासी जमलकारों और द्वि-श्रियों के रूप में भविष्य के साथ एकाकार

१. "तादन्त घाऊ रि घायरिसा सेंट-सैड-नसैड जान घो" ईन्ग्लो १८७३।

हो जाती है। जिनके बीच में सत्य का प्राप्यारिभक प्रकटन प्रकाश-साम्य बन कर प्रकटों का मार्ग-दर्शक और प्रेरक बन कर उन्हें परम सत्य की ओर खींच ले जाता है।

सत्य शिक्षित के सम्बन्ध में अनेक परम्पराओं विरहासों, चमत्कारों और दण्ड-कथाओं को परम्परागत साधुओं और वैद्यकों द्वारा प्रसारित किया गया और यहाँ के विद्वानों के द्वारा ये सब विरहास संकलित कर लिये गये। आज मुझे परचातु विद्वानों के लिए यह जोख निकालना कठिन है कि वास्तविकता और दण्ड-कथाओं के मध्य की सीमा कहा है। आन्तरिक में ईसाई मत के प्रचार के साथ पूर्व ईसाई युग के विरहासों और साम्यताओं को जोड़ मूल से मेट नही कर दिया गया था। न ही ईसाई मत के प्रचार में नवीनता की चमत्कृता के साथ स्थापना की प्रकृति गये बर्म के उद्भव के साथ नवीन और पुष्टम का एक सहज चर्क-युक्त साम्यम हुआ। आन्तरिक में ईसाई मत के प्रथम प्रवेता पैट्रिक ने सहर्ष प्राचीन बर्म के उस समस्त रूप को प्रह्न कर ईसाइयत में विलीन कर दिया जो उचित और प्रहनीय था। परिणामत यद्यपि पैट्रिक ने मूर्ति-पूजा को स्वीकार नहीं किया पर तारा पर्वत पर पवित्र धर्म के प्रकाश के अन्तर्गत रखने के विश्वास को उसने प्रह्न कर लिया जो प्राचीन मूल बर्म की एक विशेष चार्मिक साम्यता थी। परिणामत ईसाई मत और पूर्व ईसाई मतों के विरहासों और विधियों के इस सम्मिलन के युग में शिक्षित का जन्म हुआ और पैमत्रों की परम्परागत प्रकृतियों की देखी, कला समृद्धि विद्या की देखी सूर्य-युगी शिक्षित नाम के साथ इस पैमत्र राजकुमारी ईसाई और मत्ताचलम्बिनी अनुबद्ध स्त्री शिक्षित को एक ही मान कर जो भ्रम बाद में उत्पन्न हुआ वह स्वाभाविक ही था। प्रथम सत्य शिक्षित की मृत्यु के परचातु क्रिस्चियानि के गिरजाघर पर जो धर्मि प्रकृतित की गई, उसे सूर्य-युगी के प्राचीन प्रतीक का चिह्न समझ कर प्रकृतियों की कृति के लिए उत्तम सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा।

इससे स्पष्ट हो सकता है कि सत्य शिक्षित के सम्बन्ध में पीराचिनता को वास्तविकता से पुनर्क करना कठिन है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि सत्य शिक्षित से सम्बन्धित अनेक दण्ड-कथाओं मिथ्या है परन्तु उनके पीछे छिपे मूल सत्य ने उसके चरित्र और कार्यों की बुराई से नारा-जीवन के बीच जीवित रखा है। मत उनमें से कट्टेक कथाओं की चर्चा प्रकृतित नहीं करी जा सकती।

शिक्षित का जन्म मुत्तामी में ही हुआ था क्योंकि उनकी माँ उसके जन्म से पूर्व दूसरे स्वामी को बेच ही गई थी। बड़े होने पर उसे अन्य दासियों की भाँति काम करना पड़ा। मेड़ चरणा चकड़ी पीछना प्रतिदियों के पाँव धोना उसका काम था। प्रचातुमार सेवा के योग्य होते ही उसके पिता ने उस पर अपने अधिकार का दावा

कर उसे सभिका के कार्य के लिए घर बापत बुला लिया। यद्यपि उसका काम अत्यन्त निम्न कोटि का था परन्तु परिपक्व होते ही यह स्पष्ट हो गया कि वह असाधारण बुद्धि और प्रतिभा वाली स्त्री थी। यह प्रत्येक वाली-मुन्नी को अपनी बहिन के समान मानती थी और पिता के प्रतिश्रियों के साथ भी उसका व्यवहार अत्यन्त मुबुबा। इस गुण ने कालान्तर में उसे एक विशेष नाम प्रदान किया और वह अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह पादरी ही या समाज—के हृदय को झूने में समर्थ हो पाई।

बचपन से ही विजिट के चरित्र में एक विशेषता आ गई थी जो जीवन-पर्यन्त बनी रही। वह थी उसकी उदारता जो सकुचित-हृदय व्यक्तियों के साथ कभी मेल न ला सकी। युवावस्था में वह अपने पिता की वस्तुएं उठा कर बाट देती। भेड़ें चराते हुए किसी किसानों को बसकर वह गस्से में से एक भेड़ ही उठा कर ले देती। उसकी यह उदारता उसके पिता के लिए अच्युत हो उठी और कहा जाता है कि किसी बेबी प्रेरणा-बस ही विजिट पिता के दण्ड से बची रहती। अस्तव्यस्त वह पिता के लिए इतनी व्यय-साध्य हो उठी कि उसके पिता ने उसे लैम्बर्ड के ईशारों राजा की बेच डालने का निर्णय कर लिया। प्राचीन प्रलेखों के अनुसार, एक प्रातः जब डम्बेक ने काम करती हुई विजिट को बुला कर उसे रथ पर बिठाया तो वह उस अप्रत्यापित व्यवहार को पाकर आनन्द से भर गई। पिता ने उसे बताया कि वह उसे सम्मान देने के लिए बाहर नहीं ले जा रहा है बल्कि राजा को बेचने से जा रहा है।

जब वे दुर्ग में पहुँचे तो उसका पिता गई वाली का मोल-भाव करन के लिए राजा के पास आया। विजिट रथ में बैठी घटीभा कर रही थी कि एक कोड़ी वहाँ आया। जब दिनों घावरमैड में कोड़ियों को उनके शारीरिक कष्ट के कारण विशेष मुक्ति पाएँ ही गई थी और उन्हें इच्छानुसार राजा के दुर्ग में बुलाने-फिरने की भी स्वतंत्रता थी। कोड़ी विजिट के पास पहुँच कर सहायता मांगने आया। राजकुमार की रथ में शान के साथ बैठी हुई थी वाली के पास आना देने को क्या था! कोड़ी से दृष्टि हटा कर उसने रथ में पिता की रत्न-जटित तलवार को देखा और बिना किसी बुझिया-संकोच के वह तलवार उठा कर उसने कोड़ी को दे दी। कोड़ी तलवार लेकर चल दिया। राजा से बात करते हुए डम्बेक उसे बता रहा था कि विजिट की अतिथय उदारता के व्यय को बहुत करना सामर्थ्य से बाहर हो जाने के कारण ही वह उससे बचना चाहता है और जब वह राजा से बात करके विजिट की लेने बाहर आया तो उसने देखा कि उसकी बहुमूल्य तलवार गायब है। डम्बेक शोक से भर उठा। उसने विजिट को बतलाया कि वह तलवार बिलगी मूल्यवान थी और उत्तर में विजिट

से यह सुनकर कि इसीलिए तो उसने उसे ईस्वर के पुर्णों में से एक को दे दिया है, उसके क्रम का ठिकाना न रहा।

पिता की तसबार उठा कर से देने की इस बटना ने जिवित के जीवन में एक मोड़ ला दिया। जब मेन्स्टर के राजा ने इस बटना को सुना तो वह कोड़ी का पिता की बहुमुख्य वस्तु को निर्मयता-पूर्वक उठा कर दे देने के उसके कार्य पर मुग्ध हो उठा। उसने उसक पिता को उसे वासत्व से मुक्त कर देने के लिए कहे हुए कहा—“उसे धरनेमा छोड़ दो। उसके गुर्णों को हमारी प्रवेक्षा ईस्वर प्रच्छी तरह परख सकता है।”

इस कथा की सामग्यत यह व्याख्या की जाती है कि जिस प्रकार सन्त ने पोप का तसबार को मुष्पहीन समझते हुए धान में दे डाला उसका धर्म यह है कि वह अपने देववासियों को इस जयाहरण से यह बतसाना चाहती थी कि वे मिरस्तर रक्तपात को छोड़कर धर्म्य मार्गों से जीवन बितायें और संघर्ष छोड़कर ब्यापूर्व कार्यों में मन लगायें।

तसबार में देने के इस कार्य का उत्तरांग हमें जिवित के बाह के जीवन में मिलता है जब वह समस्त धायरसैड में निर्यात हो चुकी थी कहा जाता है कि एक दिन एक मोठा अपने धादमियों को लेकर किसी पड़ोसी सरदार पर धाक्रमण कर उसे पराजित करने के लिए निकला और धायीबाह के लिए जिवित के पास धाया। जिवित ने उसकी प्रार्थना के उत्तर में अपने धायीबाह में धान्ति की शानता प्रकट की और कहा—“मैं सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि तुम न किसी को बायन करो न स्वयं धाव सहो और गुर्णधवा के कूर प्रतीकों को मुक्ति दो।” इस प्रकार उस मुग में जब युद्धों की दक्षि ही सर्व-नाग्य थी संत जिवित न केवल धान्ति के लिए धाय्यात्मिक कामना ही रखती थी धपिगु ध्याव हारिक रूप में भी युद्ध और इन्द्र को धमाप्य करने में प्रयत्नशील थी।

वासता से मुक्ति पाने के परचात् जिवित को उसके पिता ने उष्ण जिज्ञा की और तत्कालीन धायरिन समाज के सम्माननीय सदस्य एक कवि के साथ उसके विवाह का प्रबन्ध कर दिया। परन्तु जिवित ने संन्यास धारण करने का हठ किया और पौर विरोध के परचात् धन्त उरने मिसुबी का बट से लिया। जिवित के लिए संन्यास का धर्म एकाकी और निष्क्रिय जीवन नहीं था धपिगु यह कार्य धीलता से पूर्ण एक धाय्यात्मिक यात्रा थी। उस मुग में जब स्त्री समाज में कोई मान मर्ही लेती थी वह नैबी बनी और समाज के समस्त वर्णों की स्त्रियों को परिवार संशुभित धरे से निकाम कर समाज की सेवा के धम में ले धार्ई।

ब्रिजिट ने स्वयं रथ पर स्वाग-स्वाग घूम कर बिहारों की स्थापना की उनके भवनों का निरीक्षण किया और दूसरों को ईश्वर के लिए जीवन देने और प्राणी मात्र के प्रति कृपाशील होने की प्रेरणा दी। संस्था की सम्पादिका और सामान्य जनो के लिए बनाये गये बिहार अन्दर से विद्यालय और स्व-निर्मित थे। वे धार्मिक और चर्म-निरपेक्ष विद्यार्थियों के कन्द्र थे जहाँ सेटी-बाड़ी चक्की रंसाई, बुनाई और रोगियों की परिचार्या आदि की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। मुख्य बल उस धार्मिक आचार पर था जिस पर उन क्षेत्रों की स्थापना हुई थी। वे बिहार पारस्परिक मैमलस से मुक्त थे और भ्रातृत्व के भावार्थ से निर्धनों के लिए भाग्य और बुद्धियों के लिए सरनामय थे। परिचित और अजनबी सभी शान्ति की कामना से इन बिहारों में जाते जहाँ ब्रिजिट उनका स्वागत करती। अपनी सेवा और धार्मिक परामर्शता के लिए ब्रिजिट देश भर में विख्यात हो चुकी थी। उसने अपना जीवन ईश्वी सेवा के लिए अर्पित कर रखा था और स्वयं अपने लिए कोई सांसारिक सुविधा उठाने नहीं चाही। परन्तु दूसरों की सुख-सुविधाओं और धाराम के प्रति वह सर्वत्र सजग रही। ब्रिजिट को ध्यान्य उस्तास उस्तास, संगीत सम्मेलन से प्रेम था और उसने समाज में परस्पर प्रीतिभाव बढ़ाने के लिए इस प्रकार के आयोजनों को अनिवार्य बनाया।

देश का बड़े से बड़ा व्यक्ति छोटे से छोटा पैगमबर और ईसाई—सभी उसके मधुर सम्मति के लिए उसके पास जाते थे क्योंकि उन्होंने ब्रिजिट में अद्भुत प्रतिभा के दर्शन किये और उसके मार्ग-दर्शन से सर्वत्र मान उठया। ब्रिजिट का कथन था कि उसका मन कभी भी ईश्वर से विलग नहीं हुआ। धारम्बर-हीन ब्रिजिट को देखने के लिए जब देश के राजमान्य लोग उसके पास पहुंचते तो वह प्रायः भेड़ें बराती होती। बसबी तताम्बी के एक पालत में लिखा है—“बह भेड़ें बराती हुई उनके स्वागत के लिए जाती थी ?

ब्रिजिट अपने देश में अपने समय की सम्पादिका पैगम्बर थी पर वह पूर्णतः धार्मिकता से मुक्त न थी। उसकी असाधारण स्वाधीनता प्रायः दूसरों की भाषी में गटवती थी। वह मामूलीय धमकतवादी को स्वीकार करती थी और अगर बईमान और दुष्ट सामा से उसे कोई कष्ट पहुंचता तो भी उसे ईश्वर के उद्देश्य पर विश्वास रहता था कि वह पापी के मन को बोगस बनाने अथवा ईश्वी जीवन में राह निकालने के लिए ही है।

ब्रिजिट का धर्म ही शान्ति। और ब्रिजिट सारा विश्व छात्रविद्यार्थी दुःख में विचरता, मान्य की सति लता और प्रभावशालिता के लिए सान्द्रिय थी। ध्यान देने की

बाप यह है कि उसने बड़े से बड़े बमालकारों के सहारे नहीं धम्पिु ब्यावहारिक मार्ग से प्रसिद्धि प्राप्त की। उदाहरणार्थ उसके युग में महाना-शोता घरीर की प्राबल्यकता नहीं अपितु एक बिसास माना जाता था और ऐसे युग में घरीर को रोगों से मुक्त रखने के लिए घारीरक स्वच्छता की बह सबसे बड़ी समर्थक थी। घनेक बार जपघार से पूर्व बह रोगी ब्यक्ति को स्वच्छ करने की घोर पहलू ब्यान होती थी। घायरसैड मं सल बिजिट कृपि-जीवन की घबिष्ठाभी मानी जाती है। उसने घू-स्वामियो के हृदय पर घबिकार कर सदैव के लिए बघपाहों को घर्ब-सामान्य के जपयोग के लिए मुक्त करवा दिया। बास्यकाम से ही बह भेड़ें बराने गायें बुहने मभजन घीर पनीर निकालने घाटा पीघने घीर रोटी बनाने घादि के काम बरखी थी। बह स्वयं घपने बिहारों के सेतों का निरीक्षण करती थी घीर सेविहरों को सहायता होती थी। कहा जाता है कि प्रत्येक पर्वतीय शेत घीर पशु-केत्र उसके मन्धिर है उसके मूस स्थान की महियां बाटियां घीर पांघ उसके नाम से पुकारे जाते हैं घीर यूरोप के गिरजाघरों में बिहारों घीर कुपों में उसका नाम बिजिट बिजिट घबबा बाडा घंकित है।

बिजिट की स्थापनाघों में सबसे प्रसिद्ध स्थापना सेक्टर में है, जो उसने स्वयं घपने लिए एक बड़ के पेड़ के नीचे पेड़ की टहनियों घीर गारे से एक कूटिया रूप में बनाई जो किसबारे के नाम से बिस्मात है (जिसका घर्ब है बड़ के पेड़ का गिरजा)। इसी मकान को केत्र बना कर घायरसैड की सबसे प्रसिद्ध विघापीठ किसबारे विकसित हुयी। किसबारे में ही बिजिट ने घपने जीवन के सतर बर्ष बिताए घीर ५२५ ईस्वी घरी में पहली फरबरी को बिजिट का बेहान्त हो गया। मृत्यु के परबात् उसे सल पैट्रिक के साथ जसी सम्मान घीर घडा के साथ दन (डाउनपैट्रिक) में बफता बिया गया।

सेकिल बिजिट की घारमा युगों से घपने बेघबासियों के लिए घपनी कस्या घीर कर्तव्य-निष्ठा के घाबर्ष से घेरपा का केत्र बनी हुई है। उसके कई नाम प्रसिद्ध है- बिजिट, बाइड बिजिट घीर हर नाम के पीछे बर मठ घबबा बिक्तिघासय में की घयी उसकी सेवा का इतिहास है। बिजिट एक बाठी थी स्थालिन थी मठ-स्वामिनी थी बिहानों घीर मानबता के मित्रों की घसाहकार थी। उसका मय कभी भी ईश्वर से बिसय न का। बिजिट ने घायरसैड के उस स्वर्ध-मुप में भक्ति की दृढ़ता घीर ईश्वरीय प्रेम की घक्ति का घब्बा रूप प्रदमित किया



## मगधेबग की मैकथिलह

धर्मन गूढतत्त्वप्रपञ्चों (अध्यात्मविद्या) का इतिहास ऐसी मारियों के धार्मिक एवं परमानन्दमय विवरणों से प्रारम्भ होता है—जो विमलान प्रतिभा एवं परमात्मा के प्रति घट्ट प्रेम से परिपूर्ण थीं। उस काम म जबकि ईसाई विश्वास धरणी चर्च-पद्धति में दिन प्रतिदिन (उत्तरोत्तर) बढ़ते हुए बहिष्पान सिद्धान्त के सावरण से घात हो रहा था और जिसने धरणी चरम रेखा (शिराबिन्दु) विद्याभिमानी सिद्धान्त तथा ब्रह्मज्ञान से उत्तेजित विचार की परम अभिवृद्धि में निर्धारण की। वे स्थिरा धरणावित पुण्ड्रुमि से धारणव्यवस्था धार्मिक धन्तर्जन से प्रेरित संसार के सम्मुख धरने गूढ़ (रहस्यमय) धनुषों जो प्रत्येक ईश्वर धन्धेयक (धामक) को उत्तेजित करते हैं की छापी देने की धधरित हुई।

विजेतम की हिमदेवई (१०६८ ११६६) हम धरने ईश्वर के धामाध के विषय में बघाती हैं जो उसे धरणी धान्तरिक पूर्णता से प्राप्त हुआ और जो उसके सहजीवियों की देवीधमान प्रकाश के समान प्रसहित होता था। स्वयं उचका कहना है कि प्राय उचकी धात्मा नै धामोक क धर्मन विष्ट। इसका मधु धमिप्राम है कि उन धामोक के द्वारा ही समस्त धामोक धामोकित हो रहा है। प्रत्येक समय उनके समस्त बुद्ध गोक एवं बपों के बाम बन्धित हुए।

ऐसे ही धनुषध हमें ईकबने की मर्टरह (१२५१ ६१) जो इमार्याबन के निरुद्ध हृष्टका के विहार (मठ) की धमिबानिधी थी उनकी बहिन ईकबन की मैकथिलह में (१२६० १३१०) जो धरने नाधामिक धरनों के लिए प्रतिष्ठ थी हम समय की स्थियों में बनि मैकथिलह की मैकथिलह (१२०६ १२६६) में जा १२६८ में हृष्टका धाई धीर धालत महान् मर्टरह (१२५६ १३११) जो धरने धेतना-मन्धधी स्वयों के धटिन होने पर जीमम धीर मरी में धारणव्यवस्था धाले करती थी सबमें बुधि गोचर हाथ है।

हम महा नुस्यत्र एक ईश्वर प्रेमिका जिनन चर्च धीर उनके स्थियों के धामधन के बिना ही हम धाडितीय रहस्य को प्राप्त किया धीर जिनके विवरण धनुष धार्मिक लेखकों तथा नास्थनिर्वा के मना वा धाडन मही करते धरिनु परमात्मा के धाम

देख का सजीव भाषा में वर्णन करते हैं का प्रभाव सार्वकामिक ईश्वर प्रेमियों पर पड़ा तथा उन्होंने उसके प्रतीकों के प्रेम सम्बन्धी संकेतों से मधु धाधात का भी अनुभव नहीं किया जिन्हें उसने प्रेरणात्मक तथा प्रभावशाली जर्मन मिनेसाप से पाया था ।

मिनेसाप तथा अध्यात्मविद्या कवित्वमय धर्मव्यक्ति और मध्य युग की भाषणा में मित्रभाव से सम्बन्धित थे । यह स्वाभाविक है कि जर्मन मिनेसाप की सालभिक भाषा का प्रभाव तात्कालिक के परमाण्वमय धनुमर्षों के विवरणों पर पड़ा । इसने एक विशेष विस्तार की काम दिया जिसने ईश्वरीय धनुमर्ष की दार्शनिक मुक्ति पूर्वक व्याख्या को जीवित रखा । ध्यान भी प्रस्तुत विवरण हमारे लिए स्पष्ट और वास्तविक है । क्योंकि हमें रामहृष्य के जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि सर्वत्र मनुष्य परमात्मा के वर्णन करने और उसे धनुमर्ष करने में समर्थ होगा । परमात्मा की यह धनुमुक्ति जो मालव-जीवन का सञ्च और ध्येय है मैकबिस्ट ने ऐसे समय में प्राप्त की जब बौद्धिक और कास्मिक सिद्धान्त और मौलिक विस्लेषण समकालीन भाषाचार में प्रचलित थे । उसके धनुमर्ष ईश्वर के प्रति उसके धनुमाम से बाहर (परे) तथा अप्रतिहत प्रेम के परिणाम थे । हमें अध्यात्मविद्या के इतिहास से मान्य होता है कि उन मारियों ने जिन्हें अन्तर्धान का वर्णन (समर्पण) और पुत्रा की क्षमता प्राप्त की उच्चतम धनुमर्ष प्राप्त किया । यह प्रायः उन्हें महत्त्वपूर्ण कार्य करना है । इन पर यह उत्तरदायित्व है कि वे दैनिक संभवों से पुष्पों में प्राप्नुत हुई संस्कार बौद्धिकता को निष्कृत कर दें । एक अध्यात्मिक और शार्सनिक प्रसिद्धि मानसिक प्रकृति तथा सहज ज्ञान एवं इस प्रकार धर्मियता से पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में उनके मन्वीर मूर्खों का पुनः धंकरण करा सकें । मैकडेबर्ग की मैकबिस्ट स्थियाँ ऐसे रहस्यमय धनुमर्षों से प्राप्नुत सक्ति की धन्यतम शाली देती हैं ।

उसके विषय में ऐतिहासिक विवरण बहुत कम संख्या में प्राप्त हैं । उसका जन्म मैकडेबर्ग के समूह एवं कुलीन परिवार में हुआ । जीवन के प्रारम्भ में ही वह ईश्वरोन्मुख हो गई और ऐसा कहा जाता है कि बारह वर्ष की अवस्था में धन्मुष्य की कान्ति उसमें दीप्त हो उठी । अतमें मन्वत् प्रेम मन्वान् की सेवा करने और उसी के लिए जीवित रहने की धर्मिताया उत्पन्न हुई । १२३२ के लगभग वह मैकडेबर्ग के 'बीमिन्स नूह' में प्रविष्ट हुई । ये 'बीमिन्स-नूह' नामिक बहनों के लिए थे । ये सतत अत के धम्यन में नहीं बंभे थे और न ही किसी वर्ण या धम्य किसी संस्था पर निर्भर थे । वह स्थियों की संस्था निर्माण के विचार से बनाई गई थी जहाँ जीवन की

शाही धीरे धड़क खड़ा के साथ ईश्वर का चिन्तन किया जा सके। उनका मुख्य कार्य दाम रोपियों की सेवा-सुधुपा धीरे व्यापक था। इन निश्चय कर सकते हैं कि मैकबिस्म ने मिशनरिय बनकर अपने उपबुक्त कर्तव्य-भाषन में देश का पर्याप्त पर्यटन किया धीरे धले जीवन का बहु रूप समझ में आया जिसने उसे धीरे भी ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा दी।

उसने धार्मिक-वीर्य धीरे तपस्या का धर्म्याण करना प्रारम्भ किया। धर्म्याणविद्या में कई उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ धीरे को इतना उन्पीड़न दिया गया है कि धर्म्यत बहु दिग्ग प्रकाशन का पात्र बन जाता है। धार्मिक मानसिक संसार धीरे को उली असर का साधन बना देता है। धर्म्याणविद्याओं के धीरे को नियंत्रण में लाने के ये सम्पूर्ण प्रयास भारतीय इच्छाओं की साधना के साथ धनुष्यता लिए हुए हैं। जहाँ पर प्रथम काम-बुद्धि को उच्छस्तर पर लाकर धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयुक्त किया जा सके।

मैकबिस्म में प्रकाश धीरे प्रेम का समन्वय था। प्रतिदिन उरो नये प्रतीक धीरे रूप बृष्टान्त सुझते जिसमें बहु धपन भववद् प्रेम धीरे प्रभाव के धारणों को धर्मिष्णक कर सके। उसका धार्मिक स्वर (धनहृद नाद) जानो उसे धपने दिग्ग प्रकाशन को स्मरण करने का आदेश देता। ईश्वर ने स्वयं ही उसे प्रसन्नता बना दिया कि किस प्रकार ईश्वरत्व स्वयं जित्तर ल्पान्तर धीरे नभार के विभिन्न रवों धीरे सौन्दर्य में प्रकट होता है। मकिन सबसे महत्त्वपूर्ण धीरे प्रकाशन तथा सबसे बिरतुत रूप प्रेम है। हम यह कहना कर सकते हैं कि बहु इन धर्म्यर्षिनि को क्यों सह्य न कर सही धीरे क्यों उसे इन धीरे प्रकाशन को लेनबद्ध करना पड़ा? धीरे बहु किस प्रकार इत विचार पर पहुँची कि बहु ईश्वर की प्रितमिमाणी हुई थीं थी थी। धपने धारण्यजनक धनुष्यता की धर्मिष्णनि के लिए उस कोई उच्छ मार्ग न मिला जिसमें कि बहु उसको मानवीय प्रेम में धर्मिष्णजिन कर सके। धार्मिक रूप हुई धीरे ईश्वर कर धीरे स्वर्गिक विवाह म प्रम धृतु की पराजिन करता है।

यह रहस्यमयी धृतु होती है जहाँ समस्त धर्म्य प्रवृत्तियों काग को प्राण होती है धीरे धार्मिक एक धर्मिष्ण नि स्वार्थ प्रेम के राज्य में प्रकाश करती है जहाँ बहु परमात्मा की धार्मिक में पुन धर्मिष्णमयी होती है। मानव-मन की धार्मिक धपनों की प्रवृत्ति क कारण ही स्वयं ईश्वर ईश्वर ईश्वरों ने ही नहीं धपिनु सभी धर्मों धीरे सभी धर्मों के ईश्वरों ने रहस्यमय ऐश्वर्य का वर्णन जगति-विषयक धृष्टि से किया है। धीरे—साधारण धीरे धर्मिष्णों के लिए प्रेम है जिनके धर्म्य में उनके

समकालीन गायक प्रति सुन्दर पद्य गाते हैं—परमात्मा के प्यार को पराश्रित करने का मीकबिल्ड के लिए केवल एक धर्म उद्योग था। परमात्मा के साथ पूर्ण एकता के मान के प्रतिरिक्त वह अपनी धारणा के उन्माद को ज्ञान के प्रकाश और मयबन्ध प्रेम से उभर करती है।

वह जो प्रकाश का पान करता है और प्रकाश से ही पुष्ट हुआ है वह विषय प्रकाश के पुनः के रूप में विकसित होता है जो अन्धकार में सभी जनों के लिए आसोक का प्रचार करता है। प्रेम और प्रकाश के द्वारा यह उन्माद चेतना और ज्ञान को उन्मत्त करता है एक सृष्टि होता है जो प्रबोधन की ओर और अन्त मुक्ति की ओर ले जाता है।

इस सप्त महिमा ने बीवह वर्ष तक अपने अनुभवों और धम्मार्थों को संशय प्रकिया। वह सेटिम माया नहीं जानती थी। अतः उसे निम्न जर्मन में सिक्कना पड़ा। वे पुष्ट होने के हीनरिक पावरी द्वारा संगृहीत किए गए थे लेकिन अब धर्माप्य है। कुछ समय के पश्चात् वे नारडलिंगम के हीनरिक द्वारा एलेमैन्कि में अनुविष्ट किए गए और अमता के लिए धूमन हो गए। यह मूस ग्रन्थ धमी भी एनसिडभनेन के बिहार में उपलब्ध है। सीम ही सेटिम ने इसका एक अनुबाप तैयार किया गया।

मीकबिल्ड ने केवल अपने धामार्थों और अनुभवों (जो उसके समकालीनों के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण थे) की ही व्याख्या नहीं की परन्तु अपने समकालीन लोगों की जिनके पाप और अष्टाचार से गिरजापर और विहार तक न बने थे—उनकी तीव्र शक्तों में स्वतन्त्रता से धामोचना की। उसका स्वयं कहना है कि वह स्वयं भी उसी प्रकार धास्वासन करती थी उसका जीवन अपने समय के लिए एक ब्रह्मन्त उदाहरण था। उसने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष ईस्पष्टा के बिहार में व्यतीत किए, जहाँ उसे गर्टरड बहन और हैनरन की मीकबिल्ड जैसे धार्मिक सम्पत्ती मिल गए। वहाँ वह १२६६ को मृत्यु को प्राप्त हुई। जीवन के अन्तिम क्षणों में जो स्त्री-सम्पत्ती उसकी सेवा-मुद्रुपा में संलग्न थी उन्होंने यह बताया कि प्रभु के प्रति अटूट प्यार में जीवन-यापन करने के पश्चात् मृत्यु भी उस परमानन्द से कम नहीं जो परमात्मा के साथ पूर्ण तादात्म्य होने से प्राप्त होता है।

अबि हम इस संत द्वारा लिखित ग्रन्थ का अध्ययन कर जो वह पीछे छोड़ गई है तो हमें यह पता चलता है कि मैगडेबर्ग की मीकबिल्ड को परमात्मा की अनुभूति उसके प्रति प्रभु प्रेम और एक उत्पत्ता जो कि बुद्ध तथा शुद्ध धार्मिक धारण

में अभिव्यक्त होती थी के डार हूँ। यह उसे एक रहस्यमय अनुभव की धार स गई। परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन के पश्चात् उसकी पिपासा शांत नहीं हुई और उसने पूर्व तादारम्य के लिए प्रयत्न किया। एसी बड़े उत्कण्ठा के माग में कोई अवरोध नहीं था सकता और अन्ततः उसने पूर्ण तादारम्य अनुभव किया। एक ऐसी स्थिति जिसमें कि पूर्व शान्ति और एकरूपता के ध्यान का राज्य हो और जिसका वर्णन 'सच्चिदानन्द' कहने से ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में परमात्मा ही उसका सर्वस्व था। उसमें उसके दर्शन प्रत्येक वस्तु में किये और इस संसार में उसकी महामाया को समझा जो कि प्राज्ञ है। श्रीरामकृष्ण जी का कहना है कि हमारे समय में भक्ति सरसतम और सबसे उपयुक्त मार्ग है। श्रीगुरुदेव श्री श्रीरामकृष्ण प्रेम तक पहुंचने के लिए बड़े उत्साह से इन पथ पर प्रयत्न हूँ।

उसने अपनी पुस्तक का दीर्घक 'ईश्वरत्व की धरती हुई कीर्ति' रखा। इसकी मूमिका में वह लिखती है—“इस पुस्तक को प्रसन्नता से स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि परमात्मा स्वयं प्रस्तुत शब्दा में कह रहा है। प्रस्तुत पुस्तक एक सन्देश-वाहक की भाँति सभी धार्मिक जनो का (मने-बुरे दोनों का) भेजी गई है। जब स्तम्भ (आधार) गिरे तो पुस्तक बहुत समय तक स्थिर नहीं रह सकती है। यह मुझे निश्चित करती है और मेरे रहस्य का उद्घोषण करती है। प्रत्येक मनुष्य को इस सन्देश को सुनने का अभिलाषी है अतः इस पुस्तक को भी बार पढ़ें। किसने इसका सृजन किया? मैं ज्ञान की रचना अपनी मूलताओं के होते हुए भी की थी क्योंकि मैं अपने समर्पण (बर्चान) को रोक न सकी। हे प्रभु तुम्हारी कीर्ति का मंगल गान करने के लिए इस पुस्तक का बिना सजा से अभिहित किया जाए? इसका दीर्घक होगा 'ईश्वरत्व की ज्योति' जो मनुष्य अनन्तता के बिना रहते हैं उन सब ध्यनितियों के हृदय में झिलमिलाती है।

परमात्मा के साथ तादारम्य की धारणाएँ सभी कासों और सभी धर्मों में उपलब्ध की जा सकती हैं। श्रीगुरुदेव श्री श्रीरामकृष्ण ने अपने समय की आवश्यकता को देखा जबकि ब्रह्मज्ञान के सिद्धांत की हनोई की विचार-युक्त प्रकृति ने ईसा के वास्तविक उपदेशों पर आधरण डाल रखा था। अपने समकालीनों को एक अवस्था का विवरण देते हुए या वास्तव में वर्णनातीत भी और जहाँ कोई शब्द नहीं पहुँच सके लयापि उनमें उम एका के धारण्य का वर्णन स्पष्ट एवं सजीवता से किया है। यह पुस्तक सामान्य जन—या बुद्धि रहित मनुष्य विश्वास रता हो—के लिए बड़ी सहायता थी। श्रीरामकृष्ण का परमात्मा और धारणा में सजीव सम्बन्ध और तादारम्य प्राप्य था। अभिव्यक्ति के लिए उनका भावावेग प्राज्ञ उपादानों को

धीनता का। उसने परमात्मा और आत्मा का मानवीकरण किया है और इसके लिए स्पष्ट और सांख्यिक भाषा का प्रयोग किया है। आत्मा में वह स्वयं पुकारती है। परमात्मा न इस आत्मा का सृजन उसके साथ अपनी बंधु की भाँति प्रेम करने के लिए किया है। और वह अपना साक्ष्य प्यार व्यक्त करता है।

उसके समस्त भाव उस ऐक्य के प्रति हैं जो परमात्मा के आभास से प्रारम्भ होकर परमात्मा के उग्राह की उन्नतावस्था में प्रवेश करते हैं। बड़ा आत्मा परमात्मा से मिलती है। कई बार शैलीय परार्थ-विज्ञान सम्बन्धी संश्लेषण के उदाहरणों का प्रयोग करती है। वह धर्मकारण आत्मा जो परमात्मा के अस्तित्व पर विद्यमान करती है, के विषय में बताती है और आत्मा और परमात्मा के मिलन को मदिरा और अन्न की तरह, (उत्कृष्ट प्रभु जो अपनी गायी आत्मा से मिलने की शीघ्रता करता है) का वर्णन करती है।

परमात्मा से प्रेम के लिए वह केवल उत्कृष्ट प्यार की इच्छा है। उस उस वर्ण का आवास हुआ जहाँ समस्त आत्मार्थ परस्पर मिलती है। वह परमात्मा से बिना रात एकीकरण करती थी। सत्य जम उसे मृत्यु के लिए पुकार रहे थे और परमात्मा से आत्मा का सहयोग करने को कहा परन्तु अपने अस्वीकार कर दिया। वह केवल परमात्मा के साथ मृत्यु करना चाहती थी और कहती थी—

मैं मृत्यु करना नहीं चाहती जब तक तुम मृत्यु नहीं करते हो।

मैं तुम चाहते हो कि मैं मृत्यु करूँ

तो तुम स्वयं आओ।

तब मैं प्यार में उल्लसंगी

प्रेम से भक्ति में

भक्ति से अनुभूति में

अनुभूति से समस्त मानवी के अस्तित्व में।

प्रस्तुत पद्य को समझना थोड़ा कठिन है। लेकिन सांख्यिक मृत्यु रक्षकमय आवागमन में जो चेतना के विभिन्न स्तरों को परिभाषित करने के लिए प्रयुक्त होता है उन्हें एहिक प्रभाव प्राप्त करवाने के उपयुक्त बनाता है। आत्मा अपने केंद्र-बिन्दु के निरंतर मृत्यु करती है और चेतना की समस्त अवस्थाओं से अज्ञकार ऊपर चढ़ती है जब तक उसकी दिव्य चेतना पूर्ण चेतना को प्राप्त कर लेती है।

संश्लेषण की शैलीय अपने जीवन काल में ही पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम के द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य करने में लगे हुए हैं और ऐसा माना जाता है कि क्या मृत्यु में भी वह केवल भावात्म से प्रेरित थी अपना परम प्रेम

से जिसने अनियंत्रित कल्पना में सरीर से प्रभावित विचारों को जन्म दिया था यह मानव मन में एक दिव्य शक्ति थी जो ध्यात्मा से प्राप्त और अप्रत्यक्ष इस प्रसंग में एक पवित्र हृदय में स्थलगत हुई थी बड़ी शक्ति के साथ अपने स्वमिक स्रोत की ओर बढ़ने के लिए उसी प्रकार आकृष्ट हुई जिस प्रकार एक लोहे का टुकड़ा अप्रतिहत रूप से चुम्बक की ओर आकृष्ट होता है ।

मैकबिन्ड का प्यार एक अगाध शक्ति थी जो कि ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक बसवती है । प्रेम तीन प्रकार का होता है । प्रथम—बहु प्यार जिसमें सदा माँगने की भावना है देने की नहीं । यह निम्न कोटि का विषयासक्त प्रेम है जो स्वयंसेवा से प्रेरित होता है । द्वितीय—व्यापारिक प्रेम है जो धन ही लाभ साधता है और देतता है कि हानि लाभ से सम्बन्धित है कि नहीं । सभी मानव-वासनाएँ इसी क्षेत्र पर बसती हैं । स्पर्धा हा या ईर्ष्या भूना हो या मालम । सभी इसी धारमन्त्रित व्यापारिक प्रेम के ही फल हैं । अन्तिम-शुद्ध प्रभार का जन्म प्यार है जो सब को धनाने वाला है जिसमें कोई प्रयत्न नहीं कोई ठक और माग नहीं जिससे ईश्वर मसीह ने सभी का बचत सजा । माता अपने बालक के लिए अन्ति तक का वाप लह सकती है । मैगदर्बर्क की मैकबिन्ड ध्यात्म-विस्मृत-मी हाकर परमात्मा के बरा म्बल पर गिरती है । यह स्वमिक प्रेम है दिव्य प्रेम है । यदि हम केवल इस शक्ति से परिचित ही जाएँ ता हम मैकबिन्ड के परमात्मा से अटूट सम्बन्ध को समझ सकते हैं । इससे उत्पन्न शक्ति अकेले ही मृड में जाने के लिए पर्य और बर्म के बिना ही परमात्मा से एकीकरण के प्रयत्न के लिए समर्थ थी ।

ध्यात्म-चेतना में ध्यात्मा दोनों का मिलन स्थान जाती है । महा परमात्मा ध्यात्मा से बातें करता है और ध्यात्मा इन्द्रियो से । इस रहस्यमय बिलु पर शरीर और ध्यात्मा मिलते हैं । परमात्मा और इन्द्रियां ध्यात्मा में मिलती हैं और यदि मनुष्य अपने अहं में मीन न हो और जमबद्ध (नियमित) गंवार के अनुकूल हो ता यही एकता है ।

ध्यात्मा जिसकी प्रकृति सर्वान्तरायामी सर्वशक्तिमान और वास्तव है इस शरीर के कारागार में बन्धी बन्धन के लिए क्या धाई ? यह तर्कहीन है । धारीरिण चेतना में हम यह नहीं जान सकते कि साम्बिक पवित्र और पूर्व अचक्ष्या में बहु क्या है ? ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार आगुन अचक्ष्या में हमें बहू मामुम नहीं हाता कि गहरी नीर क्या है ? जब तमी पर में धाव मयी हुई हो तो हम बिना कारण पूछे ही सर्वप्रथम अन्ति का नाम करते हैं । जब ध्यात्मा को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान होना है तो वह अचक्ष्य अपने दिव्य स्रोत की ओर भागती है । तबिन

उसका यह गृह-प्रवेश शरीर कपी बाह्य से ही सम्भव है। ज्ञान और विवेक ही साधन है जो कि शरीर में इसकी चेतना मन और बुद्धि कपी यन्त्रों से सीके जा सकते हैं। भवएव शरीर हमारा प्रमुख उपकरण है। इसमें हमने अपने अस्तित्व के लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त होना और आत्मानुभूति होना अनिवार्य है। इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं। जैसा कि उमर वीय्याम ने कहा—

“बा तुम यहा प्रह्व नहीं कर सके  
उस उस क्षेत्र में जैसे प्रह्व करोम ?  
वहां न शरीर और न जगता है।”

विचार एक बड़ी शक्ति है जो कि हमें आत्मन आत्मा का ज्ञान करती है। लेकिन वही विचार अवरोधक भी है जो कि सोहे की भांति हमारे मार्ग को अवरोध करता है। जब वैयक्तिकता के मिटने का लक्षण हो विचार हमें जगता का उस मार्ग पर जाने से सज्ज करता है वहां विवेक और चेतना काम नहीं देते। ठीक ऐसा ही मैगदेबर्ग की मरुचिह्न के साथ हुआ। परमात्मा द्वारा आत्मसाधन देने के परभाव कि उसकी आत्मा परमात्मा के साथ एकत्र प्राप्त करेगी उसकी समस्त इच्छाएं और प्रवृत्त रहस्यमयी एकता की ओर निर्दिष्ट हुए वहां तक का प्रतिबन्धन होता है और समस्त समस्याओं का समाधान हो जाता है। लेकिन इन्द्रियों ने विरोध किया। परमात्मा के साथ मिलन का निषेध करने को कहा क्योंकि आत्मा उसके प्रवृत्त क्षेत्र को सहन नहीं कर सकती थी और जिस प्रकार मार्ग मास की हिम को सूर्य का प्रकाश पिघला देता है उसी प्रकार ईश्वरत्व का वैश्वगुण प्रकाश उसे आत्मसात् कर लेगा। उसके मन में यह तक प्रवृत्त किया होगा कि क्या सत्य है और क्या असत्य है ? उसके समय के समस्त विवादास्पद प्रश्न भी उसके हृदय में प्रवृत्त उठे होंगे ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर केवल परमात्मा के पास था। यह ब्रह्म-चिन्तन का विद्वान्त जो कभी-कभी मानव प्राप्त करते हैं और परमात्मा की प्राणात् सुनते और समझते हैं, जलकारों से सम्बन्धित है। मरुचिह्न की प्राणात् अपने परमात्मा की प्रवृत्ति से पूर्ण भिन्न हो उठी थी और सम्पूर्ण सम्बन्धों का आत्म (निष्करण) करते हुए उसने निजा

मत्ती जल में डूब नहीं सकती  
पसी वायु में नहीं गिर सकते।  
परमात्मा धूल में समाप्त नहीं हो सकता  
यह केवल अद्विक बेदीप्यमान होगा।  
परमात्मा ने सब प्राणियों की सृष्टि की



ताकि अपनी प्रकृति अनुसार जीवन-यापन करे  
 और मैं अपनी प्रकृति का भी कैसे विरोध करूँ ?  
 जो परमात्मा से एकीकरण की इच्छुक है  
 वह मेरा आत्म पिता है  
 और मानव मात्र में मेरा भाई है  
 प्यार में मेरा पति है  
 और पिरम्यता में मैं उमकी हूँ ।

इस प्रकार प्रभु के प्रति प्रेम उसके साथ आत्मा के तादात्म्य होने के परचात् ही  
 प्राप्त होता है । मैंकपिस्तु अपने दीर्घी प्रकाशान सेनों में परमात्मा के साथ एकता को  
 बहुत स्पष्ट और प्राज्ञ विचार में प्रगट करती है जो जर्मन आध्यात्मविद्या के  
 अनुभव है । उपसंहार स्वरूप हम उसके दीय पद्यो को उद्धृत करते हैं, जिनमें उसका  
 केवल कवित्वमय विचार ही नहीं अपितु उसका आध्यात्मिक अनुभव भी है ।

संसार का अतिक्रमण कर  
 सब इच्छाओं को छोड़ कर  
 और अहं को पराजित करके ही  
 आत्मा परमात्मा से साक्षात्कार करती है ।  
 यदि संसार तिरस्कार करे  
 तो उससे कोई शोक नहीं  
 दार्दीरिक घाघात से आत्मा  
 रुम नहीं होती ।  
 यदि दानव दुःसाहस करे  
 आत्मा इच्छा चिन्ता नहीं करती  
 वह केवल प्यार ही प्यार जानती है  
 और कस नहीं ।

एवं पुन  
 तुम कबल प्यार डार ही  
 अपने को स्वतन्त्र अनुभव कर सकते हो  
 सभी उपदेग निस्मार है  
 क्योंकि मैं प्रेम में रिक्त नहीं हो सकती  
 मैं प्यार की कारण में बंधना चाहती हूँ  
 जहाँ का भी प्यार है वहाँ मैं जाने में नहीं रुक सकती

आहे जीवन में हो या मृत्यु में ।  
 यह मूर्खों की मूर्खता है जो कि  
 बिना शोक और मानसिक बेदना के रहते है ।

कुछ पाठकों को सम्भवतः ऐसा धामात हो कि नाबनाएं मस्तिष्क को पराश्रित करती हैं इसलिए सैमवेवर्म की सैकचित्त के रहस्यमय कवित्व में शार्मनिष्ठता का धामात है । परन्तु निम्न पद्य से पता चलता है कि किस प्रकार अनुभूति के तत्त्व को सूत्रबद्ध रूप के साथ कहम में बहु धर्म की —

प्रेम ज्ञान के बिना  
 आत्मा के लिए धर्मकार है  
 ज्ञान बिना आत्माधर्मि के  
 आत्मा के लिए यमलोक (नरक) की मातना है ।

## नार्विच की जूलियन

नार्विच की एंजेस जूलियन के व्यक्तित्व में धार्मिक प्रतिभा का एक नारी के स्वरूप में पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है जिसकी तुलना यूरोप के मुख्य भूखण्ड की महान् महिला-सन्तों से की जा सकती है। चौदहवीं सताब्दी के लगभग सुदूर उत्तरी देशों के धार्मिक जीवन में रहस्यवादी प्रभाव की एक सञ्जत धारा प्रवाहित हुई। जिसकी परिपक्व जर्मनी में एडवार्ड टासर, सुओ और निचले देशों में रसिक के नार्विच में हुई। इस धारा का विस्तार हमारे अपने द्वीपखण्ड के तटों पर भी हुआ और जो अपने अक्षरों पर रोम की कृतियों में 'हरमिट ऑफ हैमपोल' में 'पूर्णता का मापदण्ड' के लेखक वास्टर हिस्टन में अज्ञात नाम से सिगनी गई प्रसिद्ध "अज्ञान के मेघ" में और एक अकेली छोटी-सी नार्विच की जूलियन की पुस्तक 'दिव्य प्रेम का महत्व' में छोड़ गई है।

इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि रहस्यवादी लेखकों के इस छोटे से समूह में भी परस्पर किसी प्रकार का प्रत्यक्ष प्रभाव अथवा सम्मिलन हुआ हो। इस बात के तो और भी कम प्रमाण हैं कि समुद्र पार के उनके महान् समकालिकों से किसी प्रकार का आदान-प्रदान हुआ होगा। आवागमन के सीमित और कठिन साधनों के उन दिनों में वे अपनी स्थानीय सीमाओं के पार पूर्णतः अज्ञात थे। बहुत सम्भव है कि उनमें से प्रत्येक दूसरों के लिए अज्ञात था। उनकी प्रसिद्धि विद्युत् की धड़कियों की उत्पत्ति है और वह पूर्णतः उन लेखकों की मृत्यु के उपरान्त हुई और पुनः खोज निकाली गई उनकी कृतियों से प्रसूत है। इन छोटे से और अज्ञात समूह में भी यदि कोई सर्वाधिक अज्ञात रहा तो वह भी अत्यन्त बिनयशील नार्विच की एंजेस।

उम पर सिगने का अर्थ अनिर्धार्यतः उनकी पुस्तक का वर्णन करना है क्योंकि उसका सम्बन्ध में ज्ञात कुछ ठप्पा का एकमात्र अंग ही पुस्तक है। इसके साथ ही उसके गुण इस तरह के हैं कि अपनी पुस्तक में सेविना हमारे सम्मुख स्पष्ट रूप से प्रकट हुई है। यह स्पष्ट है कि कोमल और प्रभावशाली मानवता तथा पवित्र पारदर्शी आध्यात्मिकता के इनकी मादकी और स्पष्टता के साथ अज्ञान करने वाली पुस्तकें बहुत कम हैं।

अपनी विचार दृष्टि की अराबि में जूमियन कई वर्षों तक "एनेस" या रेबद्युब (मध्ययुगीन इंग्लैण्ड के नाबिच जीवन में सम्मानित पदवी) रही। उसे यह पदवी कानून के आचार पर मिथी थी और उसने नाबिच के सेंट जूमियन वर्ष के पूर्वी भाग के बहिषी हिस्से का कमाटा (त्रिसती तीस वर्ष भी बेबी जा छकती है) धनिकार मे कर रखा था। यहीं वर्ष की दैनिक सामान्य प्रार्थना में माग सेकर ईसाई रहस्यों का ध्यानपूर्वक मनन करते हुए उसने अपना जीवन बिताया और इसी नमरों में उसे वे अनुभूतियाँ (जिन्हें वह प्रकटीकरण कहना पसन्द करती थी) प्राप्त हुईं जो उसकी पुस्तक का आधार हैं। उसके परिवार के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं केवल अनुमान लगाया जा सकता है कि वे सांसारिक वैभव से सम्पन्न थे जिससे कि वे उसके द्वारा अपनाये गए जीवन के इस ढंग के उपरान्त भी उसे सहायता देते रहे। अनुभूतियों के समय जिसे कि वह विस्फुल ठीक विधि देती है वह कहती है कि 'वह तीस सास है महीने की थी। एक रिफार्ड सेसक के अनुसार वह १४१३ ए० डी० तक जीवित रही। इससे स्पष्ट होता है कि वह ७० वर्ष की आयु से अधिक जीवित रही। बीसा कि वह स्वयं को धर्मिलित बनित करती है यह भी प्रकट होगा कि उसकी पुस्तक स्वयं अपने हाथों से न लिखी होकर लिखवाई गई है। बिना परिस्थितियों का उसे सामना करना पड़ा उनका अनुसार उसके अपने सन्नों में यथासम्भव प्रच्छा हुआ है।

(अध्याय २) ये अनुभूतियाँ ए० डी० १३०३ की ८ मई को एक सामान्य प्राणी को हुईं। जिस प्राणी ने पहले से ही तीन ईस्वीय पुरस्कारों की इच्छा की थी उनमें प्रथम बासनाधों से पुरित उसका मन था दूसरी तीस वर्ष की युवावस्था में धारीक रोग के और तीसरी ईस्वीय बेम के रूप में तीन बास ये।

बीसा कि पहली स्थिति में मैंने सोचा था कि मुझमें ईसा के प्रति प्रेम की भावना थी परन्तु ईस्वर की कृपा से मैंने उसकी और अधिक इच्छा की—और इसीलिए मैंने धारीक दृष्टि बाही—

"दूसरी अनुभूति मेरे मन में पापों के लिए दुःख के साथ आई। मैंने स्वच्छन्द रूप से मृत्यु के समान कठोर बीमारी बाही कि मुझे—पवित्र वर्ष के समस्त संस्कार उपलब्ध हो सकें मैं स्वतः बाहरी थी कि मैं मर जाऊँ और मुझे देखने वाले सभी प्राणी बीसा समझ लें—मैंने धारीक रूप से और प्रेत रूप से (यदि मैं मर जाऊँ) शैतान की धारी ममानकता और दुःखन के साथ सभी पीड़ाधों की इच्छा की। केवल धात्मा का जसा जाना कभी नहीं बाहा। इन दोनों इच्छाधों को भी एक शर्त के साथ बाहा। मैंने इस प्रकार कहा—'परमात्मा यह तू जानता है मैं क्या होऊँगी-यदि वह तेरी इच्छा है—कि मैं शून्य होऊँ परन्तु मैं बीसा ही हूँगी—बीसा तू बनाएगा।"

“तीसरे पुरस्कार के लिए—मैंने अपने जीवन में तीन चीजों की एक शक्तिशाली इच्छा धारण की जिसे कहा जा सकता है कि पापों के लिए दुःख की बोट दूसरों को सहायता करने की दयालुता की बोट और इच्छापूर्वक ईश्वर पर भरोसा रखने की बोट। और यह सारी अन्तिम प्रार्थना मैंने बिना शर्त के प्रस्तुत की। पहले कही गई ये दो इच्छायें मेरे मन से पृथक हो गईं परन्तु तीसरी मेरे ध्यान को निरन्तर एकाग्र किए रही।

(अध्याय १) और जब मैं साढ़े-तीस वर्ष की थी ईश्वर ने मुझे शारीरिक श्वाभि मेरी जिसमें मैं तीन दिन और तीन रात तक पड़ी रही और चौथी रात को मैंने पश्चिम चर्च के सभी संस्कार पूरे कर लिये और आहूति कि मैं दिन होने तक जीवित न रहूँ।”

इस प्रकार वह अपने तीनों दिन तक झुसती रही। और तब मेरे शरीर का अशोभाय मृतप्राय था जैसा कि मैं अनुभव करती थी—मेरे अन्तिम समय के लिए चर्च का न्यूट्रेट बुला लिया गया था और जब वह घाया मैंने अपनी आँखें स्थिर कर लीं पर बोल नहीं पाई। उसने मेरे चेहरे के सम्मुख अक्षर रखा और कहा—‘मैं अपने स्वामी और मुक्तिदाता की प्रतिमा भाया हूँ।’ इसी समय जबकि वह अपनी बुझती हुई दृष्टि को इस प्रतिमा पर एकाग्र कर रही थी उसने इसे जीवन का स्वरूप समझा जिससे कि (अध्याय ४) अज्ञानक ही मैंने (बादों की) माना से रक्त टपकते देखा जो गर्म ताजा और बहुत घणिक मात्रा में गिर रहा था।

अपने नेत्रों के सम्मुख प्राप्त की प्रतिमा को जीवन धारण करते बचकर उसे यह प्रथम धारण-प्रकाशन हुआ जिसे स्वप्न दृष्टि की संज्ञा भी नहीं। और वह उसकी उपस्थिति स्थापित करती है जिसमें परबर्ती धारण प्रकाशन हुआ। इसमें से प्रथम पन्द्रह प्रातःकाल चार और नौ के मध्य हुए, जिस समय के बीच में उसे अपनी बीमारी की पीड़ा या कष्ट का अनुभव नहीं होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि शारीरिक या बाह्य दृष्टि (भावनात्मक या धारिणिक) और शुद्ध ज्ञानात्मक स्तरों पर एक नियमित बदलाव हुआ क्योंकि अपने प्रथम धारण-प्रकाशन के नियम में वह स्वयं बहती है—“यह सब तीन प्रकार से दिखाई दिये जिसे इस तरह कहा जा सकता है शारीरिक दृष्टि से मेरे ज्ञान में अक्षि में निहित सन्दी और धारिणिक-प्रेतात्मक दृष्टि से।” प्रथम प्रकाशनों के पूरे समय वह अपनी आँखों की प्रतिमा पर टिकाये रही क्योंकि वह कहती है (अध्याय १४) ‘इस समय में ज्ञान से दृष्टि हटा सकनी थी परन्तु मैं चाहूँ नहीं कर पाई। क्योंकि मैं अभी भाँति जानती थी कि जब तक मैं ज्ञान का निहाली हूँ मैं निश्चिन्त और सुरक्षित हूँ।’

पन्द्रहवें धारण प्रकाशन की समाप्ति पर तब कुछ बल हो गया और मैंने धारण

कुछ नहीं बेसा और चीज ही मीने अनुभव किया कि मैं जीवित और बुझ रहूँगी और तुम्हें ही मेरी व्याधि पुन बापस आ गई जैसी कि वह पहले थी। और इस प्रकार मैं निष्कल और चुपक हो गई जैसे मुझे कभी धारण मिला ही न हो। और मैं धारीरिक व धाम्पारिक सुखों की प्राप्ति में धसमर्ष होकर धारीरिक पीड़ा से बुरात्मा के समान कराने लगी।" (अध्याय एक १५)। धारीरिक पीड़ा के पुनरागमन के साथ ही उसमें बेसी गई बाधा की मयार्थता और उत्पत्ता के प्रति सम्यह उल्लास हो गया। वह कहती है—“यहाँ पुन बेस सक्ते हो कि मैं मेरे 'स्वयं' में क्या हूँ। परन्तु हमारा सिष्ट परमात्मा मुझे यहाँ नहीं छोड़ता। और मैं उसकी क्या पर बिश्वास कर रात तक लेटी रही और तब मैंने सोना शुरू किया। वह स्वयं रूप में धीवान के प्रेठ से प्रदाहित की जाती रही कि 'धीवान मेरे मन पर बैठा है—और वह धपता मुझ मेरे बेहरे की धोर बड़ा रहा है—मैंने ऐसा कभी नहीं देखा—यह महा दुःख मुझे धोते समय दिखाई दिया और ऐसा कोई दुःख नहीं था। परन्तु—हमारे सिष्ट परमात्मा ने मुझे जानने का साहस दिया और कठिनाई से मैं जीवित प्राप्य कर सकी।" इसके बाद धर्मिय ध्यात ज्ञान हुआ जो उपसंहार स्वरूप सोसहृदां या और पहले के पत्रहों की स्वीकृति था। (अध्याय १७) और तब परमात्मा ने मेरी धाम्पारिक धार्थें लोसी और मेरे हृदय के मध्य स्थित ध्यात्मा का बर्धन कराया। मैंने ध्यात्मा को देखा जैसे कि वह धग्गहीन संसार हो और जैसे कि वह बरबार्थों से मुक्त राज्य था। और—मैं समसती हूँ कि वह प्रार्थनाओं से भय नगर है जिसके बीच में ईश्वर और मानव—हमारा पिता मसीह बैठा है—और मेरी वृष्टि में जो स्थान हमारी ध्यात्मा में मसीह ने ग्रहण किया वह बिना धग्ग हुए उसे कभी हटायेगा क्योंकि हममें ही उसका सबवे प्याठ बर है और उसकी धग्गहीन एकाग्रता है। और इस रूप में उसने दिखाया कि मनुष्य की ध्यात्मा के निर्माण में उसका भी हाथ है, जो सम्योय प्रबायक था। जिस प्रकार से परम पिता प्राणो बनाता है और ठीक उसी प्रकार से मानवपुत्र प्राणो बनाता है उसी प्रकार मनुष्य की ध्यात्मा जो प्रेठ बनाता है वह भी पबित है, इस प्रकार वह हो गया है और इसलिये धाग्गी की ध्यात्मा के निर्माण में धाग्गीयों से मुक्त निर्बस ने धसीम ध्यातव्य लिया। क्योंकि उसने देखा कि ध्यात्मा की तुलना धनन्ध ही हो सकती है। इन धग्गों में जूमियन धपनी छोटी-सी पुस्तक का धार हमारे सामने प्रस्तुत कर रही है। यह पुस्तक धपनी मयार्थ भारत-मनुषियों पर बीस बयों के मनन क उपराग्य लिखी गई। यह पुस्तक एक प्रीङ्ग और प्रदीप्त बुद्धि का प्रामाणिक धग्ग समसी जाती है। हममें उस समय के दीरण में समय-समय पर होने वाली ध्यात्मा

प्रभुमूर्तियों का मोक्षिक विषय सूत्रे हुए धार्मिक प्रकार उद्भासित किया गया है। जब तक यह परम्परा रही है कि इन काग की धर्म्य रहस्यात्मक वृत्तियों में तलतल और बर्गीकरण की दृष्टि से धायस्वक बातों को ही दखा जाता था। यह वास्तव में समानता बहुत कम है। जैसे भी यह अपने समय में युग के महान् धार्मिक धाम्भोमन की एकमात्र महिमा है जिसने निम्न रूप में कुछ किया है। क्रिस्तिन अपने मन की स्वच्छन्दता में भी एकाकी है और सामने प्रस्तुत बातों पर उसके मन का धम्भीर व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी अद्वितीय है। एक साधारण अधिक्षित प्राणी। यह अपने समय के रहस्यवादी जीवन के समदर्शी और कृत्वीन पुरुषों की दार्शनिक पृष्ठभूमि से सर्वथा अलग है। उस समय पूर्वी रहस्यवाद से सम्बन्धित प्लेटो की विचारधारा के बिना उसमें कठिनाई से ही निर्दिष्ट जो कि ईगर्ट् सरमत्रेक प्रमवा प्रजात नाम से सिद्धि गई "प्रजात के बादल" वृत्तियों में अद्वितीय गंध प्रदान कर सकी। क्रिस्तिन साहस के साथ मन के अद्वितीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। ऐसा प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। यह सामान्य रूप से स्वीकृत धर्मों में अद्वितीय नहीं थी जिसमें कि अन्धकार के मित्राणों के साथ समानता और सहसास्वत साधारण पर तपाकविन बुराई के सिद्धांत को स्वीकृत किया जाता है। बल्कि यह अधिक मौखिक और साधारण धर्मों में अद्वितीय थी जिससे कि उसकी निर्दिष्टि की दशाओं का पूर्ण भाग्यता और स्वीकृति प्राप्त थी। यह अपनी जीव विधि के तल में धारमा की धारों के माध्यम अपने मुक्तिदाता की प्रतिमा की ओर देखती थी। और यदि उसकी अन्धकार में प्राप्तिहार होने के लिए उसको एकत्र होने की अपनी इच्छा के धर्मपर पर कुछ कहती भी है तो उसमें धारने स्व' के समीकरण का प्रसन्न ही उही प्रकार खड़ा नहीं होता जिस प्रकार कि किसी प्रतिधेष्ठ दैविक प्राणी में धारने व्यक्तित्व का धाम्भ्यपूर्ण विमर्शन करने की धर्मिक भी इच्छा (धर्मिकार ता विरुद्ध नहीं) नहीं विचारती नहीं देती। इसके स्थान पर हम मूल रूप में एक धर्म्य विमर्श और पवित्र धारमा की साक्षी हर जगह पाते हैं जिसे अती प्रकार से (निगी में कहा है अतुरता-युर्वक) अपनी धम्भेक्षणीय और अद्वितीय मानक स्थिति का ज्ञान था और हमसे भी अधिक स्पष्ट रूप से यह उस पीढ़ा धर्मिकार और धर्म के प्रति सचेत थी जो उसके जीवन की विधि हुई दशा में उस विधि से संयुक्त थी। इन प्रकार ऐसा लगता है कि उसका मन अद्वितीय और धर्म के सम्बन्धों को लेकर ही सोचता था और कहीं-कहीं हम एक विरुद्ध और महरे धारधर्म को प्रेम और धारमा के स्वर में जिना हुआ देखते हैं जो हमने हमारे पर के और गिष्ट स्वामी की बात कहता है।

प्रायः के कारण उसके समय में प्रबहुमान शार्थिक धीर सैद्धांतिक चारों  
 वह प्रकृति रही धीर संभवतः यह भी उसके मन की स्वच्छता का कारण  
 रहा है। जिस जीवित ईश्वर ने उसे बनाया धीर ब्रह्मचर्य रखा उसके प्रेम धीर  
 कठना पर पूर्ण धीर प्रसन्न भावना पर भी कोई संशय नहीं रह जाता। फिर भी स्वयं  
 के प्राची होने की गहरी चेतना नहीं भी कामर धीर मानक नहीं बनती, उसका  
 पूर धीर उत्तर-ब्रह्म से संयुक्त वह वैतनाय (अपने प्राणीपन की मूलभूत  
 स्वीकृति) उस समय की रहस्यमयी आत्माओं की समानता पवित्र बोधभाषों धीर  
 उसकी स्वयं की 'भूमिका' से उसे बचाता रहा।

अभी तक भूमिका की पुस्तक के पचास वस्तु-विषय का अध्ययन उसके युक्तों के  
 कारण सम्पूर्ण-जनक ढंग से नहीं हुआ है। प्रथम तो वह मानव-शास्त्र के रूप  
 में है रहस्यवादी बाद में है धीर वह भी इन प्रश्नों में कि उसका ज्ञान धीर विकास  
 चेतना के तर्क से परे स्तरों पर हुआ। ईश्वर द्वारा निर्मित मानव आत्मा की  
 सही स्थिति धीर मूल्य पर उसे कोई संशय नहीं है (जैसा कि उल्लिखित १६वें  
 अध्याय-प्रकाशन में स्पष्ट होता है)। वह फिर कहती है (अध्याय १० एत १२)  
 'मानव आत्मा ईश्वर से ही निर्मित है जिसने कि समान तर्कों का प्रयोग इसके  
 बनाने में किया है वह ईश्वर को देखती है वह ईश्वर को समाविष्ट किये  
 रहती है धीर वह ईश्वर को प्रेम करती है। जहाँ नहीं ईश्वर ने आत्मा  
 में धीर आत्मा ने ईश्वर में आनन्द लिया वह प्रथम रूप से आनन्द-जनक  
 है।" इस प्रकार यह पहली बार निर्दिष्ट किया गया जिसमें धारणा  
 प्राप्त होमी। परन्तु हमारा प्रबहुमान जीवन अपनी वैदिकता में नहीं  
 जान पाता कि 'स्व' क्या है धीर उन हम स्पष्टता से देख सकते कि हमारा  
 स्वामी ईश्वर आनन्द से परिपूरित है—वह स्वभाव धीर धीस (युक्तों) से हमसे सम्बन्ध  
 है, हमारी सम्पूर्ण शक्ति के साथ हमारे 'स्व' को उसकी सम्पूर्णता धीर प्रथम  
 आनन्द की प्राप्ति के लिए जानना चाहिए।" (अध्याय १० एत ६।)

अपनी शक्तिवासी आत्मा धीर इतने मन्मीर तथा अतैज मन के साथ यदि भूमिका  
 रीतान की यथावत्ता से मनीर्वाति साधवान धी तो यह आनन्द-पर्यवसान की प्रक्रिया  
 से ही संभव हुआ था। इस प्रकार वह दुःखी धीर जन्म गई थी—जैसा वह देखती  
 की चीजें ईती ही दिखाई देती थी। क्योंकि उच्च के स्वामी की स्पष्ट बोधना  
 की कि मानव बुद्धि की परिधि से परे समस्त प्रकृतीकरण के उपरान्त भी सब कुछ  
 प्रकृत होया धीर सब कुछ प्रकृत होया हर प्रकार की चीज प्रकृती होयी।  
 (अध्याय २० वू. पाई एत)। फिर भी हमारा विश्वास है—कि आनन्ददायक



त्रिपुट ने मानव रूप को अपनी प्रतिभा और इच्छा के अनुरूप गढ़ा है। इसी प्रकार हम जानते हैं कि जब मनुष्य पाप में इतनी गहराई और प्रसन्नता से फँस जाता है जब अपनी मानवता की पुनः प्राप्ति का एकमात्र उपाय यही है। जिसने मनुष्य बनाया है और जिस प्रकार कि त्रिपुट के समान अपने मंस रूप में बने हैं वह चाहेगा कि हम अपनी पुनःनिर्मिति के बुगों के कारण-अधीन स्वर्ग में हमारे मुक्तिदाता ईसा मसीह के समान हो। (अध्याय १०) इसलिए यह अच्छा होगा कि हम उसके द्वारा दिखाई गई चीजों से डरें। उसने इसीलिए ये चीजें दिखाई कि हमें वह उन्हें बताने सके। जिसके जानने से हम उसे प्यार कर सकें और समान रूप से उसमें घनत्व प्राप्त की क्षमता कर सकें।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि क्रिस्तियन धारणा और उसके निर्माण-कर्ता के साम-शायक और उत्तरदायी सम्बन्धों की प्रकृति के विषय में सन्देश-रहित थी। संघर्ष और सन्तुलित तथा मन्मीर और दीप्त वह समस्या के मूल कारणों का धारणा-ज्ञान प्राप्त कर सकी। क्योंकि वह कहती है (अध्याय २४) "मैं अक्षर बुझी और शोकग्रस्त अपने स्वामी को निहारते हुए मयमिठ स्वर में कहती थी— प्रभो! अच्छे स्वामी! तेरे प्राधिमों को पापों से बचाने वाली बोट के बाह भी कैसा तब अच्छा होगा? और यहाँ मैं इच्छा रखती थी कि जितना चाहूँ मैं कर सकी इस सम्बन्ध में कुछ और स्पष्ट घोषणा हो जिससे कि इस सम्बन्ध में मुझे शान मिल सके। और इसका हमारे बरबादी स्वामी ने बिनभ्रता और प्रसन्नता में उत्तर दिया और बताया कि धारम का पाप अब तक बसा था रहा है और इतना इतना बड़ा मुक्तान है जैसा कि संघर्ष के घन होने तक भी नहीं हो सकेगा। यह जाने उसमें समझाया कि धारम के अनुसन्धीय पाप के बाद धारम-सुधार ही ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय है और माननीय है। और इस प्रकार इस विद्या से उसका धर्म है कि हमें सावधानी रखनी चाहिए, क्योंकि मैं बहुत-सी हानियाँ को डीक कर दिया है तो तुम्हें जानना चाहिए कि यह मेरी इच्छा है कि उसमें कम जो कुछ होगा उसे मैं डीक कर दूँगा। और फिर 'सर्व' के दृष्टान्त वाले सुन्दर २१वें अध्याय में— "जब धारम गिरा ईश्वर का पुत्र गिरा क्योंकि स्वर्ग में त्रिपुट एकात्मता के कारण ईश्वर का पुत्र धारम से अलग नहीं होगा (क्योंकि मैं धारम का धर्म मनुष्य-मान समझती हूँ)। धारम पीचन स मृत्यु में विवाद-ग्रस्त संसार की गहराई में और उसके बाद नरक में गिरा ईश्वर का पुत्र भी धारम के साथ कुमारी के गर्भ में आया जो कि धारम को नरक सुन्दर पुत्री थी और दग घन के लिए स्वर्ग और पृथ्वी पर धारम का बसब स बचाने के लिए और बल-पूर्वक उसे नरक से निष्कास किया—

धीर इस प्रकार हमारे भण्डे स्वामी ईसा ने हमारे कर्मक को अपने ऊपर ले लिया धीर इसलिए हमारा पिता अपने प्यारे पुत्र ईसा पर सने कर्तक से ज्यादा हमारे लिए निश्चित नहीं करेगा।”

विषय प्रेम के बीबी प्रकाशन पुस्तक में हम एक सुबास-युक्त एकाकी व्यक्तिरूप के परिचय का लाभ पाते हैं जो कि उसके अपने समय के सबसे अधिक महत्त्व के 'साथी ईसाइयों' के लिए चिन्तन से घटित रूप से प्रदीप्त है—जिनके लिए वह लिखती है। इसलिए उचित होगा कि हम उसी के अन्तिम शब्दों के साथ इस लेख को समाप्त करें—“धीर इसी समय से जब कि मुझे बीबी प्रकाशन दिखाये गये मैंने अचरित बाह्य कि इस की सारी ई कि हमारे स्वामी का क्या अर्थ था। धीर समयमय पत्रह या कुछ अधिक वर्षों के उपरान्त इसका उत्तर छाया रूप से—यह कहते हुए प्राप्त हुआ 'इस बीज में अपने स्वामी के अर्थ को साक्षी देना चाहती हो? अक्षी तरह से हो प्रेम! उसका अर्थ था। किसने तुम्हें यह दिखाया? प्रेम! उसे कहाँ दिखाया? प्रेम! उसी में उसे पकड़ो धीर तुम उसी में जान कर सक्षी से सकोगे। परन्तु अन्य किसी भी अज्ञात वस्तु में तुम उसे अभी नहीं जान सकोगे धीर न साहस कर सकोगे। इस प्रकार मैंने जाना कि हमारे स्वामी का मतलब प्रेम है। धीर मैंने उसे पूरे विश्वास के साथ सभी चीजों में देखा कि हमें बनाने से पूर्व ईश्वर हमसे प्यार करता था। जो प्यार न अभी कम बढ़ा धीर न पड़ेगा। धीर इसी प्रेम में उसने अपने सारे काम किये हैं—धीर इसी प्रेम में हमारा जीवन चलता है। हमारे निर्माण में हमारा प्रारम्भ है, परन्तु जिस प्रेम से उसने हमारा निर्माण किया है वह प्रेम उसमें अनादि है जिस प्रेम में हमारा प्रारम्भ है। धीर वह सब कुछ हम ईश्वर में चलता रूप से देखते हैं। प्रभु ईसा इसकी अनुमति दें। आमीन !’

नारियन की श्रुतिपत्र का अन्वेष अपने भास्य की पूर्णता के साथ उसके अपने समय में ही कुछ प्रतिष्ठापित हुआ था धीर संभवतः उसके बाद इससे भी कम बार में प्रतिष्ठापित हुआ। यह बहुत प्राचीन समय धीर परम्पराओं से सम्बन्ध है जिसकी कुछ छाया अभिव्यक्ति ईसाई अर्थ के पूर्ण पाठकों में देखी जा सकती है।

## सियना की केचेरिन

महात्माओं की सिद्धि और सम्मान-सूचक नामावली में कुछ ऐसी विभूतियों के नाम भी हैं जो अपने जीवन काल से ही साधु-वृत्ति के लिए ख्याति पा चुकी थीं। जगता है वे जीवात्माएं ईश्वर द्वारा इस भूमिका के लिए पूर्व-निश्चित प्रवृत्ति उसकी अपनी मनचाही होती है। ऐसी महान् ध्यात्माओं की पुनीतता बचपन में ही संसार पर प्रभाव डालने वाली होती है। केवल छ वर्ष की अवस्था में सर्व प्रथम और इसके उपरान्त जीवन में धर्मको बार-बार ही ईश्वर की सत्ता का साक्षात् सिन्धुने प्रसौदिक ध्यानन्द के रूप में प्राप्त किया था ऐसी सियना की केचेरिन का स्थान सत्य महात्माओं में निःसन्देह बहुत ऊंचा है।

मार्च १३४७ को सियना के फ्लोरेंटा नामक स्थान में केचेरिन बेनिनकासा का जन्म हुआ। अपने पिता माइकोमो बेनिनकासा और माता सापा की वह २३वीं संतान थी। उसके पिता सफल रंगरेज थे। वे बड़े ही लोकप्रिय तथा धर्म निष्ठ सत् पुरुष थे। इसके साथ ही उनकी बर्नफली सापा योग्य तथा मेहनती गृहिणी थी। यही नहीं वह भूल कर भी अशुभ भाषण नहीं करती थी। रंगरेज एक बात का पक्का था। वह अपने घर में धार्मिक और धनार्थक बातचीत नहीं होने देता था। अपनी माता से केचेरिन ने परिचय करना सीखा परन्तु पिता से जब सप्ताहवार और धार्मिक भाषण बसीहूत के रूप में प्राप्त हुई।

यदि हम आज से साढ़ पांच सौ वर्ष पूर्व अपनी दृष्टि टांमें तो हमें मरोगा किने हम आपण में एक दूसरे का हाथ पकड़े करती धोर चले या रहे वो मन्हे बातचीत की बुझनी-सी दासक देनीगे। बच्चे हैं कंपनीन जब ६ वर्ष और उसका साल सवा साल बड़ा भाई स्टपजो जो अपनी बड़ी बहन बोना बनचर छे मिलने गये थे।

उने ही बम्पोरीज की पहाड़ी पर स्थित ठारस्वी डामीनिचन के पिर्जापर के पास बच्चे पठने के देरीन ने धाकाय की धोर दसा धोर तनी उसकी गडर के सामने सग्या के जूमित प्रकाश में एक अतिथीय सिहासन धाया। इस पर ईसा मसीह सत्य पीटर, सत्य पाम और सत्य जोवन बैठे थे। बच्ची धावचर्यान्वित हुई ईसा मनीह मुस्कराये। धायीर्वा के लिए उन्हणे दो उंसिमा उठई।

धातुर माई ने बहिन को इस प्रसौकिक स्थान से पुनः संसार की घोर बाँह पकड़ कर लीब लिया। बेचारी नन्ही बालिका उस प्रसौकिक घामा को जिसमें वह इस समय तक मन्न थी छोड़ आई। वह चुपचाप अपने माई के साथ घर की घोर बड़ी। उसने इस हाकी को देखने की बात किसी से भी नहीं कही। अब तो यह नन्ही बच्ची अपने प्रत्येक कार्य में सावधानी रखती थी। फ़रब्टबेटा के अपने बड़े मकान में वह कोई पंखेरा-सा कोना चुन लती और वहाँ सम्पासी बनने का सैन रचाती। मकान का यह कोना उसके लिए गुफा का काम करता था। यहाँ बैठ कर वह उपवास करती प्रार्थना करती तथा निब-निमित्त धनुसासन के प्रायार पर याचना भोगती थी।

साठ वर्ष की धायु में तो उसने समास लेने का निश्चय पक्का ही कर लिया। सेसेट के बनों में जो उसके घर से ३ मील दूर ही थे एक सम्पास-प्राप्तम था। अपने ज्ञान के लिए डबल रोटी लेकर वह शीघ्र ही शहर की चारबीबारी से बाहर बन में निकल गई। वहाँ एक गुफ़र देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ देर इस गुफ़र में प्रार्थना करने के बाद उसकी धारणा बदलने लगी। उग्न्या के समय प्रकाश की कमी और अकेलापन बेचारी केबेरिन को डराने लगा। घर बहुत दूर था और वहाँ पहुँचना भी आसान न था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे जल्द कर धा गया। उग्न्या उसने अनुभव किया मानो वह बावर्षों पर बैठ आकाश में उड़ रही है और बोड़ी ही बेर बाद वह शहर में थी।

वहाँ से वह कदम बढ़ाकर अपने घर आ पहुँची। इसक बाद फिर कभी उसने सम्पासी बनने का यत्न नहीं किया। लेकिन जन में कुछ चंटों की ही उसकी प्रार्थना पूजा का धर उठकर हुआ। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह अब ईसा मसीह की बयु होकर रहेगी। "मैं उसे (ईसा को) और तुम्हें दोनों को ही बचन देती हूँ कि जीवन में किसी से विवाह नहीं करूँगी।" यह थी उसकी प्रतिज्ञा जो उसने ऐबर सेटी (सन्त मेरी) की मूर्ति के सामने उड़े होकर प्रार्थना के उपरान्त की थी। उसके बाद से बालिका केबेरिन प्रार्थना के लिए अधिक से अधिक समय देने के साथ-साथ संयम-नियम का भी विधेय ध्यान रखने लगी। उसने मांस खाना छोड़ दिया और रोटी तथा साफ-यात खाकर निबर्हि करने लगी।

बारह बय की धायु में धाने पर उसके माता-पिता केबेरिन के लिए उपयुक्त घर खोजने लगे किन्तु वह इस तरह की बातचीत पर बिस्कुल ध्यान नहीं देती थी। उनक बार-बार डाँटने-फ़टकारने पर भी जब वह न मानी तो उन्हें अपने बत्तक पुत्र टोमासो देलाफ़ाब्टे को सहायता के लिए बुलाना पड़ा। टोमासो देलाफ़ाब्टे अब

डोमीनिकन' पावरी बन गया था। प्रागे जाकर यही कैथेरिन का पहला 'कनफेसर' भी बना।

पावरी ने प्राते ही कैथेरिन से कहा—“यदि तुम अपने विचार की पत्नी हो तो अपने केश काट डालो!” बालिका ने बिना किसी हिचकिचाहट के अपने सुन्दर लम्बे बाल काट डाले। कैथोलिक परम्परा के अनुसार यह प्रमुखमर्ण संस्कार माना जाता है। माता-पिता ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया। कैथेरिन से प्रकृति रक्षक की सुविधा छीन ली गई। नौकरानी को भी निकाल दिया गया। इस प्रकार कैथेरिन अपना जो समय घाराबगना में भगती थी वह धन धर के काम-काज में भगाने पर विवश थी।

बालिका ने अपना यह नया काम यह समझ कर अपनाया मानो कि वह धन नभारन' के तीर्थ स्थान में काम कर रही है।

वह अपने पूज्य पिता को प्रभु ईसा मसीह के समान समझती माता को 'बजिन' (माता मेरी) और भाई बहनों को भन्वर 'भ्मेरु' समझा करती थी। वार्डकोमो ने एक बार कैथेरिन को उस कमरे में भ्रकर देखा जिसमें वह अपनी बहिन के साथ रहती थी। लड़की प्राभना में शुकुई हुई थी। एक सत्रेद भन्वर का बन्धा उसके सिर पर भंडा रहा था। इस घटना के उपरान्त कैथेरिन को अपनी सभ के भन्मार जीवन बिताने की प्राज्ञा भिल गई। पिता ने रसोई के नीचे की एक कोठरी कैथेरिन को दे ली। प्राय भी वह कोठरी सुच्छिंत है। कैथेरिन ने इसी कोठरी में रह कर नियम-संभम का प्रासन किया और अपने मन को पवित्र किया।

बहुत-बोड़ी-सी रोटी और कच्चे टाक-भात के पत्तावा वह कुछ नहीं खाती थी। यही नहीं बह अपनी नीव भी नम करती रहती थी। एक समय वह भी भा गया जब भइतावीत बन्नों में वह केबम दो बन्ने खोती थी।

“प्रात्म-संयम सबसे बठिन कार्य है यह रहस्य उन्होंने प्रथम कनधरार (अपने भपराषों की भभिन्यक्ति करने वाले) से कहे थे।

कैथेरिन की विचार-पारा डोमिनिकेनन' ने प्रापविष्ट प्रभाविष्ट थी। नेस्टीनेट<sup>२</sup>

१ रोमन कैथोलिक धर्मानुयायी।

२ भिसुरी के समान धम की तथा में अपना जीवन-वाग करने वाली महिलाएँ एक विषय प्रकार का योगा पठिनती हैं और अपना सिर विषय प्रकार के कनटोप से ढंभती हैं यह नेस्टीनेट कहताती हैं।

बनने की उसकी आकांक्षा भी क्योंकि डोमिनिकन गिर्जाघर से सम्मान प्राप्त ऐसी महिलाओं की सीमा में पर्याप्त स्थाति थी। उक्त महिलाओं के इस बल में अधिकतर प्रौढ़ महिलाएं, अधिकतर विधवाएं होती थीं। ऐसी महिलाएं अपने ही घर पर रहती थी और अपने आदि भी नहीं लेती थीं किन्तु अपना सारा जीवन परोपकार में ही बिताती थीं। मुबती होने के कारण केबेरिन का उक्त महिला बल में प्रवेश पाना संका से बाली न था किन्तु शीतला के कारण उसकी मुलाहति आकर्षक नहीं रही थी। इसीलिए 'प्रीओरेस'<sup>१</sup> (Prioresse) ने केबेरिन की आयु को उसके धार्मिक जीवन में बाधक नहीं माना। वही नहीं केबेरिन के पवित्र जीवन का "प्रीओरेस" के मन पर बड़ा प्रभाव भी पड़ा। इसके फलस्वरूप १३६३ में "केबेसा डिसे बोस्ट" में एक रविवार को प्रातःकाल केबेरिन को परम्परागुसार मिथुनी के अनुरूप वेधभूमा 'मेन्टीनेट' से आभूषित किया गया। इस समय वह अत्यधिक प्रसन्न थी। गिर्जाघर जाने के असावा वह सदा अपनी कोठरी में ही रहती तथा आत्म-सुद्धि के लिए विभिन्न संयम-नियमों के पालन में व्यस्त रहती थी। आत्म-ज्ञान वैदिक अनुभूति पाने के लिए आवश्यक है। उनके परिश्रम में ईश्वरीय स्वर इस प्रकार सुचारु है—“इसीलिए मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। यदि तुम मेरी (परम पिता की) प्रभुता का ज्ञान और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के योग्य हो आभोगी तो आत्म-वर्धन के अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। आत्म-ज्ञान तुम्हें विनम्र बनावेगा। विनम्रता की अनुभूति यह को (मैं को) गष्ट करेगी। और तुम्हें अनुभव होया कि तेरा अस्तित्व मात्र ही मेरे द्वारा दिया गया है। क्योंकि मैंने तुम्हें और तेरे अस्तित्व के पूर्व भी अग्य लोगों को स्नेह किया है।

“जसो आत्म-वर्धन की कोठरी में बसे” यह वाक्य हम केबेरिन के साहित्य में देखते हैं। इस कथन का इशारा उनकी अपनी कोठरी वाली चित्रणी की ओर ही था। इसी कोठरी में बैठ कर उनमें परम पिता से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। अग्या वेसा में अनेकों बार स्वयं ईसा मसीह ने उसे वर्णन दिये थे। उसके साथ अनेक सज्जन मित्र जैसे सन्त 'जोन दि इवेन्जेलिस्ट' 'मरी मैग्दलिन' 'सन्त डोमेनिक' या 'अपोटलो' में से कोई अग्य होते थे कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं के मनमादक संगीत की अनोखी रसानुभूति कई बार की थी और नन्दन बन के सुरमिष्ठ पुष्पों की मादक सुगंध का मुक्त मूटा था। पूर्व-रूपण

१- महिला अधिष्ठात्री महानिषण ।

धारम-समर्पण के सिंसिसे में एक स्त्री की जो भावश्यकता होती है वह सब उस ईसा मसीह के प्रति उसके प्रयास प्रेम के द्वारा प्राप्त हुई थी।

एक बार जब वह अपनी काठरी में बैठ कर सोसेमन के गीत नाटिकक का उत्तर पाठ करते हुए थड़ा-मुग्ध थी तब ईसा मसीह ने दर्शन किये और उसे मधुर चुम्बन का सौमाम्य बिना। इस प्रकार तुम जाने पर उसे अनिर्बचनीय सुख की अनुभूति हुई। उसने प्रभु से प्रार्थना की और पूछा— कि अपनी सतकं निष्ठा को बनाये रखने के लिए उसे क्या करना चाहिए। कोठरी में निवास के प्रतिम वर्षों में जब वह २२ वर्ष की थी उसने धीरे-धीरे पर बरी महत्त से बढ़ना सीखा। उस काम में बहुत कम शिक्षा विहित होती थी। उनके साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि 'मासीस' और 'एपिसस'<sup>२</sup> का उन्हें पूर्ण ज्ञान था परन्तु प्रार्थनाओं के संग्रह का पाठ उन्हें अधिक प्रिय था।

इस अवधि में प्राप्त प्राथमिक सिद्धि की पराकाष्ठा थी। ईसा मसीह के साथ "रहस्यमय विवाह" की अनुमति थी। यह मिलन १९६६ में हुए पूर्ववर्ती सगटेन कानिवास<sup>३</sup> के अन्तिम दिन हुआ था। वह अपनी कोठरी में बन्द थी। बाहर जनता एंपरतिपा मना रही थी। केवेरिन जगता के पापों की क्षमा प्राप्त करने के लिए बत-उपवास और प्रार्थना करती रही।

प्रभु ने दर्शन दे कर उस से कहा— 'क्योंकि तुने सासारिक मोह-मामा को त्याग दिया है और मेरे से समय लगा ली है इसलिए तारा निर्भरता और रराक होकर भी मैं सब तुने करता हूँ।' इस अनुमति के द्वारा केवेरिन न वैयक्तिक रहस्यवाद में निष्ठात्मक रूप में परोपकारी जीवन को अपनाया।

बहु समय भी धा गया जब उसके पारलौकिक पति न अनन्य स्नह प्रदर्शित करते हुए उसे अनुमति दी कि वह अपनी धारापना रखनी (काठरी) से बाहर निकसे। इसलिए वह प्रतिदिन बाहर में दुन्नी बीमारों की चिकित्सा के लिए जाती थी। उसकी उपस्थिति सभी के लिए अचिन्त होती थी। परिपूर्ण धार्मिक भक्ति तथा निराल्प माद से की गई उसकी सेवा बड़ी प्रभावशाली थी। उसमें न केवल रोगियों के घाय पुर हो पाते थे, अपितु अनेक सूक्ष्म-मटकों का हृदय भी निर्मल हो जाते थे।

उसकी प्राथमिक धर्मिता की स्वाधि धीरे-धीरे जन मापारण में फैलने लगी। उमर जारा घोर अज्ञान भक्तों की भीड़ जमी रहती थी। इन लोगों में न केवल 'विवा-

<sup>१</sup> ईसा मसीह का सुसमाचार।

<sup>२</sup> धार्मिक साहित्य।

<sup>३</sup> प्री-सबन्ध कानिवास।

टिड बीमेन घाऊ घाईर' ही होती थी अपितु सुबुद्ध सन्यासी सन्त (पादरी) घावि भी थे। बड़े-बड़े बरों के ज्ञानदात्री प्रीर क्याति-प्राप्त लोग भी उनके सख्तंग से मामाम्बिष्ठ होते थे। ऐसे से लोगों में कुछ बिपड़े दिन भी थे। केबेरिन की घाभ्या रिमक पहुंच ने ऐसे लोगों को सही स्थान पर पहुंचा दिया। इन्हीं तपाकपित ज्ञानदात्री रईशों में से कुछ जिन्हें केबेरिन की घाभ्यारिमक सक्ति ने सही मार्ग दिखायो था उसकी तपस्या में उसके साथ रहे प्रीर बाद में उसके लेखन-कार्य में सहायक बने रहे।

केबेरिन अपने अनुयायियों को शिशुवत् प्रेम करती थी। ये अनुयायी उसके लिए बर्म के बेटे-बेटियां थे। केबेरिन की आयु तो थोड़ी ही थी किन्तु उसके अनुयायियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। ऐसे भक्त-मनों के लिए केबेरिन "बर्म-माता" के समान प्रिय थी। उसकी कोटरी जहां सदैव मोमबतियां जला करती थी भीड़ के लिए धार्क्यन का केन्द्र बन गई थी। कुछ लोगों पर तो उनकी धार्मिक महत्ता का जादू-सा हो गया था पर कुछ सच्चे रूप से भक्त थे। इनमें से कुछ ऐसे भी थे जो जमातुर होकर उसका धार करतें थे किन्तु कुछ केवल कौतूहल-वश ही इच्छते होते थे।

इसका जीवन चरित्र मिलने वाले जनकेसर कापुभा के रेमण्ड ने लिखा कि प्रात्मविभोदावस्था में उनके हाथ-पैर सखड़ जाते घाबे मूंद जाती प्रीर उनका सरीर बरती से ऊपर उठ जाता था। ऐसे समय पर सुहावनी सुगन्ध बिलर जाती थी। प्रभु ईसा मसीह से इस प्रकार धारमसात् करने की क्षमता रखने वाली केबेरिन 'झेक ईब' महामारी के फैलने पर सेवानाशी मर-मारियों की अनुघा थी। इस महामारी का प्रकोप घारे यूरोप में फैल गया था। उन्होंने बड़ी मनन से प्रीर निर्भीकता से जनता की सेवा की। कनी से घस्यताओं में जातीं तो कधी महामारी के प्रकोप से बस्त इलाकों में जन-सेवा के लिए जातीं। सड़कों पर भूमती प्रीर रोगियों की सेवा करतीं। यही नहीं बल्कि महामारी से मरे व्यक्तियों के अन्तिम संस्कार को भी अपने हाथों से करती थी। केबेरिन इस प्रकार की मानव-सेवा बड़ी बतचित्त होकर स्नेच्छ से प्रीर प्रव्रमता पूर्वक करती रहीं। इसके कमस्वरूप रोगियों को धारोम्य प्रीर बीरज प्राप्त होता था प्रीर मृत व्यक्तियों को धाल्प-शान्ति।

केबेरिन की राजनीतिक पतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने से पूर्व भूमिका स्वरूप हमें तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी रखना अनिवार्य होगा।



सन् १३०३ में पोपयन इंटरलस सिटी (रोम) को छोड़ कर एबीनोन में जो रोहन नदी के किनारे था बस गये थे। इन दिनों पेपल<sup>१</sup> सम्मति को लेकर पारस्परिक युद्ध चल रहे थे। स्वयं रोम के गिर्जाघर और मठाधि लेडी से प्रबन्धन की धोर जा रहे थे। धर्म प्रचारकों में रिपब्लिकोरी धर्मयम बुराचार का बोलबाजा था। वे मरीचों की याड़ी कमाई पर बहुत धनिक घानो-शौकत से खूटे थे।

धर्मन पंचम पहले पोप थे जो फ्रांस के राजा और बर्नाम्पियों के विरोध के बावजूद भी वेप्सी<sup>२</sup> को पुनः इंटरलस सिटी (रोम) में ले आये। अग्रेस ३ १३९७ की एबीनोन छोड़ स्वायत्त हेतु धानुर जन-समूह की उपस्थिति में पोप १६ अक्टूबर १३६७ को पुनः रोम पचारे। इस प्रकार प्रभु ईसा मसीह के प्रतिनिधि रोम पहुंच गये। सन् १३७० में धर्मन ने इटली का त्याग किया और इसी वर्ष उनका देहान्त हो गया। मार्च एकादस को फ्रांसीसी वे पोप की नहीं पर बैठे। केबेरिन का यह युद्ध विरवाच था कि पोप अपने धर्मों में पृथ्वी पर ईसा मसीह के प्रतिनिधि हैं और उनकी परिपूर्णता का रक्षित है। कैथोलिक गिर्जाघर उसके लिए प्रभु ईसा मसीह की धार्या-रिमक बुद्धि को समान थे। इस धरने विरवाच के कारण उपरोक्त गटनाओं की जानकारी पाकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। जब उन्हें यह पता चला कि प्रभु ईसा मसीह के धर्म का सासक-प्रतिनिधि अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं है और अपने सुनिश्चित स्वाम से धनुपस्थित है।

फेब्रु २३ वर्ष की अस्थामु में ही केबेरिन ने पोप के ससक्त एमपी को सन् १३७२ में एक पत्र लिखा जिसमें समझाया था कि— मेरी यह प्रबल धारणा है कि तुम सोप एक अन्धे सेवक और सुपुत्र की तरह जिनका सुम-चिन्तन प्रभु ईसा मसीह ने अपने बलिदान देकर किया है उसी के बताये मार्ग पर चलो। पुष्पो-चित हिम्मत के साथ अथवा बिना किसी दबाव या भय के तुम सोप इस मार्ग से कभी नहीं हटोने पाते कही अन्धक प्राप्त सुस का तुम्हें सोम धीमे अथवा इसी मार्ग में बाधा आये। इस प्रकार अपने जीवन भर तुम लगत के साथ काम करते रहना।" इस पत्र के हाथ केबेरिन ने पहली बार गिर्जाघरी क मामले में इस्तथोप किया। सीबा के रंगरेज की अन्धक-सी मङ्गी की इटली हिम्मत हा आये कि वह निर्भय होकर, नहीं नहीं अत्यधिक धौरवान्धित होकर अपने पत्रों में पाप को—“मेरे बरम प्रिय बापु”<sup>३</sup> के नाम से सम्बोधित कर सके यह केवल धार्यारिमक अन्धक का ही

<sup>१</sup> पेपल-रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाले लोगों का बय।

<sup>२</sup> वेप्सी पोप की सम्मति और धर्म स्वसी धारि।

<sup>३</sup> मूल धर्म उच्चारण 'बाबी' है जिसका अंग्रेजी समानांतर बेबी (पिता) है।

परिभाषक हैं जो उसने प्राप्त कर ली थी। इस सन्त में सन्तार्ई की महत्ता इतनी अधिक सप्तक की कि वह अक्सर अपने कथन को ईश्वर की इच्छा के अनुबन्ध ही मानती थी। फ्रांस के राजा को एक पत्र में उन्होंने लिखा था— 'परमात्मा की भीर मेरी इच्छा की पूर्ति करो। इसी प्रकार पोप के पत्र में उन्होंने लिखा था— "ईश्वर की इच्छा और मेरी अन्तःप्राप्ति की पुकार एकजुट बनाइये।

धार्मिक नेताओं के विरोध के उपरान्त भी टस्कन गणतन्त्र और पोपघाही के बीच युद्ध सिद्ध ही गया। केबेरिन ने पोप की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने वालों की मर्त्यना की और साथ ही पोप को भी धर्म-युद्ध छेड़ने पर सावधान किया। परन्तु १९७१ में धर्मयुद्ध छेड़ने पर उसने पोप का पूरा सहयोग दिया।

पोपघाही से सप्तक उनके राजनैतिक मामलों में बलम डेकर केबेरिन की बहुत धारणा की गई। सन् १९७४ में 'अन्तरम नेक्टर धाऊ ब डोमीकन धार्ईर' ने उनकी गतिविधियों तथा शिक्षाओं की परीक्षा के लिए उन्हें फ्लोरेंस में बुला सेवा। कापुओ के रेमण्ड जो इन्हीं दिनों केबेरिन के धार्मिक मिश्रण और कनसेसर नियुक्त हुए थे इस बात के धारणा थे। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि केबेरिन धर्मयुद्ध पर धारणा है। अपने लेख जीवन में वे केबेरिन के सहयोगी ही रहे और केबेरिन को हर प्रकार के धार्मिक अनुभवों में बहुत धारणा मानते रहे। पोप के धार्मिकारियों में स्नेहधारण एवं धार्मिकता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि फ्लोरेंटाइन नाटियों ने विद्रोह लड़ा कर दिया। १९७५ के आगमन धरती नगरों ने पोप के विरुद्ध इस धर्मयुद्ध में भाग लिया। फ्लोरेंटाइन नाटियों पर पोप द्वारा किये गये धारणाओं की सूचना पाकर केबेरिन का हृदय विहीन हो गया किन्तु फिर भी उसका पोप की सत्ता पर धार्मिक विश्वास बना ही रहा। वह यह तो मानती रही कि पोप के विरुद्ध किया जाने वाला विद्रोह पाप है। उसकी भावना थी कि अगर पवित्र पिता इतनी धारणा चाहें तो उनका स्वागत हो। उन्होंने अपने एक पत्र में पोप ग्रेगरी को इस सम्बन्ध में लिखा था— एक बहादुर पुत्र की भाँति धारणा पर इस बात का पूरा ध्यान रहे कि आपके साथ फौजें न हों। धारणा में काम हो और आप एक मुकोमल मेमने की भाँति यहाँ धारणा।"

परन्तु पोप ने तो अपनी सेना इतनी भेज दी थी। जिसका सेनापति एक मुद्रिया कर रहा था। कालान्तर में यही मुद्रिया बलीमेट सन्तम के नाम से जाना गया। सेना में बड़ी निर्दयता से मारकाट की गई। केबेरिन ने फ्लोरेंटाइन नाटियों से शुक जाने और पोप ग्रेगरी से अधिक संयत रहने का धारणा बार धनु रोष किया। फ्लोरेंटाइन-नाटियों ने केबेरिन से धनुरोष किया वे उनकी स्थिति

का परिचय एबीमनीन वालों से कराये जो पोप के सामने उनकी प्रमत्ता रहीं। कापुसों के रैमण्ड भी ने जून सन् १३७९ में बहू एबीमनीन पहुंची। उसने फ्लोरेन्टीन के मामले की खोरदार पेशकी की। उसकी धार्मिक पक्ष का बचाव इतना खोरदार था कि पश्चिम पिता ने सारा माबसा कड़ी को सौंप दिया। जार्ज रेमण्ड के अनुसार उन्होंने कहा था—“बहू सिद्ध करने के लिए कि मैं निःशब्द धार्मिक चाहता हूँ इस मामले को सब मैं तुम्हारे हाथ सौंपता हूँ। तुम चाहो बैठा समझौता कर सकती हो हाँ चर्च (निर्वाचन) की इच्छा का तुम्हें ध्यान रखना होगा।

केवेरिन ने निर्बल धीरे धीरे हीन रैमण्ड को एबीमनीन का मूल-सुविधापर्य जीवन त्याग कर उपयुक्त स्थान रोम सौंप जाने की सलाह दी। इस बात में उसे सफलता भी मिली। बहुत अधिक धाना कानी करने धीरे उत्तर-सेर के बाहू जनवरी १३७७ में पोप को रोम धाना ही बड़ा धीरे इस प्रकार केवेरिन की बहुत बड़ी इच्छा की पूर्ति हुई।

इस धार्मिक-संस्थापिका का एक धीरे भी उत्प्रेरणीय कार्य १३७८ में तब्रर धाता है। इस साथ पोप ने उन्हें फ्लोरेन्स में राजनयिक धाना पर भेजा था। फ्लोरेन्स वासियों को पोप का धार्मिकपर्य स्वीकार करने में केवेरिन सफल हुई। लेकिन इस कार्य में बहू प्रायः पक्षीय ही हो गई थी। ससत्र सपुण्य के सामने धपनी बदेन बड़ाते हुए उन्होंने कहा था—“मैं केवेरिन हूँ। बैठा प्रभु तुम्हें करने की धाना है मेरे साथ करो, परन्तु ईश्वर के लिए मेर साथ धाये ध्वस्तियों को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचने धाने।” बहू समने ही भीड़ गिर-बिठर हो गई।

सन् १३७८ में धीरे की मृणु हो गई धीरे धटे धर्बन जो इटली के निवासी के धोर बने। इसकी धोरोग में विप्राय सौपितधम का समारम्भ हुआ। यों तो नये पोप धार्मिक गुधार के बड़े समर्थक थे परन्तु साथ ही ब्यबहार में कठोर धीरे धनिधिधियाँ से हिरुफ थे। केवेरिन ने धपने पत्र में उनसे धनुरोध किया था कि वे धपनी उक्त धतिनिधिधियाँ को जिनके लिए उन्हे प्राकृतिक धेरधा प्राप्त हो रही है, धीरे बनावें। इस धनुरोध का बोर्ड धसर नहीं हुआ। फलस्वरूप धर्बन की धर्न धिरोधी सौपित कर दिया गया। जिनका के रोकने को उनके समर्थकों ने ‘कलीमेण्ट सप्तम’ के नाम से धान चुना।

केवेरिन की धिगका बाहरी जगत् में धार्मिक ईयाई धर्बनधानी संसार कं धाधरी बर धाध निरा कर मूल एकता लाना था। इससे बहुत निर्मम धाधात पहुंचा। धान धर ही धने का उनका बस धध धृध धधिध धधधर हो गया था। उन्हें इतनी धम

मिसा मिसती थी कि कभी-कभी उन्हें निराहार तक रहने की मौजबूत था जाती थी। उन्हें दूरस्थ ही धर्म से मिसने का भवसर मिसा। मिसने पर उन्हें सलाह थी कि रोम में उपस्वी सामु-सन्तों का सम्मेलन बुलाया जाए। इस में वे लोग हों जो अपना जीवन धाराधना में बिता रहे हों और ईसाई धर्म के धाराधन भूत भंग हों। धर्म के नाम पर इन सभी व्यक्तियों का धारा केमेरिन को उसके विरोधियों से सुखित करने के लिए धाराधनक था।

इस सम्मेलन के निर्देश का उचित स्वागत नहीं हुआ। जो लोग इस प्रकार का निमन्त्रण पाकर रोम धाराये वे वे बहुत बोड़े थे। प्रस्तु, केमेरिन की यह योजना असफल रही। इस सम्मेलन में उनके बुद्ध का अनुमान एक एकान्तवासी के नाम लिके पत्र से लगाया जा सकता है, जिसने अपनी कोठी छोड़ने में असुविधा व्यक्त की थी। "धार्मिक जीवन को धरत हम यह समझते हैं कि यह स्वान विरोध छोड़ देने से लपट होता है तो हमने उसे बहुत ही धाराधन और धार्मिक धरतोर माना है। इस का तो यह धर्म हुआ कि परमात्मा स्वान-विरोध में ही प्राप्त होता है और धार्मिकता पढ़ने पर धरत सहायता के लिये यह धरत होता है।"

केमेरिन के लक्षणधरत सांसारिक जीवन का धरत निकट था रहा था। निरन्तर की जाने वाली कठोर वैदिक धरत-धरतार्थों और धरत की पुकार के धरत के कारण वे बहुत लीन-काय हो गई थीं। धरत की निरीहीता के कारण उन्हें बहुत धरत मानसिक वेदना होती थी।

केमेरिन कवि भी थी। उनकी कल्पना धरत तीव्र थी। अपनी धार्मिक संधी के नाम लिके उनके पत्र में उल्लिखित इन उद्गारों से यह स्पष्ट होता है—"धरत प्रभु-धरत का बुद्ध है। प्रिय पुत्री धरत धरत किधारी कि यदि स्वतन्त्र धरत कपी माली इस बुद्ध को मपाना जाहे तो कहां मपाने? नि-सन्धेह धरत-धरत की धरत कपी लरत में ही इस बुद्ध को मपाना जा सकता है? इस बुद्ध में सद्बुधियों के सुखित पुष्प मगगे और इन सभी पुष्पों से धरत धरत और सुखितान् पुष्प ईस्वर मज्ज की महता कपी पुष्प होगा। धरत धरत और धरत प्रभु-धरत यह धरत कटी है कि मनुष्य पुष्पों पर नहीं फल के सहारे रहता है (हम पुष्पों के धरत पर रहे तो धरत मर जायें पर फल के सहारे जीवित रहे) इसीलिए उक्त बुद्ध के पुष्प तो प्रभु स्वयं धरत लिए रख सेवा है और फल हमारे लिए छोड़ देता है।"

केमेरिन की जीवन की धरत-वेदना धरत थी। उस केमेरिन की धरतने धरतने समस्त जीवन के धरत-धरतों में धरत-धरत सोहम् की धरत—मैं यह हूं जो धरत

है और नू बह है जो कहीं नहीं है —की व्यक्ति की थी। जीवन की अन्तिम क्षणों में उन्होंने 'दिवाइन डायलाग' (द्वैतिक बचनानुसृत) नामक विज्ञान साहित्य दिया। सायना और परमानन्द के शब्दों में सीधे प्रभु से ही प्राप्त सिद्धा का साक्षात् है। वे तो स्वयं ध्यानावस्था में मान रही थीं जो परन्तु उनके सहायक इन अमूल्य बचनानुसृतों को निपिबद्ध कर लते थे। प्रभु ईसा मसीह और केबेरिन के द्वैतिक संभाषणों में ईसा को पुष्पी और स्वर्ग के मध्य की सीढ़ी माना गया है।

"कितनी बेबीप्यमान है वह आत्मा जो अत्यन्त दुष्प्रकार वाले समुद्र को पार कर मेरे समीप प्रसन्न सुखनिधि से अपने हृदय-बट को भरने के लिए आ गयी है।" संसार के अन्य धार्मिक साहित्य में विस्तार से इससे अधिक उदात्त भावना हमें सहज सुमन नहीं हो पाती। हाँ भारतीय सन्तों अपना सूक्ष्म अन्वेषणकारियों द्वारा ऐसा उल्लेख सम्भव है।

केबेरिन ने भोजन स्थापित किया था। उनका आहार केवल 'होमी सेक्रेमेण्ट' ही रह गया था। सन् १३८० में तो वे इतनी अधिक दुर्बल हो गई थीं कि उन्हें पानी भी हरम नहीं होता था। उनका सम्बन्ध प्रभुमय हो गया था। प्रभु प्रेम की एक कक्षा उनसे कम में प्रकट रही थी। यह वह स्नेहात्मिक वा प्रियमें कुछ महीनों के उपरान्त उनका पश्चिम घटीर सीन हो गया। उन्होंने रोमक को लिखा था—“यह घटीर बिना किसी आहार के यहां तक कि बिना जल की एक बूट प्राप्त किए भी रहा है। ऐसी घटीरक याचना (तपस्या) मैंने पहले कभी अनुभव नहीं की। जीवन बोरी बहुत ही सीन हो गई है। एक क्षण से लटकी है वह।” उनकी द्वैतिक तपस्का और परम प्रिय पथ की दुर्बला से मिली मानसिक बेवना कितनी अधिक उन्होंने सही थी उससे तो कितनी अन्य व्यक्ति की जीवन मीला बहुत पहले ही समाप्त हो गई होती।”

अपने जीवन के अन्तिम घाट छपाह तो केबेरिन ने एक तल्ले पर पड़े-पड़े ही बिताये जिसके चारों तरफ लकड़ी के तल्ले इस तरह ओढ़े पथे से मानो कज्जल हो। उनका प्राप्त-पास उन “धार्मिक बच्चों” (नर नारियों) की भीड़ लगी रहती थी जो केबेरिन को “परम प्रिय माता थी” के रूप में मानते थे। उन्होंने प्रत्येक को घाटीबाँध प्रदान किया और सादेप दिया कि वे आपस में प्रेम-भाव रखें। इस अवसर पर उनकी बड़ी माता भी भी उनके पास थीं।

धार्मिक रीतियों का निष्ठापूर्वक पालन करने के बाद केबेरिन ने प्रभु ईसा मसीह के से शब्द बहुराये जो उन्होंने अपने अन्तिम समय कहे थे—“हे परम पिता! मैं तारे कर-कमला में अपनी आत्मा अर्पित करती हूँ।” इस प्रकार परम अन्तिम से बिमोर केबेरिन की इत्तीना समाप्त हुई।

सियना की केबेरिन का चर्च के धर्म्यात्मवाचियों में बहुत ऊँचा स्थान है। अपने युग की बाहरी अर्थात् सांसारिक निर्दमता भयानकता और हिंसा का उन्होंने अदम्य साहस से सामना किया यद्यपि ऐसा करना अत्यधिक कठिन था।

निःसन्देह बीसा कि हमने विवश करने का यत्न किया है केबेरिन का अपने समकालीन समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। बड़े-बड़े लोग उनसे सलाह लेते थे। यहाँ तक कि पूम्बी पर ईसा मसीह के (बिकार) प्रतिनिधि-योग भी उनसे कई मामलों में सलाह लेते थे। उनके मुख के राजा-महाराजा सामन्त और अन्य महाजन भी उनकी सलाह से सामान्वित होते थे। कहा जाता है कि सैकड़ों व्यक्तियों ने केबेरिन के दर्शन प्राप्त करके ही अपने धारण को नार्मिक बना लिया था।

धाम दुनिया बदल गई है किन्तु फिर भी हम सियना की सख्त केबेरिन के अदम्य साहस और आध्यात्मिक पवित्रता का अनुकरण करके संसार के बाजार में अपनी युक्तान सुविधा-पूर्वक बना सकते हैं। अपनी कठिनाइयों से छुटकारा पा सकते हैं।

संसार के लिए उनका संदेश कास के व्यवसाय को तोड़ चुका है। वो आहूतियाँ हैं इस अमृत के स्वरूप की—एक वह जिसमें संसार का मोह पाप और मृत्यु विवश है और दूसरी आहूति इसके विपरीत प्रेम धारम-सयम और सुखमय चिर जीवन की है। मृत्यु का द्वार तो हम स्वयं हैं या हमारा अहम् है पर स्वर्ग की सीढ़ी पर बढ़ाने वाला द्वार, ईश्वर के समीप से जाने वाला है। प्रभु ईसा मसीह सर्वव्यापी हैं।

वह जो अहम् रखता है अमिमानी है। वह तो अपने पापको नाश के हाथों सीप रहा है। परन्तु वह जो प्रभु ईसा मसीह की धरण से जाता है वह कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। उसकी सर्वत्र रक्षा होती है।

## एविस्ता की टेरेसा

अपने जीवन के उत्तर काल में लम्बे नाम से सुजीविता होने वाली महिला टेरेसा का जन्म सन् १९१५ ई० में स्पेन के घोसब कॅस्टिल नामक प्रान्त के एविस्ता नगर में हुआ था। उसका बचपन पालवानी परिवार में जन्म लेने के कारण बड़ों की झुंझझुंझ में बीता। और सामन-माजन तत्कालीन स्पेनी रीति-रिवाजों को पूरी तरह मानते हुए किया गया। उन दिनों स्पेन में एकलान्त जीवन बिताने की प्रथा थी। स्त्रियाँ विधेय रूप से एकलान्त जीवन बिताती थीं। बर्ष जाने के अतिरिक्त स्त्रियाँ घर की पारसीबारी में रूठी थीं। टेरेसा ने अपने बचपन के बारे में बहुत खोड़ी जानकारी दी है। उन्होंने लिखा है कि १२ वर्ष की अवस्था में उनकी माता का देहान्त हो गया था। अपनी इस हानि की पूर्ति के लिए वे 'ईसा मसीह की माता' की धरम में जाने के लिए प्रारुत थीं। बचपन में वे पूरबीरों और सन्तों की जीवन-गाथा से प्रभावित हुई थीं। उनकी लक्ष्य कल्पना-शक्ति इन माथाओं से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि एक दिन वे अपने माई के साथ बुरों के हाथों बलि होने के मय से पर छोड़ कर जाग निकलीं। किन्तु अपनी नगर-कोट के बाहर भी नहीं जाने पाईं थीं कि पुन अपने घर आईं गईं।

सोमह मयं की आयु में इनके पिता ने इन्हें प्रगस्टीनिन कामबेष्ट में प्रवृत्ति प्रिया पूरी करने के लिए भेजा। व जिन्हें टेरेसा को देखने का अवसर मिला था कहते थे कि व हँसमुख थी। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था और वे गहन-कपड़ों की शीकीन थी। उनको दूसरों द्वारा की गई प्रशंसा भी अच्छी लगती थी।

एक सन्धी बीमारी के बाद बहु कालबेष्ट से पर आईं। पुन स्वास्थ्य-नाम के लिए बहु अपनी बड़ी बहिन के घर भेजी गईं। मार्ग में बहु अपने चाचा के यहां रूठीं। चाचा ने टेरेसा से 'साइन्स ऑफ दि सेंट' नामक पुस्तक से कुछ बंध जोर जोर से पढ़ कर सुनाने के लिए कहा। इसी पुस्तक को पढ़ते हुए उन्हें जीवन की नि शारता का आभास हुआ। मरक का मय उन पर छा गया। इसके साथ ही

परमात्मा के लिए किए जाने वाले कर्मों का डर भी उन्हें लगा। उन दिनों स्पेन में घातम-घाल की परीक्षा की परम्परा थी। इसके प्राचीन प्राचक्रित करने वाले धीरे-धीरे हिंसात्मक नियम को स्वीकार किया गया था। धीरे-धीरे उसमें गरुड़ की यातनाओं का आविस्तार उभरेका था।

यह सब देख-सुन कर टेरेसा ने धार्मिक जीवन बिताने का निश्चय किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनका धर्म की धीरे-धीरे शुद्धता सम्बन्धी निर्भव पैसा उन्होंने स्वयं भी कहा मय बय था ईश्वर-प्रेम के लिए नहीं। धर्म की धरण लेकर संयम-नियम से चमना परमात्मा के स्वल्प भुगतने वाली यातना से सरस था।

तीन माह तक उनका प्रवर्तन चलता रहा। इसके बाद उन्होंने अपने पिता से अपनी धर्मशाखा व्यक्त कर दी। पिता ने कहा कि उनके पीछे जी टेरेसा कामबेष्ट में दाखिल न हो। किन्तु टेरेसा यह बचन देने में प्रसमर्ग थी क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना निश्चय कर लिया था। एक बार फिर वे घर छोड़ कर चली गईं। घर से जाकर उन्होंने "कान्वेंट ऑफ इन्फरतेपल" में प्रवेश प्राप्त कर लिया। प्रवेश के समय टेरेसा की आयु इकतीस वर्ष की थी। पहले साल ही उन्होंने कान्वेंट में रहने धार्मिक की शपथ भी ले ली।

बैसे तो सारी चिन्तनी टेरेसा का स्वास्थ्य प्रच्छ नहीं रहा किन्तु धार्मिक शाब्दना के प्राथमिक धरण में ता उनका स्वास्थ्य काफी खराब रहा था। स्वास्थ्य-साध के लिए उन्हें एक प्रसिद्ध चिकित्सक के पास भेजा गया। एक बार फिर उन्हें मार्ग में अपने भाषा के मकान पर ठहरने का प्रबन्ध मिला। उनकी इस यात्रा का बड़ा महत्व है। इसने ता उसकी जीवन-यात्रा ही बदल दी। उनके भाषा ने चिन्तन से सम्बन्धित उन्हें एक पुस्तक दी। प्रब तक उन्हें ध्यान-चिन्तन धार्मिक के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं था। इतना प्रबन्ध कह सकते हैं कि वे एकान्त में बैठ कर घातम-निरीक्षण की प्रन्वस्त हा चली थीं। यह प्रन्ध उनका मार्ग-दर्शक दार्शनिक धीरे-धीरे सद्बोधी सिद्ध हुआ क्योंकि जीवन के २२ वर्ष बिताने के उपरान्त उन्हें कोई ऐसा उपदेशक मिला था जिने उनकी मन स्थिति को जानकारी थी।

इतना से बीमारी धीरे-धीरे प्रबिक बढ़ती देख कर उन्हें पुनः एबिला जाया गया जहाँ उन्हें संत जॉन के ये धर्म स्मरण प्राये—'जब परमात्मा हमें सदा अपनी शुभाशीष धीरे-धीरे सद्भावनाएं प्रदान करता रहता है तो उसे हमारी उद्बुद्धता पर ताड़ना देने का भी अधिकार है। धर्म-धर्म उनका स्वास्थ्य बहुत खराब ही गया। यहाँ तक कि उनकी मरणसंयम समझ कर दफनाने के लिए स्थान भी



तय कर लिया गया किन्तु न जाने कैसे वे पुन जीवत पा गईं। नीच लिये सम्य उन्हीं के द्वारा कह हुए बताए जाते हैं—“मुझे बापस क्यों साया गया? मैंने मरक को दत्त लिया न। धन मुझे धरने धाप को मये मांके म डामना होगा। मठ की धरण लेनी हापी। मुझे धरनी धात्मा की रसा तो करनी ही है। हा मैं ऐसा धनद्व कर्त्तमी। मैं सन्त बन कर ही प्राण त्यागुमी—सन्त बन कर ही।”

काम्येष्ट से सोटने क बाब बह समय धाया जब उनकी मिच्छा सत्तार धीर ईश्वर बागो म ही समान रूप से बंटी रही। इन दिना का बचन करते हुए उन्होंने कहा है—“जब मैं इस सत्तार का भोग कर रही थी तब मुझ ईश्वर के प्रति मेरे कर्त्तव्यों की सुवि न परमात्म क्रिया किन्तु जब बन्धना में बैत्री तो भी बड़ी बर्त्तनी रही क्योंकि सत्तार का मोह मुझे लीक रहा था।

टेरेमा ने सन् १९११ में धार्म्यात्मिक जीवन की व्यपत्ता अनुभव की। बह समय भी धाया जब क धरने पिछने जीवन को दो भाया म देखने लगी। एक भाब का सामन्य जीवन का धीर दूररा बह का जब उन्होंने ईश्वर को धरने में पाया। बह सब उनकी ध्यानात्म्या म की गई यन्त्रा द्वारा प्राप्त सिद्धि की ही देन थी।

ईसा के प्रति टेरेमा का धनुगान धबोध की विज्ञासा न थी। जैसे-जैसे उनकी धार्म्यात्मिक उन्नति होनी जाती थी वैसे ही वैसे उनका धनुगान विकसित होता था। उनके मन म बँठा प्रारम्भिक भय धन धात्व के द्दिष्ट में होने बाव भय के समान सुरक्षित हो गया था। परमात्मा के प्रति उनका धनुगान उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। प्रमू र्ना मसीह उनके ऐश्विय धारर्त्त की प्रतिमूर्ति थे। उनक धार्म्यात्मिक स्वामी धीर सापी ब। ईसा मसीह जिम्ह बट मदीब धरने समीप ही रचना बाहती थी। धनत इस धारर्त्त को प्राप्त करने के लिए उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रनी। वहीं टेरेमा जो कुछ दिना पूर्व धनकार धु धार धीर जाती सुतन धय बागो में व्यस्त रहती थी धरनी सभी वस्तुधो को त्याग कर धोजन के प्रति भी उपेक्षा दिगान लगी। बहा जाठा है कि जब टेरेमा ने धरने धाप को सन्त जोगक के समान बनाम के लिए इन्धारनपाण के काम्येष्ट को छोड़ा उनके पाण केरम एष हेबिट' धीर एक कथा था। धरने धनुपापी बनाम क लिए सन्त हमारे क्या धरणा करती है? बहुत बाड़ी। इस ब्रजिदिन कुछ धय परमात्मा के भजन के लिए सुरक्षित रने। एक मा का पष्ट लकाब चित होकर परमात्मा का भजन करे। पाठ एक एकाम्य स्वान में हेबिट—रनी धारर्त्तियों के बहिनने बाने बात्र।

बल जाए । क्या आपने कभी ऐसा किया है ? ऐसा कराने तो नाम ही नाम प्राप्त होगा । अन्तर एक बार इस राह पर आप बल पड़ता फिर कभी भी इसे नहीं छोड़ेंगे चाहे फिर को कुछ भी हो ।

प्रमुख-चिन्तन और ध्यान द्वारा आप संसार के योरख-यात्रों से छुटकारा प्राप्त कर लेंगे । विवेक बुद्धि का सहाय लेकर एग्रिय प्राप्त स छुटकारा प्राप्त होगा । इस प्रकार जब अन्त-करण पूर्ण रूपेण शुद्ध हो जायेगा तो प्रमुख एकीकरण की स्थिति प्राप्त हो जायेगी ।

टेरेसा के अनुसार ध्यान-चिन्तन की चार प्रमुख अवस्थाएँ हैं । अपने इस सिद्धान्त को समझाने के लिए उन्होंने निम्नलिखित रूपक प्रस्तुत किए हैं —

“प्रत्येक व्यक्ति को उस परम प्रभु से मूर्ति का एक टुकड़ा मिलता है । यह टुकड़ा सूखा उखाड़ और छाबियों से भरा हुआ होता है । हम सब का कर्तव्य है कि इस भूखण्ड को एक सुन्दर उपवन में बदल दें । यह उपवन हमारी जायीर नहीं है परन्तु इसके स्वामी परम प्रभु के लिए हमें इस उपवन की रेल-रेल धार सम्भाल करनी चाहिए । किसी भी प्रकार से सामान्जित होने की प्रार्था न रख कर केवल उस प्रभु के प्रति अपना स्नेह-समाह्वर व्यक्त करने के लिए ही हमें इस उपवन को सुन्दर बनाने का यत्न करना चाहिए ।

ता पहला काम है झाड़ियाँ और जाल-यात उखाड़ना । इसके उपरान्त बीज बोना और सिंचाई करना । पहले कुर्घों से जल भर-भर कर हमें ही साना पड़गा । यहाँ जल आन्तरिक सपाव का प्रतीक है । इस संसार से इन्द्रियाँ से पूरी-पूरी विरक्ति सन्निहित है । इस प्रकार अन्त-करण की विगुडता की धार ध्यान केन्द्रित किया गया है । इस प्रकार हमें धारम-निरीक्षण करना चाहिए सही सही ढंग के प्रश्नों द्वारा और इन प्रश्नों में प्राप्त उत्तरों के विस्मयन द्वारा । धारम ज्ञान के लिए, विवेक के लिए यह परम आवश्यक है ।”

संसार से विरक्ति का यत्न करने के लिए निश्चित ही यह समय कड़ी साधना का समय है । टेरेसा ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि स्वयं उनको भा यह समय बहुत ही कठिन प्रतीत हुआ था । वे अपनी धार्मिक स भौतिक धामा दखना चाहती थी और साधना के उपरान्त जब वह दिन धामा तो उन सपा कि परल सता स्वयं उसी में है ।

प्रारम्भिक समय में यदि साधना पूरी तरह नहीं हो पाती है तो बहुत बुरी हालत की आशयकता नहीं है । उस प्रभु से विनती करके अपने धाम में उपस्थिति को आनने का यत्न करो ।

यही नहीं प्रभु का धारण भी स्वीकार करो कि उसने तुम्हें सद्बुद्धि ही जिसके कारण तुम प्रभु-प्रेम और धार्मिक ज्ञान की राह में पाये पाये बढ़े यत्नों के बाद भी यदि हममें धनिकता अथवा धीर धार्मिक दृष्टि से नीरसता ही रहे तो भी अपने सद्बुद्धि को छोड़िये नहीं। ऐसा समय परीक्षा का समय है। प्रकृत तबे समय में हम अपने सद्बुद्धि को त्याग देने को मजबूर हो जाते हैं। टेरेसा न भी अपने प्रारम्भिक जीवन में प्रार्थना और शक्ति में धनिक की शक्ति को छोड़ा था। वे बड़ी उत्सुकता से उस धनिक का इन्तजार करती रही जब बर्तसार के मोह-वास से विमुक्त हुईं। निकार को पूरी तरह निकालने वाला यह समय किसी भी तरह काटना ही चाहिए। सामान्य रसा के विपरीत हो जब मन-स्थिति अत्यन्त ही हो जाती है तब उस का प्रहार बहुत अधिक विकराल होता है। टेरेसा ने स्वयं कहा है कि इस समय में दुष्प्रवृत्तियों का प्रयत्न हमसे उनके मन पर हुआ है।

एक एता भी समय घाता है जब मय और धार्मिक हमारी विवेक-बुद्धि पर छा जाती है। धरत पहल-सी उत्कट इच्छा में कमा भी पड़ी तो समझो कि प्रेम को मुक्त स्थिति प्राप्त नहीं हुई है। केवल नीरसता और बाधपन ही हमारे अन्तर में बंध रहा है। इसलिए उक्त मातृकाओं को अपनी-अपनी धार्मिक उपरि का रोग न बनाइये। धारित बड़े अज्ञान को हमसे-भूमक हवा के शोक से बंध बनायगे हम ! कठिन साधना इमीनिए धारणक होती है।

ऐसे समय में हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम अपना धारण-निरीक्षण और भी सतर्कता से करना धारण कर दें और जानें कि किंग विजय कोने से संसार हमें प्रलोभन दे रहा है। इस प्रकार तिल-प्रति अपनी इच्छाओं का त्याग करें।

इस काम की समाप्ति के उपरान्त अपने प्रबल करने से पूर्व हमें परम प्रभु की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जल का प्रवाह धनिक निर्वास है। धारणा ने ध्यान-रसा की सतृप्तता के बाद एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। मय विधि धनिक पूर्ण नहीं है। धनिक परम धारणक ज्ञान तब जीवन का एक मात्र लक्ष्य धनिक भी पूरी तरह प्राप्त नहीं है। उनको बहूत करना और अपने आप में उन धनिक को बनाए रचना सुमन नहीं हो पाया। धन परमात्मा स्वयं धारणा से सीमा सम्पर्क धनिक-धनिक प्रेम प्राप्त नहीं हो पाया। धन परमात्मा स्वयं धारणा से सीमा सम्पर्क स्थापित करता है। वह धारणा से अपनी निकटता को स्पष्ट करता है। इसके उपरान्त अपना है उन धारणा ने पूर्णतः की प्राप्ति करती है। धीर इस लक्ष्य स्थापन पर धारणा प्राप्ति-पूर्वक निवास करती है। कुछ धारणा हम स्थिति को

पाकर ही धाति-पूर्वक सुभाषीय प्राप्त कर प्रागे बढ़ने का मल छोड़ देती है।  
 वे नहीं जानती कि इससे भी ऊँची स्थिति भारत-ज्ञान की भी है जो प्राप्त  
 करने के लिए अभी शेष रहती है। अब हमारा क्या कर्तव्य हो जाता है ?  
 पूर्व धास्वाहित परमानन्द का जिसकी पूरी तरह प्राप्ति अभी हुई भी नहीं है  
 उस भेदे हुए हमें बड़ी बिनमता के साथ उस कार्य के योग्य बनना है जिसके  
 लिए हमें जुगा गया है। हमारे भक्त-करण में रहने वाला वैदिक प्रेम हमें इतना  
 अधिक बिनम बनायेगा बिनम हम धन्यवा नहीं बन सकते थे। प्राप्ति-मात्र के  
 लिए प्रेम पैदा होने के उपरान्त स्वार्थ की भावना गूट होती। अब  
 बाय में कोमल बलिफाएं जन्म ले रही हैं। बाहर जाने में अधिक समय नहीं  
 मनेगा।

तीसरी स्थिति में सीपने के लिए जल साने की आवश्यकता नहीं पड़ती।  
 अब धात्मा परमानन्द के वैदिक महासागर में गोते लगाने लगती है। परन्तु  
 परमात्मा से एकीकरण अभी भी नहीं हुआ है। हाँ धात्मा इन्द्रियजाल से मुक्त  
 प्रबन्ध हो गयी है। अब केवल परमात्मा की प्राप्ति ही उसको संतोष प्रदान कर  
 सकती है। इस स्थिति को प्राप्त कर धात्मा पूर्ण-स्नेह परमात्मा की इच्छा के  
 अनुसार अपने प्राप को प्रपित करती है। टेरेसा ने भी इसी प्रकार का संकेत किया  
 है। यथा वे अपने प्राप में नहीं हैं पर पूर्वतया ईश्वर के धापीन हैं।

बिना किसी मल के सद्गुणों के पुण्य धारमाक्षपी उद्यान में जिसने  
 मगे हैं। परम प्रिय परमात्मा स्वयं इस उद्यान का मामी बन जाता है। धात्मा  
 मय उस उद्यान के फल खन सकती है पर अभी उन फलों को किसी धीर व्यक्ति  
 को बांट नहीं सकती।

प्यानाबन्धा की तीसरी स्थिति में उद्यान को सीपना हमारा काम नहीं रहता।  
 उस पर तो स्वयं के बासी स्वयं शुद्धतम जल की बूँद धीध के रूप में बिखरायेगा।  
 धात्मा पूर्ण-स्नेह अधिकतर धीर सुस्थिर हो जाती है। उसमें संसार का मोह भ्रम  
 रंजनाभ भी नहीं रह जाता। धारम-दुडि की यह क्रिया समाप्त हो जाती है।  
 परिपूर्णबन्धा अब अधिक दूर नहीं रह जाती। परमात्मा को जानने की स्थिति का  
 परमानन्द अब धात्मा मृष्टी है। हमें यह ज्ञान हो जाता है कि परमात्मा से एकीकरण  
 हाँ जाने के बाद सभी प्राणी समान प्रतीत होते हैं। क्योंकि उन सभी में परम पिता  
 बिराजता है।

इस प्रकार टेरेसा के रूपक को पूर्ण कर हम देखते हैं कि फलम तैयार हो गई  
 है धीर इस फलम का धातिक अपने हाथों से अपने बाय के फल बांट रहा है।

पवित्र आत्मा जो यह जानती है कि मेरा कोई अस्तित्व नहीं है यह भी समझ लेती है कि उसके पास कुछ भी नहीं है। उनके इस कथन से हम यही सीखते हैं कि बिना अपना प्रमाण दिखाये अपना मूर्त रूप से कुछ करे-बरे हम अपने सहयोगियों के धार्मिक उल्थान में योगदान दें। उन्होंने कहा है कि उनके भाव के फूसों से निकलने वाली मीठी सुगन्ध दूसरे व्यक्तियों को आकर्षित करेगी और उन पर धार्मिक प्रभाव होगा। वे भी इस सुगन्ध के लिए धातुर हो जायेंगे।

जीवन में टरेसा ने बड़ी कठिन परीक्षाएँ दी थीं। वे जब वैदिक सन्देश प्राप्त करतीं अपना विषय धामा की सत्यता देखतीं तो उचित मताह प्राप्त करने के लिए धार्मिक अकृति-सी एबिसा के ही कुछ व्यक्तियों के समीप जाती थीं। वे उनके इन अनुभवों की सारी छोटी बर्षा करते थे। साथ नगर इस प्रकार के अनुभवों पर शर्त करता था। प्रश्न उठता था कि यह अनुभूति वैदिक प्रकृति की परिचायक है अथवा धातुरी। यहाँ तक कि उनके कन्सेसर भी इस सम्बन्ध में अपना सही निष्पत्ति देने में हिचकते थे। इससे उन्हें मानसिक लाभ होता था। यह भी हम देखते हैं कि परीक्षण के समय में भी वे लगन के साथ मोक्ष प्राप्ति का पथ स्वयं अपने अनुभवों द्वारा निर्मित करती रहीं। इस प्रकार परम प्रभु द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ही वे अग्रसर होती रहीं। केवल उनका निजी विवेक धार्मिक सुख या कुछ आनी पुरवों की प्रेरणा ने ही उन्हें अपने पथ पर धामे बढ़ने का मार्ग दिया।

ईश्वर-प्रेम के पथ पर विधिबद्ध बन्ते हुए भी वे ध्यानिक लाभ में उल्लस पाईं। ईश्वरीय आदस उन्हें भीत और अपरिग्रह का प्राप्त करते हुए पठित आत्माओं को ईश्वरीय ज्ञान से आलोकित करने के सम्बन्ध में ध्यान काय का बताने के दिन का।

अपने प्राण-नाम के बाधाकरण का रोग कर उन्होंने अनुभव किया कि आत्मिक परिस्थितियों और रोग-दुःख में सुधार लाना साझसी था। तब '(मिथुनी) अपने जीवन को ईश्वर की सेवा में समर्पित कर यह नियम ईश्वरानुत्पन्न से प्राप्त करने में ही जीवन बिठाने के लिए बचन-बन्ध होती है। परन्तु इस नियम में भीत का कई भी। कान्फ्यूस् में भीत पाठ रहती थी। बाहरी जगत् की बाहरी प्रकृतियों और लोक धार्मिक स्वभाव (मठा) मधुमने मयी थी। धरत क्षेत्र से बाहर नगर ईश्वर प्रति और ज्ञान-सेवा में अपना जीवन बान करने वाली साम्नी महिमाएँ।

दीकाने पर उन्होंने ने अनुभव किया कि बड़े-बड़े राष्ट्र तथा जनता वर्ष से अपने सम्बन्ध साधने लगे हैं। उनके मन धीरे-धीरे मरिचक पर धार्मिक सुधार सम्बन्धी विचारधारा<sup>१</sup> उठते हुए प्पर के समान हावी हो रही थी। इसी के फलस्वरूप कई मठ लोड़ दिए गए थे।

इस समस्या के सर्वमान्य हल धीरे-धीरे धार्मिक रीति-रिवाजा में सुधार टेरेंसा समझती थी। इस समय निकले उनके उद्धारों से उनकी अपनी मनःस्थिति का पता चलता है। "धार्मिक धारणों की कमी इस हद तक पहुँच गई है कि फ्राइपर<sup>२</sup> ( मिशु ) धीरे-धीरे नए नए रूप से कार्य चलाया जायेंगे हैं अपने समाज के लोगों से नरक के खेतानों की प्रवेशा अधिक सतक रहे।

एक बार ध्यानावस्था में बैठे हुए ईश्वरीय प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने विश्वसनीय अनुयायियों की सहाय्य से एक नये कान्सेल्ट की स्थापना करने की ठानी जहाँ नार मोसाइट के धारणमूल सिद्धांतों का पूरी पवित्रता से पालन हो सके। इस कार्य के लिए शातावरण उचित ही था परंतु कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

इस योजना का प्रकल्पना के सन्त पीटर धीरे-धीरे एबिला के विसर्प<sup>३</sup> ने अनुमोदन किया। प्रस्तुत सन्त ने कागमोसाइट के क्षेत्राधिकारियों से धार्मिक स्वीकृति प्राप्त कर ली। स्पेन की अपनी विचारा की सहमति से इस योजना पर कार्य प्रारम्भ किया गया। उनकी सहकारी मिशुनियों (नरक) ने इसका बड़ा विरोध किया। इसाके के मानवानी सागों स्वामीय अधिकारियों धीरे-धीरे जन-साधारण की ओर से भी इस योजना का विरोध हुआ। विरोध इतना शक्तिशाली था कि कान्सेल्ट बनाने की स्वीकृति को रद्द कर दिया गया।

किरमी 'डीमिनरन'<sup>४</sup> ने उन्हें गुप्त रूपसे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। इसके फलस्वरूप उनके बहन धीरे-धीरे बहनोई ने नये कान्सेल्ट की स्थापना के लिए एबिला में १९६१ में कार्य प्रारम्भ कर दिया। कान्सेल्ट की बनावट इस प्रकार की रही गई थी कि जनता को यही पता चले कि यह इमारत किसी परिवार के रहने का स्थान होगी। जब यह इमारत बन रही थी तब नरक मठीजा और परिवार का छोटा सड़का मोनजामेड सेंसते-सेलन किसी भाँति बस्तु क

<sup>१</sup> रिफॉर्मेशन

- पुस्तक संख्याती

<sup>२</sup> मठाधीश ।

<sup>३</sup> वर्ष का अधिकारी गण ।

भीषे आ गया। स्पष्ट रूप से प्राणहीन यह बालक सप्त टेरेसा के हाथों पर लिटा दिया गया। बालक को हाथों में लेकर सप्त ने परमात्मा का स्मरण किया। कुछ ही क्षण के बाद वह बालक पुनः भला-बुरा उसकी माँ को सौंप दिया गया।

बड़े विरोधों और झड़पों के बाद नया कान्फेष्ट बनाने के लिए पोप की आज्ञा प्राप्त हो गई। यह भवन सप्त जोरफ को समर्पित किया गया। टेरेसा सहित चार अन्य नव छात्राओं ने इस कान्फेष्ट में आकर "सुधारवादी नियम" के अधीन शपथ ली।

यद्यपि टेरेसा धार्मिक विचारों में मग्न रहने वाली तथा परमात्मा की दृष्टि निहुराने वाली सप्त महिला की परन्तु चर्च के समय कार्य-सम्पादन में भी उनकी समता न थी। यह युग उन चार नव छात्राओं में भी विद्यमान था जिन्हें टेरेसा ने बाद में बनाए कान्फेष्ट के लिए चुना था। अनुयायियों के सम्बन्ध में उनकी पहली आवश्यकता थी क्रिया बुद्धि की। यह युग उन्होंने धार्मिक पवित्रता से भी अधिक आवश्यक माना था। क्रियाबुद्धि व्यक्ति धार्मिक पवित्रता को बल करके भी प्राप्त कर सकता है परन्तु जो बुद्धिमान नहीं है वे उचित नियम लेने में समर्थ नहीं रहते।

"बुद्धिमानों का भस्तिष्क भी सरस और उदार होता है। वह अपनी श्रुतियों को परख लेता है और उनसे बचने का यत्न भी करता है। इसके विपरीत संकुचित और अपरिपक्व भस्तिष्क तो श्रुतियों का समझाने पर भी नहीं सुकरता। अगर प्रभु किसी छोटी उम्र की लड़की को भक्ति का मरदान देकर उसे ध्यान करना भी सिखा दे तो वह कुछ भी नहीं कर पायेगी। वह समाज का भला करने के बजाय उसके लिए भार सिद्ध होगी।" उन्होंने यह भी कहा था 'परमात्मा हमें पूर्ण मनु (मिथुनी) होने से बचाए।"

वह नियम-मति के छोटे-छोटे कामों में भी बड़ी चतुराई दिखाती थी। वे नम्रतापूर्वक ही कि कपड़ा की पुसार्ई कम खर्च पर कैसे की जा सकती है। अपने जमाने में लोगों की अपेक्षा उन्हें सफाई से बड़ा प्यार था। उन्होंने अपने कन्फेस्टर को पत्र लिख कर एक भोजन बनाने वाले स्टोव के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया था। वे भोजन बनाने में काफी निपुण थी।

ए नियम की पक्की थी पर उनके ईमपुन स्वभाव के कारण नियम की वह बढारता प्रसरती नहीं थी। नन्म (मिथुनियों) की दृष्टियों को स्वयं अपना

कर ने उन्हें बुरा हुआठी रूठी थी । वे यत्न करती थीं कि एक नई नमू में तीन बीजों का बाब हो । ईसने का जाने का और सौत का । उनका कहना था "धगर वह हूँवना पचक करती है तो प्रसन्न मुद्रा में रहेगी धगर कामें की बीकीन होगी तो स्वस्व रूँमी धीर धगर उसे सोने की प्रायत होगी तो उसे मानसिक विकारों से छुटकारा मिलेगा । इस प्रकार उन्होंने धुमा-क्रिया कर उन महिलाओं की भाँसना की जो धात्म-संयम की प्राइ लेकर अपने प्रापकी सामान्य काम के धयोम्य बनाठी हैं ।

वे अपनी सहयोगिनी गम्य से कहा करती थी—“परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है । वह मटके धीर मटकियों में भी है । जब तुम्हारा कर्त्तव्य तुम्हें परेमु धीर सामाजिक कार्यों में ( यथा रसोई में जहाँ बर्तन साफ करते हैं ) बुलाता है तो यह याव रजो कि परमेस्वर तुम्हारी सहायता के लिए जहाँ भी पहुँच जाता है । इस प्रकार वह तुम्हारी अन्तर्य धीर बहिर्य पतिविधियों में सहायक सिद्ध होता है ।”

सन्त बोधक के कान्धेष्ट में चार बर्त रूँने पर टेरसा को उनके अघर बनरक ने प्राचारमूठ इन्हीं नियमों के अनुसार धम्य स्थानों पर भी मठों की स्थापना करने का प्रायह किया । धब जन्हीं सन्धी-सन्धी धीर धसुविधाप्रब यात्राएं करनी पड़ीं । ऐसी यात्राएं उनकी धामु की महिलाओं के लिए कष्टप्रद ही थीं । यात्रा का साधन बिना कमाती की पाकिया होती थी । कमी तो उपतपती घुप होती थी तो कमी कटकटाठी ठंड । कमी यात्रा करते हुए मूसाबाार बर्षा का सामना करना पड़ता था धीर कमी बाइों का मुकाबला करवा पड़ता था । धकधर जिन भागों पर यात्रा की जाती थी वे पहाड़ी पमडंधियों से धन्धे नहीं कहे जा सकते थे । इन भागों पर बने विधामस्थल गन्दे धीर कीटानुधों से भरे रहते थे । ऐसे स्थानों पर विधाम करना टेरसा के बीतपती स्वमान के अनुकूल न था । यही नहीं कोचबान भी विस्वसनीय नहीं होते थे । टेरसा के साब केबल कविपम गन्त धीर एक पावरी होता था । इस प्रकार की जावे वाली यात्राएं सर्वैव घसाबाारक रूप से साइसी यात्राएं होती थीं । धस्तु, टेरसा का बल इस प्रकार की यात्राओं में बहुत ही मयनीव रहता था ।

कान्धेष्ट की स्थापना कठिनाइयों धीर धसुविधाओं से भरी होती थी । तोलेडो का ही उदाहरण नीजिए जहाँ कान्धेष्ट की स्थापना के समय टेरसा के पास केबल चार इन्फेन्ट्री ही थे । “टेरसा धीर यह दाग कुछ भी नहीं है परन्तु

१. एक प्रकार की मत्ता ।



ईसबर-टेरेसा धीर से मुद्राएं पर्वान्त हैं।" यह वाक्य वा टेरेसा का जो कान्सेप्ट की संस्थापना के सबसे पहले पर उन्होंने कहा था। कई संस्थान तो धार्मिक साम्राज्य थे। केवल मिला पर ही उनका गुणात्मक भ्रमण था। इसके साथ-साथ पर्याप्त धन के आधार पर स्थापित संस्थान कमी-कमी उनकी विन्या के कारण बग जाते थे। क्योंकि ऐसे संस्थानों से भी जैसे-कैसे का हाथड़ा उठ सड़ा होता था। यही नहीं धर्मधाम में प्राप्त राशि धनवा सम्पदा के उपयोग में कानूनी संसद धा जाते थे। उनको प्राप्त करने में उत्तराधिकार की समस्या उठ जाती होती थी।

मेडीना में हम टेरेसा को एक धर्म समस्या में भी उलझा हुआ देखते हैं। "अपने एन्वनी डॉक पीसस" से विनोद से एविन के संस्थापनी महारामाओं (कारमीड) में धर्मयत्न मानवी थीं उन्होंने अपनी कठिनाइयों के विषय में बताया था। उन्होंने कहा था कि "अपने" लोग संघोषित धर्माभरणों पर बसने के लिए सड़क उत्सुक नहीं होते। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि एडर एग्नी डॉक जीसस ने संघोषित धर्माभरणों के अनुसार जीवन दिशाने का निर्णय सुनाया। इनके उपरान्त टिगने धीर बिनस पादरी 'जान डॉक फ्रांस' ने अपने धर्म को समर्पित किया। उन्हें टेरेसा स्नेहात्मक रूप से 'इयोडे सत्यासी' के नाम से सम्बोधित करती थीं। कासातर 'कान्सेप्ट डॉक इन्कारनेशन' में इन्होंने 'जान डॉक द नाम' की नियुक्ति मन्सु के बोध एवं पाप का स्वीकरण मूलने वाले पादरी के रूप में हुयी। टेरेसा इस कान्सेप्ट की महान्तिन नियुक्त हुईं।

टेरेसा को 'पोपुलैरिटी विजिटर' द्वारा इत कुप्रबन्धित कान्सेप्ट की संशोधन करन का काम संचालक मगा। एक बड़े महिला समाज के कार्यकर्तों का निरीक्षण धीर मुपार धार्मिक कामपटुता धीर होधियारी चाहता था। उनकी कई पूर्व महारती मन्सु ने उनकी धार्मिक मानने से इन्कार कर दिया। ये मन्सु टेरेसा द्वारा की गई उनकी कटु धार्मिकता को नहीं मूल पाई थी।<sup>1</sup> टेरेसा ने स्पष्ट कहा था कि उन विद्युत्तियों (मन्सु) के रहन-सहन का ढंग धार्मिक नियमित तथा त्यागी हीना चाहिए। इस माध्यमों की जानकारी पाकर टेरेसा ने यह घोषणा भी

1. पादरी।

2. पोप द्वारा नियुक्त निरीक्षक।

3. टेरेसा ने जैसा कि पाठक पीछे पढ़ चुके ह धार्मिक मठों में होने वाली साम्राज्यताओं धीर धर्मधाम पर रोष प्रकट किया था।

की थी कि वे मठ की सबसे छोटी भिक्षुनी से कुछ न कुछ ग्रहण करना चाहती है। अधिकार बिज्ञाना नहीं चाहती। परिस्थिति को समझते हुए टेरसा ने महिन्तन पत्र पर बैठ कर उड़घाटन-भावण में रूढ़ा था— 'मेरी माताप्रो, धीर रहना। मुझे धारोदानुसार इस स्थान पर भेजा गया है। मैं कमी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। मैं अपने को इस स्थान के अयोग्य पाती हूँ ... मैं तो केवल आपकी सेवा के लिए उपस्थित हुई हूँ ... मैं इस मठ की बन्धी हूँ और आप सभी की बहिन। मुझे बटाइये कि मैं आपकी सेवा किस प्रकार कर सकती हूँ। मैं बड़ी प्रसन्नता से आप सभी की सेवा करूँगी। इसलिए आपको अपनी सहयोगिता के अनुशासन में रहते हुए कोई कष्ट नहीं होना चाहिए, जो कि कई रूपों में आपकी सेवा है।"

अपने कन्वेंसर की पाठा पाकर उन्होंने अपने जीवन और धिमाओं का संक्षिप्त लेखा-जोखा लिपिबद्ध किया। दिव्य-दर्शन के सम्बन्ध में टेरसा ने तीन प्रकार के दिव्य-दर्शन का उल्लेख किया है। उन्होंने इनका सम्बन्ध ध्यानावस्था की विभिन्न स्थितियों से जोड़ा है।

दिव्य दर्शन का पहला प्रकार है—'भौतिक दर्शन' या स्पूल दर्शन' (मटेरियल विजन) जो केवल इंद्रियों द्वारा ही अनुभूत है। प्रथम श्रेणी की ज्ञानावस्था द्वारा इस प्रकार का दर्शन सम्बन्धित है। दूसरी स्थिति में प्राप्त मानसिक दर्शन धान्तरिक अवचेतना से सम्बन्धित माना जाता है। इस समय प्राप्त दिव्य दर्शन को ब्रह्म ज्योतिर काल के ज्ञान प्रकाश से भी जोड़ा जाता है। यहाँ दिव्य दर्शन दूसरी व तीसरी दोनों ही प्रकार की ध्यान-मग्न स्थितियों का परिचायक है। अन्त में आता है बौद्धिक दिव्य दर्शन जिसे हम आकार रहित दिव्य दर्शन कहेंगे। यह समय आत्मा-परमात्मा की साकारता का चोतक है।

टेरसा को कई बार स्पूल दिव्य दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ था। वे इससे संतुष्ट नहीं हुईं बल्कि नियम-निष्ठ के साथ ध्यान-मग्न रहने का कार्य करती रहीं। तब उन्हें धान्तरिक अवचेतना से सम्बन्धित दिव्य दर्शन का अवसर मिला। अर्थात् धान्तरिक अनुभूति करने वाले अर्थों—मन मस्तिष्क और आत्मा द्वारा दिव्य दर्शन का आभास हुआ। प्रारम्भ में केवल कोई एक अर्थ विशेष दिखाई दिया—उदाहरणार्थ पहले हाथ फिर मुँह और अन्त में सम्पूर्ण आकार दिखाई दिया। इस प्रकार के दिव्य दर्शन पूर्ण रूप से प्रकाशित और स्पष्ट होते थे। इनकी तुलना अन्त में निर्मल स्पष्टिक पर बहने वाले स्वच्छ जल में

सूर्य के प्रतिबिम्ब से की है। इस उपमा में भी सूर्य का प्रतिबिम्ब उस क्षीम में बिठका जल कभी सूर्यन आदि के कारण कुछ बुंधता पड़ जाता है स्पष्ट नहीं रहता। पर सत्य के अनुसार दिव्य दर्शन निर्मलता और स्पष्टता से प्राप्त होते थे। सूर्य का प्राकृतिक रूप जल में उतना स्पष्ट नहीं रहने पाता जितना अन्यत्र पर्वतों में प्रकृतिक होता है।

कभी-कभी अद्वितीय सोमाधी के साथ प्रभु ईसा मसीह का पूर्ण स्वरूप चेतन रूप में टैरेसा के सामने आया। इस प्रकार के दिव्य दर्शनों का बहुत पहला प्रभाव पड़ता था और वे परमात्म्य के कारण समाहित हो जाती थीं। परन्तु यदि वे इस दिव्य दर्शन का विस्मयण करती थी तो सभी कुछ भोप हो जाता था।

दीर्घकाल दिव्य दर्शन के अनुभवों को दर्शनों में बाँधने का यत्न करते हुए सत्य ने लिखा है—“यह अनुभव उसी प्रकार का होता था जैसे एक व्यक्ति जिसे कभी मिलने-आने भवना अभ्यस्य का व्यवहार तो मिला हो परन्तु सहसा ही वह पूर्ण शान्तियान् स्थिति हो जाए।” उन्हें परम पिता परमात्मा की उपस्थिति में किसी भी प्रकार की शंका नहीं थी। यह विश्वास धात्मा का परमात्मा से मिलन स्पष्ट करता है। ऐसी स्थिति में धात्मा का सौभाग्य परमात्मा से स्थापित होता है। पर्वत प्रमुख हो जाता है। ऐन्द्रिय धारणों से ईश्वर की अनुभूति सम्भव नहीं रह जाती। इस स्थिति का परिचायक है सत्य का यह कथन—“मैं नहीं हूँ जो भी रही हूँ परन्तु यह तो प्रभु ईसा मसीह हैं जो मेरे में रह रहे हैं।”

टैरेसा ने ध्यानावस्था में सुनी ध्वनियों का भी उल्लेख किया है। सबसे पहले जो कुछ उन्होंने सुना था उसका उल्लेख करने के लिए वे लिखती हैं—“मैं चाहता हूँ कि तुम मनुष्य से नहीं देवताओं से सम्भाषण करो।” इस आदेश को सुनने के उपरान्त उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि वे ईश्वर प्रेमियों के समाज से ही सम्बन्ध रखेंगी। उस समय फ्रेंची हुई धापाधार की भावनाओं को ध्यान में रखकर यदि हम उपरोक्त ईश्वरवाच्य के बारे में सोचें तो स्पष्ट होगा कि उक्त वाक्य सुन कर सत्य की धारणिक ध्यान की अनुभूति हुई होगी। किन्तु उनका भय ईश्वर द्वारा ही गई ध्यानावस्था “मेरी पत्नी तुम बर, मैं तीरे साथ हूँ। तुम कभी भी धकेला नहीं छोड़ूँगा” से दूर हो गया।

एक बार टैरेसा ने सुना—“दुखी न हो मैं तुम पुस्तकें दूँगा।” इन दिनों इन्वर्सी-विद्यन<sup>1</sup> कई स्तनिय पुस्तकों को जता रहा था। इन पुस्तकों में कुछ ऐसी पुस्तकें

<sup>1</sup> ईसाई धर्मोपदेशियों द्वारा स्थापित ध्यानावस्था।

की जिन्हें पढ़ना टेरेसा को बहिष्कार लगता था । धारम्भ में तो वे इस धारणा का धर्म नहीं समझीं पर कामान्तर में उन्हें समझ आ गया कि "परम प्रभु स्वयं ही एक बीजित पुस्तक है जिस से सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।"

धार्म्यात्मिक परमानन्द की विभिन्न स्थितियों का भी टेरेसा ने उल्लेख किया है । शारीरिक अनुभूति सूक्ष्मतम हो गई । धार्म्यात्मिक परमानन्द की उन्नावस्था में ऐसा लगता है मानों आत्मा शरीर को सम्प्राप्त बनाने में सहयोग नहीं देती । नाड़ी का बन्द हो जाना । मुझमें पीस जाती है । ऐसी धार्म्यात्मिक स्थिति का आभास होता जिसकी उन्होंने पहले कल्पना भी नहीं की थी बड़ी हिम्मत की बात थी । फिर भी प्रसन्नता की इस बहिष्करी पर टेरेसा चढ़ती रही । ईश्वर प्राप्ति की उत्कट इच्छा ने उसे उक्त सभी प्रकार की यातनाओं सहने के योग्य बनाया । उसे परम प्रभु ने भी यह शिक्षा दी कि धार्म्यिक धार्मिक आनन्द की प्राप्ति में दिने तन्त्र बुद्ध से डरना नहीं चाहिए । इस प्रकार की यातनाओं से आत्मा उसी तरह विमल होता है जैसे तपाकर मुद्र करने पर सौदा कुन्दल बन जाय ।

सन्त टेरेसा ने धार्म्यात्मिक विकास के चिन्तों में उल्लेखनीय शक्ति प्राप्त कर ली थी । वे कई घटनाओं के बारे में सारांश पढ़से भविष्यवाणी कर सकती थी । वे बुधा तन्त्र (भिलुषियों) में प्राप्त भजन का अन्तर धारणा से कर सकती थी । वे बतला सकती थीं कि किस ने सही धर्मों में जन्म-मार्ग रखा है और किस ने केवल धार्मिक रूप में ।

उनकी निष्ठा का सार दो धर्मों में कहा जा सकता है प्रेम और विनम्रता । विनम्रता तो उन में काफ़ी समय तक नहीं आई थी । तथापि अपने धार में ईश्वरीय निवास की आस्था होने के साथ-साथ ही आ धन्तलौमरता प्रियतम से महाभिन्न की ओर से जाता है प्रेम का प्रभाव अपना ।

स्वास्थ्य बरबाद होने पर भी जीवन के अन्तिम क्षणों तक वे अपना कार्यक्रम चलाती रहीं । वे दुर्गम यात्राएं करतीं और पूर्व-स्थापित कामेष्ठों में जो इनके अधिकार क्षेत्र में भी पाते थे जाया करतीं थीं । टालेडो, सेबिने जालेन्सिया और अन्य स्थानों पर भी वे जातीं थी ।

फरवरी १३, सन् १५८२ में अड़सठ बय की आयु में उनकी मृत्यु हो गई । आज भी उनका मुग ल निकसे मे स्वर याद आते हैं—“धो मरे परमात्मा मेरे प्रियतम । अन्तः बहुसमय घाही गया जिसकी मैंने बड़ी उत्पन्ना से प्रतीक्षा की थी । अब हीम ही मैं तरी कारण में आ जाऊंगी ।----- तेरी इच्छा पूरी होगी ।”

## सॉ मेरी एन्जलीक

एन्जलीक प्रॉन्गाल्ड (१४९१-१६९१) और पोर्टे रायस की कहानी पूर्व रूप से प्रमुख-समर्पण की कहानी है ; कहानी का प्रथम पाठ रायस की पत्रिका और मेरी एन्जलीक द्वारा रचित सभी वस्तुओं के विभाजन से होता है । यह यूरोप के धार्मिक इतिहास का अत्यधिक कठोरपूर्ण प्रभाव है । इसमें प्रमुख मसीह की समाधि और प्रेम-भावना का स्मरण नहीं है । जाने-समझने ईसू के समर्थकों ने दिव्य सम्बंध का सार विकृत रूप में ग्रहण किया ।

प्रॉन्गाल्ड के सभी निष्कर्षों को एक सजीव धुन छबार हुई । इस धुन को ही उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया । इस स्मरण के प्रभावशाली व्यक्तियों की सहायता से जनसाधारण अपना जीवन भी समर्पित करने को तैयार हो गये थे ।

यद्यपि मेरी एन्जलीक की सुधारवादी रूप प्रवृत्ति पर उनके सम्बंध तथा मित्रों पर विरोधियों ने बाहरी रूप से विजय प्राप्त कर ली परन्तु अन्तःकरण ने इस विजय को स्वीकार नहीं किया । इस विजय का महत्व उतना नहीं था जितना विरोधियों ने माना था । माना यह विजय कोई निर्वाचक विजय नहीं थी । 'इसी के प्रमाण में हम आज पोर्टे रायस को आज का प्रमाण देते हुए देखते हैं । अपनी मृत्यु के उपरान्त इतने सन्धे समय तक अज्ञेय बरकत और आम रचित बीसे अनुरोध पोर्टे रायस के पूर्व निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए अत्यन्त विचार देते हैं ।

एकात्मिकता और अज्ञेयत्व अन्ध से सुशोभित पोर्टे रायस उन अनेक उदाहरणों में से एक है जो यह निश्चित करते हैं कि महानशीलता की दुःख कभी ने अपने धर्म मानकों को धर्म-भाषा से बंधित रखा ।

सबूद निर्भय निर्दोष और तेजस्वी महिला एन्जलीक प्रॉन्गाल्ड धर्म के प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा से सुसज्जित अपनी इन कहानी की प्रमुख पात्र है ।

प्रॉन्गाल्ड की मां माये जो कि ह्यमपाट<sup>१</sup> ने एन्जलीक के दादा जी से । उन्होंने

<sup>१</sup> आत्मानुसंगी प्रोफेसर ईसाई ।

लन्ड बाबोसोम्पु क विचर क उपरान्त अपनी कई सन्तानों के साथ कालविनिर्जम<sup>१</sup> को त्याग दिया । इन सन्तानों में एंग्लीक के पिताभी भी थे । लेकिन कुछ हायनेट परिवार की कुछ महिलाएँ 'ला रोबेक' में पूर्ववत् बनी रहीं ।

पोर्ट रामस के प्रमुख पुराचार के बंभुस में प्रॉरमास परिवार था । धीरे धीरे सबसे अधिक एम० धारणी प्रॉरमास की लेखनी द्वारा विभिन्न एंग्लीक के पिताभी ।

घरने इस प्रवचन में उन्होंने निष्ठापूर्वक कहा है कि जैसूट<sup>२</sup> लोगों को जोकि चासीस वर्ष तक बसने वाले यूरोपीय मरमेस के बोयी समझे गये हैं, फ्रांस में नहीं जाने दिया था । इस वस्तुष्य के उपरान्त प्रॉरमास निरर्चबेह कामास्तर में हुए पोर्ट रामस के उत्पीड़नोन्माह के कारण समझे गए । इनके वस्तुष्य के कारण उत्पीड़ितों में मैरी एंग्लीक धीरे उनके स्वर्ण सहयोगी थे । इनके प्रतिरिक्त 'जागसन' एवं उसके दोस्त 'चीन डू बरजियर डी हाउरानी' तथा 'एम्मे डी सेष्ट-सीरल' भी थे ।

जागसन जिन्हें मक्कर जागसनियस के नाम से पुकारा जाता था सन् १६८३ में पैदा हुआ । १६८३ में जागसन के विषय के पद पर पहुंच कर में परलोकवासी हुए । उनके जीवन-काल में किसी ने भी उनकी चासिक मिष्ठा पर सम्येह नहीं किया । स्वैम निवासी होने के कारण लाउबेन विश्वविद्यालय के उनके कुछ मित्रों ने उन्हें दो बार मार्बर्टि<sup>३</sup> भेजा था जिस से वे जैसूट सम्प्रदाय के विरुद्ध अपनी विचार बारा को स्पष्ट रूप से रख सकने योग्य बन पायें । इन्हें कोई भी नास्तिक न समझता यदि वे अपने अनुयायियों को स्वयं की मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित करने के लिए 'मवस्टीनियस' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि न छोड़ जाते ।

एंग्लीक के विरोधियों ने इस पुस्तक में दिये सिद्धान्तों का धाबार मिया । कहा गया कि एंग्लीक के परिवार के लोगों के धीरे जागसन के मित्र एम्मे सीरल के प्रवचनों धीरे जीवन में भी यह दार्शनिक सिद्धान्त पाया जाता है । इनके अनुयायी जो बच बच पोप धीरे फ्रांस के लिए बातक माने गए ।

स्विति समझने में हमें यहाँ सावधानी बरतनी होगी । पोर्ट रामस में

<sup>१</sup> कामनिग की विचार परम्परा के अनुसार पापों से मुक्ति मिलाने वाली साम्यता ।

<sup>२</sup> इसाई—रोमन कैथोलिक मत के लोग ।

मेरी एंग्लीक के सुधारों को जानमन के सुधारों से भिन्न समझना होगा। यद्यपि एंग्लीक के विरोधी ऐसा नहीं समझते थे। जब एंग्लीक अपना सुधारकारी धार्मिक दृष्टिकोण रख रही थी तो सप्त मीरन से उनका परिचय भी नहीं था। आमजन के मिथ्या और मूल मीरन से उनका परिचय बीस वर्ष बाद जब वे अपने कान्ब्रिज की स्थापना कर चुकी थी हुआ था। अनुदार संघर्ष कास में ऐसा समय भी आया जब समझा था कि पीट रॉयल के कान्ब्रिज में धारम-शुद्धि और प्रार्थना का जीवन बिना किसी विरोध के चलता रहेगा। परन्तु ऐसा काहे को होता।

पीट रॉयल के धारम-धारों की इति के बहुत पहले ही एंग्लीक परकील-बासी हो गई थी। लेकिन बिस्वास है कि वे अपने सभी प्रयत्नों का फल देख सकती थी। वे इसे स्वीकार कर सकती थी। क्योंकि प्रत्येक विरोध और प्रत्येक सहयोग को सहजा उनके लिए सम्भव था। यह सभी वे केवल यह सोच कर करती कि ईश्वर ने अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए मूस भेजा है। कठिन से कठिन समय आने पर भी वे ईश्वरीय इच्छा के अनुसार साधरण कर सकती थी। ऐसे समय में भी वह सहभाव से खती थी जब साधारण मानव अपने का निराम और कुच्छिन्न अनुभव करना था। उनके लिए हर प्रकार की कठिनाई परीक्षा ईश्वर की अनुकम्पा के समान थी। इस प्रकार का ईश्वरीय इच्छा के धारम समर्पण प्रत्येक के लिए जो धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहता था आवश्यक लगता था। इसके बिना कोई भी व्यक्ति स्त्री या पुरुष उनकी दृष्टि में धार्मिक नहीं था और उसे वह सही धर्म में साधु या धार्मिक मानने का तैयार न थी। ईश्वरीय इच्छा के धारम समर्पण किए बिना कोई व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा को धार्मिक सहृदय के साथ निभा नहीं सकता।

ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त करना बड़ी बात है परन्तु यह कबल वैयक्तिक संघर्षों के द्वारा या किसी मुना के बिनास के द्वारा या अपने स्वयं के उरजय के द्वारा ही प्राप्त मरी हो सकता। धार्मिक धारमों का दुस्ता पुनः प्राप्त करने का अधिष्ठान पुरस्कार ईश्वरीय अनुग्रह नहीं होता। इसीलिए कहा जा सकता है कि एंग्लीक के लिए शिव बन्धुभा का भाग भी उन्हें उनी साधारण पर ही स्वीकार होगा। मरुत धारमों में जो धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति हैं उन्हें किसी भी बाटि की विरोधी स्थिति में हम देखेंगे कि ईश्वर पर अपनी धार्मिक धारम बनाए रहते हैं। उनके हृदय में कभी भी बिनास की भावना नहीं उठती बाहे उन पर बड़ी से बड़ी धारम या ज्ञान। मार्गों के कहते-मनते पर धारम धारमों रचि और

सपास के लिए वे कभी भी ईस्वीय इच्छा के विरुद्ध विद्रोह नहीं करते। विद्रोह का अर्थ ईस्वीय इच्छा को न मानना भी ठो है। पोर्टे रायस ने सनातन सत्य को जैसा कि सन्त अगस्टाइन ने समझाया था धीरे-धीरे स्वच्छन्दवादी मोमीना की विचार-धारा के विरुद्ध अर्थ ने स्वीकार किया था स्थिर रहने का मत किया। स्वच्छन्द या निरंकुश इच्छा को महत्त्व देने वाले साधक की भावना योम्यता को मापी से अधिक महत्त्वहीन ईस्वीय अनुकम्पा से भी महान् मानत है।

एग्जमीक केवल सुधारवादी ही नहीं थी। अपनी जीवन-व्यवृति से उन्होंने सैकड़ों स्त्री-पुरुषों को प्रभावित किया। उनका प्रभाव केवल अपने काम्पेष्ट में रहने वाली सीधी सारी नम् (साप्पी) पर ही न था। यह सब उनके छात्राचार्यों के प्रबल विरोध के बावजूद भी होता रहा। उन्होंने आत्म-त्याग और आत्म निरीक्षण की आवश्यकता का प्रचार ही नहीं किया अपितु अपने जीवन में भी उसको बटाया। कड़े व्यक्तिवादी संघम का उन्होंने अपनाया था।

किन्तु फिर भी बड़ा आश्चर्य है कि एक मूठ ने पोर्टे रायस की आत्मिक सुधारवादी प्रकृति और उनकी निजी आत्मिक बिन्दुगी के विरोध में एक मूमिका का स्थान ग्रहण कर लिया। घाठ वर्षीय कम्पा के विरुद्ध पोप की प्रशस्ति प्राप्त करने के लिए उनकी आयु में घाठ वर्ष और बढ़ाने पड़े। एम० अनटानी० धारनाकड ने अपनी सड़की को माउन्सम के मठ (एम्बे) में जहाँ नव सिखायी के रूप में उसे प्रवेश पाना था ले जाने से पूर्व यह नहीं सोचा कि उनकी इस मूल का परिणाम भयंकर होगा। पोर्टे रायस के द्वार सदा के लिए बन्द हो जाने से तथा सन्त बर्नार्ड की आत्मा एग्जमीक के अपने परिवार और निकट सम्बन्धियों पर लागू हो जाने से।

कपोषित नामक सम्पूर्ण साधु का एक बार उन्होंने प्रवचन सुना। इस समय यानी १६०५ में वे पोर्टे रायस की महान्तिन क रूप में निवृत्त हो गई थीं। प्रवचन सुन कर उन्होंने निर्णय किया कि वे अपने मठ का सुधार करेंगी। उन्होंने यह सुधार अपने सम्बन्धियों के बड़बड़ाने और स्पष्ट विरोध करने तथा उनके पूर्ववर्ती निराशाओं के मुक्के-झिंटे बिछाने करने पर भी सामू लिये। 'जर्नी इन् प्रिन्सेट' के नाम से जानी जाने वाली सुप्रसिद्ध यात्रा के उपरान्त जो एग्जमीक के महत्त्व-पूर्व जीवन की महत्त्व-पूर्व घटना है, पोर्टे रायस की प्रता से सुप्रसिद्ध कार्टीयविट्म<sup>१</sup> के रूप में स्थापित पाने सया। इस मठ का निरीक्षण सन्त थ्याम्कोर लिडी सेर जैसे व्यक्ति करते थे।

<sup>१</sup> इब्रताम्बर ईसाई संस्थापियों का मठ।



दिसम्बर २५, सन् १९०६ को 'वर्गीयू मिचेल' नामक यात्रा हुई थी।  
 छ दिन घोरमालव परिवार पोर्ट रायल धाया था। उन्होंने अनुभव किया कि वे  
 मस्पान के सर्वोच्च भागक हैं। एग्जमीक में अपने कोषी पिता को घाटेस दिया  
 क वे मठ के नियमों का पालन करें। इससे सिद्ध होता है कि धार्मिक  
 जीवन का जहाँ तक प्रश्न है वे बिना साय-लपेट के स्पष्ट व्यवहार रखती थीं  
 और किसी से डरती न थी। वे मठ-जीवन में सम्बन्धित समय को निष्ठा  
 र्क पासती थी।

घपनी शारी एम० मेरियन से जो बातचीत उन्होंने की थी उससे यह सिद्ध  
 होता है कि वे घपनी दृष्टि के विरुद्ध नन (माष्पी) बनी थी। उन्होंने अपने  
 यात्रा में कहा था कि वे दुर्भाग्य से अपने माता पिता की दूसरी सन्तान हैं। यदि  
 हुनी सन्तान होती तो उनका विवाह भी हो जाता। परन्तु जब वे नन बना ही थी  
 हैं तो फिर नन के जीवन के लिए प्राबन्धक सभी नियमों का पालन उन्होंने प्राबन्धक  
 रना। उनके संपन सम्बन्धी निष्पय का माता-पिता द्वारा ही विरोध हो गया। वे  
 की निष्ठा में मठ में जीवन बिताया चाहती थी। वे चाहती थी कि उनकी बहिनें  
 भी उनका अनुकरण करें। सभी नियम-अयम का पालन हो तथा बिना किसी शर्त  
 के प्राय-समर्पण की भावना हो। उनका अनुसार धार्मिक जीवन की प्राबन्धक प्राय  
 के अनुभव जीवन-यापन प्राबन्धक का। बिना संशय लिए वेबन इकोनला  
 रीर घोषा ही था। यह एक जवन्य अपराध था जिसे कभी भी क्षमा नहीं  
 किया जाना चाहिए। धार्मिक प्रकृति का कोई भी व्यक्ति ऐसा अपराध  
 करे।

इस घटना घायु की महशुस द्वारा पोर्ट रायल में धार्मिक निष्ठा को मूल रूप में  
 स्थापित करने के प्रयास प्रामाण नहीं थे। एक तो उन्हें सभी जीवन का अनुभव  
 की कम था और दूसरी ओर उनके चारों ओर निराशा और धनिममिता का  
 साम्राज्य था। फिर भी सभी कठिन शर्तों का अनुभवना-सुर्बक और सहाय रूप  
 में सम्पादन करने वाली इस महिला की निम्नोह ईश्वरीय कृपा प्राप्त थी।  
 उन कुशरों को घपनी ज्ञाना ज्ञानाने में प्राप्त घायु वाली एग्जमीक का बहुत  
 रीरज से काम लेना कहा था। वे समझने के पल में न थी। धार्मिक मान्यताओं  
 रीर नियम निष्ठाया की वे पूर्ण अज्ञेय अयन मानती थी। वे इसके लिए प्रप्त  
 उक्तैयार थी। यह शरीर शक्ति है कि उनके द्वारा धनिरिजित धार्मिक निष्ठा  
 के फलस्वरूप कई लोगों ने प्राय-स्वाय और प्राय-अयम को पूरी तरह समझा और  
 प्रपनाया।

एंग्लीक की मृत्यु के कान्ही समय बाद बन्दु प्रासोचक बोस्टर की भी भर्म सुधार को अपनाने वाले पोर्ट रयल समाज में कट्टर धार्मिक विश्वास और प्रास्था रिबाई दी। एकात्मवासी मत्सु के उस छोटे से बल की अपने सिद्धान्तों में जिन्हें वे दैनिक प्रादेश-सत्त्व समझती थीं इतनी धार्मिक बड़ा थी कि कोहों से पीटे जाने पर भी वे उन्हें छोड़ने को तैयार न थीं।

एंग्लीक का पहला प्रयत्न या मठों में सम्परिचितता के नियमों का कठोरता से पालन करवाना। निर्भंगता मानवता प्राज्ञा-पालन और एकान्तवास को महत्त्व देना। इन सभी बातों की सिस्टरशियन भाईर के प्रचीन प्रावश्यकता समझी गई है। उनकी बुद्धि में वे जो सही रूप से धार्मिक जीवन बिताना चाहती थी उनके लिए केवल व्याख्यायन देना प्रबन्धन करना ही प्रावश्यक कर्तव्य न था उन्हें स्वयं भी उस क्षेत्र में प्रागे बढ़ना चाहिए। अपने प्राप से (धारीरिक रूप से) सम्बन्धियों से और अपनी इच्छाओं से जाहे वे किसी प्रकार की भी हों छुटकारा पाना चाहिए। सभी कुछ त्याग कर परम पिता की शरण में जाना ही ध्येय होना चाहिए। उनको शांति और प्रार्थना में लीन होना चाहिए। धार्मिकार परम प्रभु के जंगम मंदिर ही तो है ये साधु और साध्वी महिलाएँ।

धार्मिक जीवन में प्रबल भावनारमक संतोष उसका माधुर्य और धारम-विस्मृति जो रिबियों को इतनी सरसता से मोह लेता है और जो एंग्लिक धारम्य का रूप धारण कर लेता है उसके कार्यभर में सर्वथा महत्त्वहीन है। वे भर्म के बाह्य प्रावरण में कोई विश्वास नहीं रखती थीं। क्योंकि बम्भी व्यक्ति अपनी हांसा रिक्तता को तिरोहित करने के लिए प्राय इसका प्राभय लेते हैं। बाह्य रूप और धार्मिक जीवन के जोड़ने प्रावरण में उसे कमी धर्षि नहीं रही। जब तक मुख्य सिद्धान्तों और नियमों का समपूर्वक पालन नहीं किया जाये वे सब बुरा है।

एंग्लीक के जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण घटना उनकी 'सेण्ट कॉन्सिड डि सेन्स' से मुबिसोन में सेंट की। वहाँ एम्ब्रेस एंग्लीकडी एस्ट्रीज को स्थानापन्न कर सुधार करने का उत्तरदायित्व उस पर सौंपा गया। एस्ट्रीज के भोलमास पसण्ड हो गये थे। हेनरी जतुर्ब ने सर्वैव उतको संरक्षण प्रदान किया था। एंग्लिक बार बर्ष तक एम्ब्रेस में ठहरी। यद्यपि वह स्थान उनके लिए नया था किन्तु कठिनाइयों और कतरों को पार कर उन्होंने धर्म्य उल्माह का परिचय दिया।

मुबिसोन में एंग्लीक का कार्य उनके प्राघर्ष प्राधरण की अपूर्व सत्क थी। मय और निरामा की उपेक्षित कर समपूर्वक कार्य करना धारम पसण्ड

## पूर्व तथा पश्चिम की सश्रु महिलाएँ

जीवन का परित्याग कर कर्तव्य-परामर्श की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय था। कमी-कमी धामाधीन थीं और बहुत कार्य करते हुए भी बहु सर्वथा संतुष्टि और शांति मत्त रहीं।

'सेंट फ्रांसिस डी सेन्स' नुक्सियोन में ३ अप्रैल १९१९ का एंग्लिकी की एक नवायता को अपना समर्थन देने के लिए प्राये। यह एंग्लिकी के लिए एक सुन्दर बटमा थी। क्योंकि उसके बीच बैप्टिस के धर्मन धार्मिक धाफ विद्येयान से सम्बन्ध होकर कार्य करने का यह सम्य धारण था। उन्होंने परस्पर एक-दूसरे को कई बार देला और वह उसकी बहुत एंग्लिस से मिलने पोर्ट रायल भी गये। किन्तु उन्होंने एंग्लिकी की विद्येयान म सम्मि सित होने की अनुमति नहीं दी। यह पोर्ट रायल में अपने सर्वप्रथम और अनुसूच जीवन को छोड़ कर जीन डी बैप्टिस के धर्मन साधारण धिया के रूप में ही कार्य करती रहीं।

सितम्बर, १९१९ में उनकी धर्मन ध्यक्तितम मट के परभाए एंग्लिकी ने उन्हें कमी नहीं देखा। किन्तु उसे प्रसवा मरे पत्र जिम में बावस्य और महन उपदेश भी रूते थे मिलते रहे। इस पत्र-ध्वनहार का सम्पादन करने वाले विज्ञान धमी भी उनकी गृहपाइयो तक मही पहुँच सके हैं। यह पत्र और सेंट फ्रांसिस डि सेन्स का मरी एंग्लिकी के प्रति सम्पूर्ण दुष्टिकोण एक ऐसे पुर्य और मारी के परस्पर स्वामी सम्बन्ध की धर्मिध्वनि है जो सांसारिक भावना से सिष्ट ध्यक्ति कमी मही समझ सकते हैं। जिम ध्यक्तियो ने इस पत्र-ध्वनहार को पड़ा है वह सबैव उनके धारिक विकास में सहायक सिष्ट हुआ है। यह प्राय प्रसम्मक है कि सेंट फ्रांसिस धाफ धमीसी की अनुपस्थिति में सेंट टेरमा धाफ एंग्लिसा की नी जाये सेंट जान धाफ भाग के धभाव में सेंट टेरमा धाफ एंग्लिसा की नस्पना प्रसम्मक होगी। सेंट फ्रांसिस डि सेन्स के बिना जीन डि फ्रांसिस डि सेन्स का नटिम है। इसी प्रकार मेरी एंग्लिकी के मामले में भी सेंट फ्रांसिस डि सेन्स का प्रभाव धमित था। उसके प्रभाव से एंग्लिकी की कट्टरता और एकपदीयता बिलीन हो गई। उसकी कटोरता धर्षिय किमी भी काम को उचित समझने की उसकी उपाहास्यध बारधा तथा नकार्य धामिक जीवन के प्राण्य में उसके बुष्टिकोण में बिना परिवर्तन था। स्वयं उसके बुष्टिया के बारे म उसके विचारों में बाठिकारी परिवर्तन था मया था।

तीन वर्ष परभाए सेंट फ्रांसिस डि सश्रु की मृग्यु हो गई। धनक तुम्बर पत्रा में सेंट फ्रांसिस ने उमे उसके स्वभाव तथा ध्वय धपने एव समुदाय के प्रति ध्यनहार म परिवर्तन करने के लिए सचेष्ट किया है। सेंट फ्रांसिस ने सम्पूर्ण बुष्टिकोण और धामिक जीवन के प्रति उसकी भावना में एंग्लिकी से गृही

विचित्रता थी, बिस्कुल उसके स्वभाव की भाँति ही । उसके अनुसार ईश्वर का रूप कभी निर्भयता पूर्ण नहीं था और न वह ऐसा ही था जिसे कि जाँपते हुए हृदय से भयपूर्ण सम्मान प्रपित किया जाय ।

सेंट फ्रांसिस डि सेस की सभा यह इच्छा थी कि जीन डि वीटम और आर्डर प्राक ही बिस्किटेसन पोर्ट रायस और मेरी एम्बलीक से परस्पर निकटता-पूर्वक सम्बन्ध हो जाये । १६२२ में उसकी मृत्यु के पश्चात् जीन डि वीटम आगामी बीठ वर्ष तक एम्बलीक का बनिष्ठ मित्र रहा । अपने अन्तिम पत्र में भी उसने यही अनुरोध किया था कि पोर्ट रायस और बिस्किटेसन में परस्पर सहन सम्बन्ध रहे । वस्तुतः यह भाव्य की विदग्धता थी कि सेंट फ्रांसिस डि सेस और जीन डि वीटम की यह आध्यात्मिक दुनिया जैसूइट्स से प्रभावित होकर पार्ट रायस की गर्भों के लिए हृदयहीन और निर्दम कारक प्रहरी सिद्ध हुई ।

१६२५ ई० में एम्बलीक पोर्ट रायस ईस वीम्पुस छोड़ कर फोगा सेंट वीक्वीस पेरिस जमी गई । पोर्ट रायस के अस्वस्थ आतावरण के कारण ही उसने ऐसा किया था । इसका एक और कारण यह भी था कि वह स्वयं तथा अपने दस को सामारिक भावनाओं से परिपूर्ण और अज्ञानी साधुओं से मुक्त कर पेरिस के आर्क बिषप के प्रवीण रहना चाहती थी ।

पेरिस में वह सैगरीर के बिषप सेबस्टीन जेमेट के सम्पर्क में आई । बिषप पहले ही एम्बलीक के सुवाग्-कार्यों का प्रसंसक था और उसकी इच्छा थी कि 'ब्लमड सक्लमेंट' की चिर आराधना के लिए एक आर्डर (मत) स्थापित किया जाये । एम्बलीक ने यह व्यवस्था पोर्ट रायस में पहले ही प्रारम्भ की थी इसलिए दोनों में पर्याप्त सहानुभूति थी । सेबस्टीन जेमेट अत्यन्त उत्साही व्यक्ति था और आध्यात्मिक भावना उसमें इतनी बढ़ी बढ़ी थी कि एम्बलीक बिषप की मातृवता पर मुग्ध हो पड़े । उसने यह बेचने का भी प्रयत्न नहीं किया कि उसका स्वभाव वस्तुतः धोखा है और वह एक संकीर्ण कृति नामा स्थापित ईल व्यक्ति है ।

१६३० में अपने पद से त्यागपत्र देने की उनकी पुरानी इच्छा पूरी हुई और सम्राट् ने पोर्ट रायस को एबिस का अध्यात्मिक निर्वाचन करने का बिषय अधिकार प्रदान किया । एम्बलीक को एक नव शिष्या जेनेबी से टाडिक पूर्वत जेमेट के प्रभाव में थी । एम्बलीक ठहरी एक सीधी सारी लन । उसने अधुना करते हुए अपनी सम्पूर्ण मेहनत को लज्ज हलते हुए देखा । जेनेबी का मत था कि निर्धनता एवं नैराश्रय जीवन के कारण ही लन अपनी वर्तमान व्यवस्था में है अतः उसने उन्हें निकमा-पड़ना सिखाया एवं संनम और उपवास आदि क महत्त्व से अवगत कराया ।

एंग्लीक को यह पसन्द नहीं था। उसकी राय में इस प्रकार के धर्म्यास से मत्स्वायी मान्यता उत्पन्न होती है तथा जो इन्हें यह मिलाते हैं उन्हें एक प्रकार की धारम-गरिमा की अनुमति के पतिरिक्त कोई और नाम नहीं होता।

१६६३ में थार्डर थाफ की एडोरेसन थाफ दी ब्लेसड सेक्रामेंट की स्थापना की गई। सेबस्टीन जेमट की मन्त्र यह इच्छा नहीं थी कि एंग्लिकीक मन्त्र मुपीरियर के पद पर रहे। किन्तु पेरिस के थार्क बिशप ने इसका अनुरोध किया किन्तु धीमे ही एडोरेसन कान्सेप्ट समाप्त हो गया और एंग्लिकीक एक मन को साथ लेकर १६६९ में पोर्ट रायस वापस आ गई।

किन्तु जेमेट ने ही जीन डू ब्रिजियर डि हीरेन एवं एम्बे डि सेंट सीरस को पोर्ट रायस प्रभाव किये थे। वह एक ऐसी घटना थी जिसका धीमे ही सम्पूर्ण सम्प्रदाय पर तीव्र प्रभाव पड़ा। सेंट मीरान के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही पोर्ट रायस इतना विख्यात हो गया और यही उसके विनाश का आधार भी सिद्ध हुआ। सेंट मीरान ज्ञानसेन का परम मित्र था। कार्डिनल डि बीरन और सेंट बिसेंट डि पाल भी उसके गहन मित्र थे। रिगिस्मू उसका बड़ा सम्मान करता था और उसने उसे अपनी ओर मिलाने का राष्ट्रीय प्रयत्न किया किन्तु उसकी स्वतन्त्र कृति से वह नीज उठा और इसे अपने लिए एक प्रकार की मुनीसी मान बैठा। सेंट मीरान शिक्षा-सिद्धान्त में निर्मलता का उपासक था। वह एंग्लिकीक की भावना के निकट था। धारकपन और गरिमा वैयक्तिक गुणावयुक्त नहीं है यह ईश्वर की ओर से प्रदत्त भेंट है। कोई उनके लिए अपने अधिकार होने का दावा नहीं कर सकता। उसके परम मन्त्र भी इमने लिए ईश्वर के मन्त्र अपने अधिकारों का दावा नहीं कर सकते। एंग्लिकीक का विद्वान था कि उसने एक नये सेंट क्रिसिड डि सेस्म को प्राप्त कर लिया है और सम्पूर्ण पोर्ट रायस में सारे सम्बन्ध बिच्छेद कर लिये और उनके दास्यता का समर्थन करने लगीं। सेंट रिगिस्मू की भर्त्सना की गई और उसे बिस्तेज में बन्दी बना लिया गया। इसका कारण यह था कि उसका वैस्टन डि थार्सीयस के विवाह को धर्म्य धारिण करने में स्पष्ट मना कर दिया था तथा उसके विचार कार्डिनल के विचारों से भिन्न थे।

कारण यह ने भी सेंट मीरान पोर्ट रायस के मन समुदाय को निर्दिष्ट करता रहा और रिगिस्मू की मृत्यु का पदचान् जब अपने विवेकीज छोड़ा तो मन्त्रे पहल मनो म भेंट की। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह लक्ष्मीपती राजास्त्री का नबन मद्दान परिभाषक था। पोर्ट रायस के लिए तो उसकी मन्त्रवा एक विगु-नृत्य थी। सेंट मीरान और एंग्लिकीक में विचारों तथा स्वभाव

की जितनी समानता थी उतनी अत्यन्त दुर्लभ है। दोनों ही स्त्रिय स्वभाव के धीरे-धीरे व्यक्ति थे। दोनों का व्यक्तिगत इतना भोजस्वी था कि अन्य व्यक्ति उनके मामले में बंधने लगे रहते थे। दोनों मसीमांति यह जानते थे कि सहयोगियों को किस प्रकार अपने विचारों से अभिभूत कर उनको अनुकरण करने के लिए प्रेरित किया जाये। धीरे-धीरे कार्य को वे ठीक समझते थे उन्हें उसमें कोई नहीं किया सकता था।

१९४२ धीरे-धीरे १९४६ के बीच एन्जलीक निरन्तर बार-बार पोर्ट रायस की एम्बे निर्वाचित की गई। वह अनेकानेक गातिपूर्ण अभिषि थी। १९४० में २२ वर्ष की अनुपस्थिति के पश्चात् कुछ नग को साथ लेकर वह पोर्ट रायस के उम कैम्पस में सीटी बहा एन्जलि बम-समूह ने उनका स्वागत किया।

फ्रेंच के युद्ध में एन्जलीक ने कार्बेट के द्वार खोल दिये धीरे-धीरे सम्पूर्ण पारभाषियों को आशय दिया। उनके हृदय में बुझी जनों के प्रति अगाध ममता थी। बेबर बार धीरे-धीरे भय वस्तु व्यक्तियों के लिए उन्होंने सर्वस्व अर्पित कर दिया। उनकी साधारण समझ धीरे-धीरे मानसिक सन्तुलन धीरे-धीरे संभल-शक्ति अद्भुत थी।

युद्ध की इन्हीं प्रताड़नाओं की भांति एन्जलीक ने अन्य कठिनाइयों का सामना किया। १९३३ में उन्हें अन्य जनों के साथ उस प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया जिसमें कथित रूप में 'आगस्टिनस में प्राप्त पांच प्रस्तावों की निन्दा की गई थी। किन्तु उससे भी उन्हें शांति नहीं मिली।

कुछ समय के लिए यह सब प्रताड़नाएँ धीरे-धीरे समाप्त हो गए एक अमलूत बटना के कारण। इस बटना का परिमलज सम्पूर्ण पोर्ट रायस बर्ष धीरे-धीरे जगत् ने किया। मेरी एन्जलीक के एक सम्बन्धी को जो पादरी के कक्षी से एक कांटा प्राप्त हो गया। इसके बारे में यह प्रसिद्ध था कि वह 'जाउन घाऊ बार्ने' ने सम्बन्धित है। इन्हीं पोर्ट रायस भेजा गया। उस समय काबेष्ट में एक हम कर्षिय बानिजा किमी अनाप्य रोम में पीड़ित थी। उसकी परिचर्या में नियुक्त सिस्टर ने उपर्युक्त कांटे से मुक्त एक पेटी का बानिका से स्पर्श किया धीरे-धीरे उसका रोग उदा के लिए दूर हो गया। उसका अच्युत चिह्न भी नहीं था। डाक्टरों ने बताया कि इस प्रकार की शक्ति किमी भी साधारण औषधि की शक्ति से परे है। वैरिस के घाँके विषय में इसे एक अमलूक बोधित किया। अम्ल पास्कम ने इसका अपने प्रसिद्ध पत्र में उल्लाह-युक्त बणन किया है। यहाँ तक कि कोर्ट के कई व्यक्तियों की राय में यह एक अमलूक बात थी कि अतरनाक सिद्धांतों का प्रचार करने वाले अन्य परम्परावाधियों को इस प्रकार वैसी शक्ति कैसे मिल गई। किन्तु

## मदर कैब्रिनी

२१ जून १९३३ को 'परिचाजकों की जतनी' सेक्ट फ्रांसिस डेबियर कैब्रिनी के सम्मान में रोम में एक नैपल अर्पित किया गया। यह नैपल होमी रिडीमर के चर्च में था। वर्तमान घटावों के प्रारम्भ से मदर कैब्रिनी ने उसका निर्माण किया था। उनके प्रत्येक कार्य की मांगि यह चर्च भी होती फ़रर के प्रस्ताव के अनुपालन स्वल्प ही स्थापित किया गया था। मदर कैब्रिनी के जीवन की मुख्य विशेषता थी—घाज़ापालन प्रार्थना और श्रम। यद्यपि प्रारम्भ से ही उनकी इच्छा चीनवासियों में मिशनरी कार्य करने की थी किन्तु सर्वोच्च पोष्टिक की घाज़ा-पालन करने के लिए उन्होंने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया जहाँ उन्हें बहुत कुछ करना था।

परिया अंसिस्का कैब्रिनी का जन्म सेंट एंजलो डि लोडी (सोम्बार्डो) इटली में १३ जुलाई १८५० ई० को हुआ था। तेरह भाई-बहनों में कैब्रिनी सबसे छोटी थी। उसके माता-पिता धार्मिक विचारों के लिए सर्व-विदित थे। माता की घामु अधिक होने के कारण कैब्रिनी का ज्ञान-प्राप्त उसकी बहुत रोड में किया। रोड तीव्र स्वभाव वाली एक साहसी महिला थी। वह प्राइवेट मित्रक के रूप में एक छोटा-सा प्राइवेट स्कूल चलाती थी। ज्ञान-प्राप्त की यह कठोर और स्पष्ट परिस्थितियाँ फ्रांसिस्का के माँगी ज्ञान जीवन के लिए पर्याप्त उपयुगी सिद्ध हुईं। यद्यपि कैब्रिनी का जीवन डालने में वह ज्ञानवाचक सिद्ध हुईं किन्तु कैब्रिनी को यह ज्ञान कि उनके जीवनोद्देश्य के लिए इस प्रकार का कठोर जीवन उपयुक्त नहीं है। वह अपने दयानुस्वभाव के लिए सदा प्रसिद्ध थी।

फ्रांसिस्का बचपन में अत्यन्त दीनकाय और रोगिणी थी। जीवन भर उसका स्वास्थ्य बर्धन नहीं रहा। प्रारम्भ में उसकी धार्मिक जीवन में गहन रुचि थी। वह गुडिया का 'मन' के रूप में बन्धन पहनानी थी और स्वयं लोडी ऐम्बन की स्थापना में उसकी अग्रगण्यता करनी। अस्याय में ही उन्होंने अपनी बहन के समान यह विचार प्रकृत किया कि वह मिशनरी बनना चाहती है। उसके भाचा पड़ोसी नगर में पादरी से और उनसे में करने के पश्चात् ही मिशनरी बनने की योजना

का प्रकृत रूप देने का निर्णय किया गया । महा पर वासिका कैंडिनी कामज की लीकाए बना कर उन्हें महर्षि को लेइ भारत में छोड़ कर बना करती थी । महर्षि महर्षि को निभक्त कर रही थी । शायद एन लीकाओं म एन लिये जाते घोर फॉसिस्का कल्पना करती थी कि वह उन्हें बिष्म के सुदूर भावों म मिस्त्री के रूप में भेज रही है । सात वर्ष की आयु की वासिका के लिए इन प्रकार का काम सर्वथा प्रसाधारण था किन्तु उनके भावी जीवन की विधा सचमुच ही अद्वितीय थी । १ जुलाई १८२७ को स्वामित्व के समय उन्होंने परमात्मा से रामात्मक एकत्व स्थापित किया । इन प्रकार क अनुभव की जायत अवस्था का प्रारम्भिक मक्षण था महर्षि कैंडिनी न कई वर्ष पश्चात् इन प्रकार व्याख्या की थी— उस पवित्र भावनासे एकत्व होते समय मैंने जा अनुभव किया उसे व्यक्त करना असम्भव है एसा भगता था जैसे मैं इस धरा पर नहीं हूँ । महा हृदय विद्युत् धान्द से परिपूरित हो उठा । अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए मेरे पास बाकी नहीं है किन्तु मैं जानती हूँ कि यह पवित्र आत्मा ही थी ।

प्रारम्भ में ही कैंडिनी में धारम-समय घोर ईश्वर-भक्ति इतनी थी कि एक बार भूकाल घाने पर जब माता-पिता वासिका कैंडिनी का दृष्ट रहे थे वह सात-बिन्न ध्यानावस्थित थी । इनका कारण यह था कि वह प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करती थी । धारमिक अनुभूत के साथ ही उसमें एक बाण घोर थी । स्याह वर्ष की आयु म ही क्यूरेट द्वारा जो उनके प्रथम वर्ष मुक्त व उन ब्रह्मचर्य ब्रत लेने की अनुमति दी गयी । किन्तु इस व्रत को स्वामी रूप देने की धारमिक अनुमति उन्नीस वर्ष की उम्र म ही प्रदान की गई । कई वर्ष पश्चात् क्यूरेट म भिन्ना कि उसने कैंडिनी को सदा एक धन्त ही समझा है । फॉसिस्का के द्वितीय धर्म गुरु स्वामीय वर्ष के एक वैस्टर थे । पन्नाह वर्ष की आयु में वह उन्नीस की बेलभाम में थी । यह सम्पूर्ण धारमन्त सामवायक सिद्ध हुआ क्योंकि इस समय कैंडिनी को जो भी शिक्षार्थ मिली वह उसके भावी जीवन का प्रारण थी । जब भी वासिका कैंडिनी वैस्टर के समक्ष कोई भी समस्या प्रस्तुत करती तो उसका उत्तर था—'यह ईशु से कहो' इस प्रकार कैंडिनी ने ईश्वर से निकट घोर ब्रिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया—त्रिम व्यक्ति को नियमित धारमिक गिद्या न मिली हो उसके लिए यह बिकाल धारमन्त महत्त्वपूर्ण था ।

तेरह वर्ष की आयु में फॉसिस्का का एक प्राइवट स्कूल में प्रवेश गया । इस स्कूल का संभालन पास ही में स्थित धारमुनी नगर में डाटम फॉस की सिस्टर हार्ट द्वारा किया जाता था । यह पाँच वर्ष तक बनी रही घोर पठारह वर्ष की आयु



में उन्हें ध्यापिका का प्रमाण पत्र मिला । उन्होंने सोही मार्गम स्कूल में ध्यापन पुरा किया । उसी समय कैबिनी ने धार्मिक सम्प्रदाय में प्रवेश कराने के दो प्रयत्न किए किन्तु धीरे-धीरे स्वास्थ्य के कारण उन्हें स्वीकृति नहीं दी गई । जब लौट कर प्रेमिस्वा ने अनेक परीक्षण-कार्य किये और पादरी के अनुदेश पर उपेक्षित बच्चों की देखभाल की । १९०२ में सेंट एंजलों में चेकक रूल गया । अपनी बहुत रोड की महायत्ना से प्रेमिस्वा ने रोगिया की देखभाल की किन्तु स्वयं भी इसका शिकार हो गई । पुनः स्वस्थ होने पर उसने एक समीपवर्ती तमर बिड़ानों से एक पश्चिम स्कूल में ध्यापन कार्य प्रारम्भ किया । इस अवधि में कैबिनी ने अनेक गान जाय कर प्राप्त की । इसके धार्मिक उमने कल्पित बाह्य साधना भी की जिसके फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य ऊर्ध्व हो गया । कैबिनी ने बाद में यह ब्रह्म स्वीकार की । वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ऐसे मिडाल पर जोर दिया जाये जा भावी जीवन में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो । धार्मिक-मिडाल के प्रतिष्ठा के रूप में उसने बहुत प्रयत्न किया कि नियम का पूर्ण पालन प्राप्त-दुष्टि है । एक बार उसने जन का जिला था—'घाशा-पालन करने पर ही माधु बनाये । स्व प्रेरणा से पुरे वर्ष उपवास करने का भी उनका कस नहीं है जितना घाशा पालन का एक कार्य ।

१९३४ में कैबिनी ने काठगो के छोटे में नगर में एक घनाथ पाठशाला की संस्थापिका का पद स्वीकार किया । इस पाठशाला की स्थापना १९३७ में ईश्वरीय निवास 'हाउस फॉर प्रोविडेन्स' के रूप में की गई थी । पाठशाला की विभिन्न स्वभाव वाली एक पत्नी महिला का गौरव प्राप्त हो गया था । उस महिला ने संस्था का धार्मिक सहायता दी और प्रधान ध्यापिका के पद पर कार्य किया । यह महिला एंजेलिया टोडिनी सोही के विधाय द्वारा प्राप्त किये जाने पर जन के रूप में दीक्षित हो गई । विधाय को पाना भी कि इस प्रकार टोडिनी के स्वभाव और स्वयं की संस्थान-व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होगा किन्तु कोई सुधार दृष्टि प्राप्त नहीं हुआ । अन्तर्गत मस्तिष्क वाली संस्थापिका की कृष्यवस्था के आभाव में प्रेमिस्वा के लिए यह परीक्षा कास सिद्ध हुआ । उनमें छ. वर्ष तक का कार्य किया और १२ अक्टूबर १९३४ को वह जन के घर में दीक्षित हो गई । यद्यपि उक्त जनकी सुध्याप्यापिका ने स्कूल में विनी प्रकार का सुधार नहीं करने दिया उसमें घनाथों की संस्था बहनी गई । यह कई युवा स्त्रियाँ भी उसमें रहने लगी थी । यह स्त्रियाँ अचिरकाल कैबिनी के धाम-पाल ही रहती थी । कैबिनी ने इनमें ध्यापिका का पद और विद्वाने कार्य करने की इच्छा

उत्पन्न की। यह फ्रांसिस्का के प्राचीन जीवन का विकास युग था उसमें एक महीन प्रवृत्ता अनुभव थी। १९०८ के अन्त में एटोनिपा टोडिनी के साथ मगमें ने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया कि लोडी के विराय ने इस संस्था 'मूलतः धार्मिक प्रोविडेंस को विस्तारित करने का निर्णय कर लिया। उमा करने पर फ्रांसिस्का तथा उसके साथी बेचरदार हो जाते। विद्युत यह बात मनी-भाति जागता था कि संस्था बहुत उन्ही लोगों के बल पर चल रही है। यह भी सर्वविदित तथ्य था कि फ्रांसिस्का का उद्देश्य मिशनरी बनना है। अतः फ्रांसिस्का स यह प्रार्थना करना यत्किहीत नहीं था कि वह मिशनरी नन का प्रायश् प्राप्त करे। इस प्रकार फ्रांसिस्का का वास्तविक कार्य धारम्भ हुआ। १४ नवम्बर १९०० को फ्रांसिस्का कैबिनी और उसके साथियों ने लोडोन्को के फ्रांसिसन मठ में धारण की। इसी दिन उनकी संस्था का नाम हुआ जो बाद में 'मिशनरी सिस्टर्स ऑफ दी सेन्ट्रल हार्ट' के नाम से विख्यात हुई। मगन के ऊपर 'सेन्ट्रल हार्ट' की मूर्ति स्थापित की गई 'मास' का पाठ किया गया और मदर कैबिनी ने अपने उस कार्यक्रम का शुरुवात किया जा बाद में जब न्यूयार्क के कई भागों में प्रचलित हुआ।

मिशनरी धादेर की प्रतिष्ठापिका के रूप में मदर कैबिनी ने सन्नेरियो की उपाधि संदीकार की। यह इटालियन शब्द 'जबिगर' का ही रूपान्तर है जो उसके धार्मिक जीवन का नाम था। यह इस बात को पश्च नहीं करती थी कि उसे 'मदर प्रतिष्ठापिका पुकारा जाय किन्तु यह केवल मदर कैबिनी का सम्बोधन ही बतल करती थी। उसकी व्याख्या इस प्रकार की—“हमारी संस्थापिका तो मदर थाफ से है हमारे स्वामी हार्ट थाफ जीसस है सेंट फ्रांसिस डि सेस हमारे बनेवर है और हमारे उपबन्धन है सेंट फ्रांसिस जबिगर।”

इस प्रवृत्ति में मदर कैबिनी उपासना और चिन्तन द्वारा धार्मिक परिवर्तन करती रही। किन्तु उसने कभी संस्था के कार्यकर्ता सन्ध्यों की उपेक्षा नहीं की। उन्हें भावी कार्य के लिए प्रेरित किया जा रहा था। मदर स्वयं अध्ययन प्रवृत्तिका थी। यह दुर्लभ किन्तु दयावान् थी। मदर कैबिनी प्राइवट सेन् एच धार्मिक मन्नेशन में मुता नन समुदाय की मदीय यह उपेक्षा होती रहती थी कि वह अपने धाय को एक धार्मिक शक्तिमाली नियन्त्रण पर धारित कर दें। उनकी मार्ग-प्रदर्शिका पुस्तक सेंट इन्वेसिगस की पुस्तक 'धार्मिक धर्म्यास' थी। यही धार्मिक अनुदेश उसने स्वयं समुदायन लिए और नन समुदाय में धारण करने के लिए रहा।

उस संस्था की स्थापना क थी वर्ष पश्चात् मदर कैबिनी चार सिस्टर और पञ्चीस

वहीं बरिष्ठ कलाक बीयोना नगर के मिडल यूमेता नामक स्थान पर गई। वहाँ उन्होंने एक छाटा-सा स्कूल खोला जहाँ ग्रन्थ विषयों के साथ पाक कला मिर्चार्थ घोर धर्म की शिक्षा दी जाती थी। मिडलरी कार्य-क्रमों का यह प्रथम परल था जिसने तीनों महाश्रीयों में अनेक संस्थाएँ स्थापित की। १८८८ ई० में मिडल बेरोनेटा विभाग का रोम और ग्रन्थ स्थापनों पर स्कूल स्थापित कर दिये गए।

उन्नीसवीं शताब्दी की उत्तरवर्ती अवधि में अमेरिका में इटली के परिवारात्मक वर्णान्त संस्था में आ रहे थे। न्यूयार्क शिवागो तथा ग्रन्थ नगरों में निर्भर इटली भाषियों की शोचनीय अवस्था की खबर रोम पहुंची। इसी समय न्यूयार्क के धार्मिक बिशप कोरिजन ने इस कार्य के लिए न्यूयार्क में एक प्रतिष्ठान स्थापित करने की प्रार्थना की। होसी फ़रर के साथ एक भेंट में मदर कैथिनी ने उनसे पूछा कि क्या उसे उपरोक्त प्रामाण्य स्वीकार कर लेता चाहिए। फ़रर का उत्तर स्वीकारात्मक था और इस कार्य का करने के लिए उसे स्वीकारोक्ति मिल गई।

२१ मार्च १८८९ को मदर कैथिनी कुछ नन के साथ न्यूयार्क पहुंच गई। यहाँ पर प्रतिष्ठान की स्थापना के लिए उन्हें एक अनाथाश्रम तथा कुछ ग्रन्थ सुविधाओं की आवश्यकता थी। किन्तु कुछ भुर्षों के परिणामस्वरूप धार्मिक बिशप कोरिजन को यह अवधि नहीं था। इससे भी बुरी बात कोरिजन की यह अनुभूति थी कि उन्हें यह कार्य नहीं करना चाहिए था। धार्मिक बिशप ने मदर कैथिनी के समक्ष यह सुझाव रखा कि उसे इटली लौट जाना चाहिए तो मदर ने उत्तर दिया कि होसी फ़रर ने मुझे पता भेजा है और मैं यहाँ ही ठहरूँगी।

तो इस एक प्राथमिक भावना से प्रेरित मदर कैथिनी ने धार्मिक बिशप के साथ सम्पूर्ण कठिनाइयों का सामना किया और अनाथाश्रम की स्थापना की। कोय का अनाथ बाघत अन्वे द्वारा और इटालियन क्षेत्र में सीधे शिक्षा का सहायता से स्वयं प्राप्त की गई। आवश्यकता अत्यन्त तीव्र थी इसलिए नन बढ़ी बड़ी टारनियों लेकर निजमती थी। बहुसंख्य से ग्राह्य भी स्वीकार कर लेती थी। बेपर दृष्टा नौ देवनाम उनके गृह और भोजन की व्यवस्था का प्रयत्न था। इसके साथ ही इटालियन क्षेत्र में रहने वाले ग्रन्थ बच्चों की आर्थिक शिक्षा की व्यवस्था भी उपेक्षित नहीं की जा सकती थी। इस सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न्यूयार्क के सिटीय इटली में गेट बोनीम अर्थ में मिडलरी को प्राप्त किया गया। वहाँ पर मिडलरी 'माग के समस्त बच्चों की देवनाम

करती थी और मध्याह्न परचाएँ उसका प्रसिद्धन होती थी । कुछ समय परचाएँ ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के प्रसारार्थ मुंबा स्थितियों और बयस्क सङ्घियों के सम्भावना के लिए बनाएँ जानू की गईं । इस प्रकार संत बोकीम इंगलिसन केन्द्र के रूप में विकसित होने लगा ।

यद्यपि मदर कैबिनी का स्वास्थ्य निरन्तर क्षीण हो रहा था फिर भी वह एक अद्भुत स्फूर्ति-सम्पन्न महिला थी । उन्हें विभागीय का प्रबन्धन केवल उस समय ही मिला जब वह अमेरिका और दूसरे देशों के बीच प्रतलाटिक की यात्रा पर थीं । किन्तु उस समय भी वह भावी कार्यक्रम के हतु स्वयं को तैयार करने के लिए ही विग्राम कर रही थीं । यह यात्राएँ, जिनकी संख्या कुछ सेतीस थी जन-समुदाय के विनिमय के लिए उपयोगी प्रबन्धन था । अमेरिकी नग कोरोमो जाती थीं और इटालियन सिस्टर मदर जनरल के साथ अमेरिका जाती थीं । वह प्रायः नग से नहीं थी—हम किसी भी कार्य के लिए समर्थ नहीं हैं, परन्तु ईश्वर की कृपा से हम सब कुछ कर सकती हैं । इस मरती पर विग्राम की शोक न करो, किन्तु ईसा मसीह के साथ कार्य सभी मुझ क्षेत्र में प्रसूते हुए प्राप्त उत्सर्ग करो । जितना अधिक संघर्ष करोगे पुरस्कार भी उसी परिमाण में होगा । पुरस्कार प्राप्त करना संभव है, उस कोई नहीं न सक्ता । मदर कैबिनी जब एग्जीक्यूटिव पर्यटन को पार कर रही थीं तब उनका जीवन अत्यन्त संकटमय था । राजनीतिक मतभेद के कारण उन्हें निकार्नुभा से निर्वासित कर दिया गया था । न्यू यार्क में अष्ट राजनीतिकों और उत्कर व्यापारियों से बिरे रह कर उन्होंने काम जारी रखा । उस नगर में इटालियनों के लिए जीवन अत्यन्त दुमर हो गया था । एक आत्मनिक हत्या के प्रसवक्रम म्बाहू इटालियन बर्बरतापूर्वक मार दिए गये थे । मदर कैबिनी ने इस परिस्थिति में भी ईश्वर में अटूट भ्रष्टा और अर्पण कार्य में स्थिर भक्ति जारी रखी । उसने सिस्टर समुदाय को उपदेश दिया—“किसी से भयभीत न हो । हम सब ईश्वर की इच्छानुसार ही कार्य कर रहे हैं । यह मरा अनुभव है कि जब भी मुझे असफलता मिलती तो इसका कारण अपनी शक्ति में आत्मसम्पन्नता से अधिक विश्वास करने से ही है । यदि हम सर्वस्व ईश्वर को अर्पण कर दें तो हमें कभी असफल नहीं होना होता । ईश्वर के अधीन सम्भव और अत्यन्त का प्रसन्न उत्पन्न ही नहीं होता है । कैबिनी ने उन्हें फिर आश्वासन दिया—‘पूर्वता प्राप्त करके के लिए ईश्वर का आदेश पूर्वस्थापना पालन करो । जब भाव वैयक्तिक इच्छाओं का परित्याग कर दें तो ईसा मसीह की कृपा से धारण अति स्वतः उत्पन्न हो जायेगी ।

मदर जनरल कम्प्लिक्स और धार्मिक मान से अनुप्राणित होकर मिशनरी सिस्टर समुदाय ने धरन्त मानना-सुरंकर धपना कार्य किया। कैथिनी का यह सपनामर्षी उन्होंने सदैव याद रखा—कठिनाइयाँ बच्चों के हिसाबे की भाति हैं उनकी भयावहता का मूल कारण हमारी कल्पना है। इस प्रकार द्वार-द्वार मिता मांग कर न्यू धार्मिकता की यह संस्था दस वर्ष तक चलती रही। न्यूयार्क स्थित कोसम्बस धरन्तात बिस ने सहस्रों बच्चों की देखभाल की प्रारम्भ में बेबन बोसी पञ्चम बापर की पूजी से प्रारम्भ हुआ था। कोसारेडो इनकर में धाने क परधान तीन सप्ताह भी नहीं बीत के कि मिशनरी सिस्टर ने एक नवीन संस्था की स्थापना की और प्रथम दिन दो सी बच्चे बहाँ उपस्थित थे। किन्तु काम का धन यही नहीं था। इन बच्चा के पिता उपस्थित नहीं थे। मदर कैथिनी तथा धर्म्य सिस्टर लार्ने म मई और दुःखद परिस्थितियाँ में काम करने वाले सजिज धर्मिकों को सहायता प्रदान की। शिक्षामो और फिसाडेस फिया में धरन्तातों की स्थापना की गई। मॉस एन्स मे शय रोग का सैन्टोरियम खोला गया। निर्जन धरा और कारावास म धरन्तातना की देखभाल की गई। कार्य क्रम चलता रहा। २२ दिसम्बर १९१७ को अपनी मृत्यु पर्यन्त मदर कैथिनी ने सत्रसठ संस्थाएँ स्थापित कर बी थी। १९३१ तक इनकी संख्या अस्सी तक पहुँच चुकी थी। इनमें से दो संस्थाएँ चीन में भी ग्योली गईं। मदर कैथिनी की सहा से ही उग देस में कार्य करने की इच्छा थी। १९३४ में इन संस्थाधा की संख्या बढ़कर एक सी हो गई थी जो बिस में सब धार फेसी हुई थी। मदर कैथिनी के जीवन की तीन प्रमुख विशेषताएँ थी—साहसी बिनमता और धारा पासन। अपने सम्पूर्ण धरन्त जीवन म उनकी मुद्रा सदैव दान्त रही और उनकी बानी मदा बोमस और स्त्रिरी। जगत की गमल बिनतामा मे धरन्त रहने पर भी इस प्रकार की धनुभुग दक्षिण इग बात की परिभाषक की कि 'परभारमा स उनका धारतम्य' था। मरु ध्यक्ति इसे धग गकत व और धनुभुग कर सनसे थ। इनका हाने पर भी इस महान् मारी सन्त के बारे में सोमा को बिलेप जागकारी नहीं है। उनकी कोई रचनाएँ नहीं मिलती हैं। शायरी का कुछ भाग और पाठे से पत्र धरन्त उलमध है। उनके पूलवासय में धर्मिभन धाट काउरट गेग दगनेधियत की 'गकममादमेड' काकर पिनामानी एक महरी सगक धरन्तातम्य रोडियज और सेंट धरन्तातम्य निपूरी की रचनाएँ थी। चकि मदर कैथिनी जिनी धार्मिक सत-धरन्तातर मे सम्धियत नहीं थी और न उनका धरन्त विचार था कि सिस्टर समुदाय को इन सिद्धांतों म धरन्तमुत दिया जाये उनही संस्था में कुछ

महत्त्व-पूर्ण पद्धतियाँ ही प्रचलित थीं। एकान्त स्वाध्याय क प्रतिरिक्त घनेक सामूहिक प्रार्थनाएं थीं। यद्यपि मिस्त्री मिस्टर घनक कार्य के लिए सुविधायक थीं प्रतिदिन छ बजे प्रार्थना और बिन्दन में समाये जाते थे। मदर कैब्रिनी का यह मत था कि धारमा की इच्छाओं में कोई बाह्य कार्य बाधक नहीं हो सकता है।

निष्काम भावना से अनुप्रेरित होकर मदर कैब्रिनी सम्पूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी ईश्वर भक्ति में रतपित रहती थीं। बोड़े-बोड़े धनकाम के पश्चात् वह बारम्बार कार्य में नवीन प्रेरणा से जुझती रहती थी और समस्याओं के व्यौरों पर विचार किया करती थीं। इस प्रकार की भावना उनके मस्तिष्क में बड़ पकड़ रही थी कि स्थायी रूप से कार्य-निवृत्त होकर प्रार्थना और बिन्दन में पूर्णरूपेण समय दिया जाय। किन्तु इस धमिमाया की पूर्ति नहीं हुई। एक नम से बार्ता के विससितने में उन्होंने कहा था— 'यदि मैं मुष्ट भावना का पालन करूं तो मुझे 'बेस्ट पार्क' में समय व्यतीत करना होगा और वहाँ सब प्रकार के व्यवधान से दूर संस्था के लिए घनेक सुन्दर कार्य करने के लिए समय मिलेगा। किन्तु मुझे लगता है कि परम पिता की धमी ऐसी इच्छा नहीं है मैं एकान्त जीवन को विस्मृत कर संस्था के कार्यों में संलग्न रहती हूँ। इस प्रकार ईश्वर-इच्छा का अनुसरण कर रही हूँ और सर्वत्र सक्रम पर, गाड़ी में बहाव पर मैं यह अनुभव करती हूँ कि मैं बीसे अपनी कोठरी में स्वाध्याय में लीन हूँ। मदर कैब्रिनी ने सम्पूर्ण जीवन इसी कार्य में लगाया कि समस्त प्राणि-जग ईश्वर के ज्ञान प्रेम और भक्ति में संलग्न रहें। एक डायरी पत्र के उपसंहार में उन्होंने अपने चिरन्तन विचार की कितनी सुन्दर धमिम्यक्ति की है— 'प्रार्थना, विन्यास और ईश्वर के समक्ष समर्पण ही हमारा मन्त्र है। हम किसी भी कार्य के लिए धसमर्ष हैं किन्तु उस धकितबाता से सम्बन्ध प्राप्त कर प्रत्येक कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।'

प्रारम्भ से ही मदर कैब्रिनी ने अपने धान्तरिक जीवन को धप्रकट भेद ही रखा किन्तु अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को वह कभी भी पूर्ण धावरण में नहीं रख सकीं। नैपथ के एक धसतर पर एक सिस्टर उन्हें ऐसी स्थिति में पाती जो सर्वथा धारम-बेठन की सामान्य धवस्था से निरानी होगी है। कैब्रिनी के सहयोगियों ने और भी घनेक अनुभूतियों और नमरहृत कार्यों का वर्णन किया है। लन्दन पहुंचने पर कैब्रिनी ने एक बार 'बजिन' का साक्षात्कार किया। इस अनुभव का वर्णन करते हुए कैब्रिनी ने लिखा था— 'उत्तरधात मैंने महामाया बजिन से

साक्षात्कार किया। उन्होंने सुन्दर परिधान धारण कर रक्त से बामक ईशु उनके बुटनों पर सुघोमित से धीरे उनकी मुद्रा इस प्रकार भी मानो वह हम सबकी रक्षा कर रहे हों।" धनबल्लत यात्रा के कारण कैबिनी का कोई नियमित बर्म-गुरु नहीं था। वह मुष्टा के बारे में निकट सामीप्य और निर्भरता की भावना से प्रोत्साहित थी। एक पत्र में उन्होंने लिखा है— 'आत्मा की यह अनुभूति है कि प्रियतम स्वर्ग ही में निहित है उससे पृथक नहीं है। कैबिनी उन सन्तों में है जो भक्ति और कार्य में विश्वास रखत हैं। उनके लिए प्राध्यात्मिकता 'स्फूर्तिपुक्त ससक्त पीत्य सम्पन्न तत्व है। ये सम्म उनके धीरे संस्था के सब सदस्यों के जीवन का प्रथम बन गये थे। मिव्या साधारण सिकायत और निराशा का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था।

मदर कैबिनी की अद्भुत कार्य-समता का मूल कारण उनका आन्तरिक जीवन था। उन्होंने अपने इस संकल्प के बारे में एक संक्षिप्त मोट बुक में लिखा था— 'बाह्य वस्तुएं कितनी भी अच्छी और पवित्र क्यों न हों किन्तु यदि मैं इन्हीं में अन्तर्गत रही तो मैं क्षीण और निस्पन्द बन जाऊंगी। बिना प्रार्थना और निश्चय के भी मेरी मही अकस्मात् हानी। छत मेरे प्यारे ईशु! मुझ महान् लज्जामयपूर्ण निश्चय प्रयास करो। यद्यपि उसे जीवन में अनेक सफलताएँ मिलीं पर उनमें भीतराग और निष्काम तत्व था उनका हृदय अन्वय था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है— 'ईशु की पवित्र भावना से मैं इतनी प्रसिद्ध हूँ कि मैं उसका संवरण नहीं कर सकती। चाहे कुछ भी क्यों न हो मैं अपनी धारों बन्द कर लूंगी और अपने सिर को ईशु के हृदय से कभी अलग नहीं होने दूंगी। साध्वी स्त्रियों को पत्र में सम्बोधित करते हुए उन्होंने एक बार लिखा था— 'मेरी पुस्तक मेरे लिए सर्वस्व है और प्रेम तथा सहनशीलता का पाठ पढ़ाने के लिए मैं इसे सदैव अपनी धांसों के सामने रखूंगी। जो सहनशीलता के लिए उद्यत नहीं है उन्हें भिक्षुकी कार्य का परिवर्णन कर देना चाहिए।' 'सेवेज हार्ट को उपाधि धारण करने वाले व्यक्ति को कंटीला मार्ग बेहतर ईशु के हृदय के धाम-वास स्थित रहना चाहिए। ईशु के लिए, ईशु के साथ और हम कार्य के लिए स्वर्ग को पूर्णतः धारमत्तानु कर कठिनाइयों का सामना करने में कितना नैसर्गिक आनन्द है।'

मदर कैबिनी ने सामाजिक आर्थिक वीक्षणिक स्वास्थ्य और सांस्कृतिक विकास मन्त्रालयों कार्य अनेक देशों में किये और पर्याप्त स्याति अर्जित की। इनका होन पर भी वह भगवान् की एक साधारण सरल हृदय भक्त थी। अपनी

ए बुक में उन्होंने सीने ईशु को लिखा है—“जिस क्षण में तुम से भबगत हुई तुम्हारे सीस पर रीझ गई धीर मैंने तुम्हारा अनुमन किया । जिसना जिस मैं तुम्हें प्यार करती हूँ सगता है यह प्रेम उतना ही कम है । मैं तुमसे अधिकतम प्यार करने की आकांक्षा रखती हूँ प्रियतम। वर्तमान स्थिति मेरे लिए सहा हो गई है । हे प्रभु ! मेरे हृदय को विस्तृत करो धीर विस्तृत करो । प्रभु, प्यार करो प्यार करो अपने बुली मस्त की सहायता करो । अपनी इस ली दुल्हन को बाहू-याघ में बकड़ सो मैं तुम्हें प्यार करती हूँ मेरा तुमसे उतना अधिक प्यार है ।”

२२ दिसम्बर, १९१७ को कैब्रिनी की सिकायो के कोलम्बज् घस्पताल में मृत्यु हो गई । इस घस्पताल की स्थापना भी कैब्रिनी ने ही की थी । उनको मृत्यु के तुरन्त उपरान्त बेठिकिनेशन के विसर्जन के कारण का अध्ययन किया गया । ईसाई-सैबक की वैधिक जांच घसबा प्रकिया रोम के बर्ष द्वारा दो बर्ष पश्चात् प्रारम्भ की गई । प्रकिया प्रारम्भ करने के पूर्व पचास बर्ष की सीमा तार करने के नियम का निरसन करने के सम्बन्ध में पोप के आदेश के परिणाम-स्वरूप ही यह किया गया । धाबुनिक इतिहास में इस प्रकार का कोई उदाहरण नहीं है । स्वभावतः यह एक घनहोनी बटना थी । पूरी जांच के पश्चात् जिसमें दो अधिकारियों की उपस्थिति धीर प्रमाण सहित जमत्कार परिमणित किए गए । मदर कैब्रिनी १३ नवम्बर, १९३८ को ‘असेसर्’ घोषित कर दी गई । यह अमेरिका की प्रथम नागरिक थी, जिन्हें सरकारी रूप से स्वर्ग में घोषित घोषित किया गया । साठ बर्ष पश्चात् इसी आदेश की पूर्ण परहस्ताक्षर किए गये ।

बेठिकिनेशन समारोह में बेथियन बेसिनिका में कार्डिनल मुंडीपीन द्वारा ‘हाई वास गामा’ गया इन्होंने कार्डिनल महोरय ने इसकीस बर्ष पहले मदर कैब्रिनी के समाधि उत्सव को मनाया था । बर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर था कि एक ही कार्डिनल ने एक व्यक्ति की समाधि एवं बेठिकिनेशन समारोह को संपन्न कराया हो । बेठिकिनेशन के समय अपने रेडियो भाषण में कार्डिनल न कहा था—‘जब हम इस धीनकाम महिला का स्मरण करते हैं जिसने वालीस बर्ष की संक्षिप्त धरणि में बार इन्दार स्त्रियों को ईशु के सफ़ेद हार्ट के ध्वज के अन्तर्गत समवेत किया धीर निर्बन्धता एवं आत्म-त्याग का जीवन्त धंगीकार किया जो मानव-जाति के प्रति स्नेह से भोतप्रोथ थी । सुदूर क्षेत्रों में जाकर जिसने पन्नात देसों में धर्मोपदेश किया धीर उन्हें सम्यक ईसाई एवं कानून सम्बन्ध



नागरिक बलने के लिए प्रेरित किया अज्ञानी व्यक्तियों को भ्रान्त का भ्रान्त कराया बीमारों की सुझुपा की और इन सब कार्यों के पीछे पुरस्कार अथवा बदले की कोई भावना नहीं थी तो क्या इसमें कैथॉलिक सम्प्रदाय की बहु पुनीत भावना समाविष्ट नहीं है जो एक धार्मिक सत्ता द्वारा अपनायी जा सकती है ।

सेंट फ्रांसिस डेवियर कैथिनी ने अपने जीवन में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न की जिस ने प्रत्येक कार्य में उसका प्रदर्शन किया अपने सहयोगियों की धारमा परिवर्तित कर दी अपने जीवन-काल में सहजों व्यक्तियों को धार्मीभाव से सिंचित किया और प्रत्येक वर्ष इस कार्य को जारी रखा । प्रतिदिन के जीवन में ईश्वर केन्द्रित कार्य में अभिभ्यक्त प्रार्थना ही उन्होंने मानव जाति को विरासत में दी है ।

भाग ४

यहूदी तथा सूफ़ी धर्म की सन्त महिलाएँ



## हैनरीटा शोल्ड

हैनरीटा शोल्ड फिलिस्तीन में अस्पतालों और नर्स्याण-सेवाओं के प्रतिष्ठापक रूप में सर्व-विदित है। वह 'यूथ अलियाह' संस्था जो गांधी बर्बरता के सिद्धांतों अन्तर्गत बच्चों की रक्षा के लिए बनाई गई थी की व्यवस्थापिका एवं शासक थी। यहूदी विचारधारा में उनका सम्पूर्ण कार्य इस रूप में था जैसे एक सन्त ही कर सकता है। उसमें ईश्वर और मनुष्यों को स्वयं से ही अधिक प्यार किया और उनके सुधार में ही अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य का उपयोग किया।

उनका जन्म वास्टीमोर, मैडीसैण्ड अमेरिका में १८६० में हुआ था। वह नगर के रबी बेंजामिन शोल्ड की सबसे बड़ी सड़की थी। उनकी माता का नाम जोफ़िमा था। ईश्वर और मानव जाति के प्रति प्रेम की भावना की विरासत उन्हें अपने माता-पिता से प्राप्त हुई थी जो धार्मिकन उनकी भावनाओं और कार्यों का छा मुक्त मंच बना रहा। बेंजामिन शोल्ड हंगरी निवासी थे और हैनरीटा के जन्म से एक वर्ष पूर्व वह अपनी युवा पत्नी के साथ अमेरिका आए थे। उनके कोई पुत्र नहीं था अतः रबी शोल्ड ने अपनी सबसे बड़ी सड़की को सड़कों के समूह ही घिरा-बीला प्रदान की। हाई स्कूल की परीक्षा में हैनरीटा शोल्ड ने काफी अंक प्राप्त किए थे। चूंकि पांच सड़कियों के लिए आर्थिक धन अत्यल्प मात्रा में ही अतः उन्होंने अध्यापन काम प्रारम्भ किया। चौदह वर्ष तक उसने हाई स्कूल में अध्यापन किया और अनेक धर्म्य कार्यों में भी भाग लेती रहीं।

वास्तविकता में वह अपने पिता के साथ यूरोप की यात्रा पर गई थी। उसके जीवन पर इस यात्रा का गहरा प्रभाव पड़ा। यहूदी सभ्यता की पुरातन स्मृतियों से परिपूर्ण भाव उसकी महिमा और संकट में त्रस्त जर्मनी की उसका अस्तित्व पर अमित छाप पड़ी और उन्होंने अपने व्यक्तियों के सामर्थ्य का अनुभव किया। वास्टीमोर में अपनी जाति के सदस्यों की कठिनायियों ने उनके हृदय में बेचैनी पैदा कर दी। उन्होंने उनके आर्थिक जीवन और पढ़ाई-लिखाई के दिवि-रिवाजों की नकल करने की प्रवृत्ति की उत्पत्ति की।

हैनरींग के प्रभारिका मोन्ने के गुरण परचात् ही उग्रबाग की समस्था उत्पन्न हा गई। १८८२ में प्राथिनियमित 'मर्' नों न इङ्गारों महूदिया का रण से मामने के लिए विचार कर लिया। इसमें से कई पक्षों के मंत्रीपूर्ण वेगा का बने गए। कुछ प्रमेरिका की धार बढ़ गए। बोड़े सं व्यक्ति बास्टीमोर भा बसे यही जनको विविध रीति-रिवाजों का सामना करना पड़ा। रबी धीर जनकी पुत्री ने प्रत्येक व्यक्ति के संकट को सहानुभूतिपूर्वक गुना धीर उन्हें नवीन समाज धीर बातावरण में स्वीकृत ही जाने में सहायता प्रदान की। हैनरींग ने उन्हें प्रमरीकी जीवन क अनुसंधान करने में पूर्ण सहायता की। उसमें एक दुकान का ऊपरी कमरा लिया धीर रात्रि पाठशाला प्रारम्भ की। चार वर्ष परचात् जब उस इसी पाठशाला को बास्टीमोर शिक्षा अधिकारियों ने संभाला तो उसमें पांच हजार बच्चे पढ़ते थे।

उन परिवारत इसी निवासियों के साथ उन्हें बी अनुभव हुए उन्होंने हैनरींग की यहूदी इतिहास का पुनर्मुद्रण करने के लिए विचार कर दिया। चार की सरफार नै बहुविधों का ध्वनत करने का प्रयत्न नहीं किया किन्तु छोटे प्रबन्ध बड़े परिमाण में सर्वत्र प्रकाशना धीर कष्टमय जीवन की शाकी देखी जा सकती थी। यदि धार उनकी मानुभूमि होती तो उन्हें पुन पुरातन योरक भित सकता था। हैनरींग इन बात के लिए प्रयत्न कर रही थी कि इङ्गाराएल पुन उसकी धरती को चीन बिया जाए, वह पयोग्यम मम में परिवर्तित हो गई, क्योंकि "मुझे यह अनुभव हुआ कि केवला एग करण पर ही मेरे धारण अस्त धीर स्वतन्त्र राष्ट्र का प्राप्ति भित सकती है इस एक धादसंभ—बी दूसरों द्वारा धारा पक्ष किया गया है। पर जिनो ममी धारणा करने है धरे ही यहूदी-अम्बधी धर्म प्रदनों के प्रति उनके विचार कुछ भी हों।

११ बय की धायु म उन्होंने प्रख्यात-कार्य छोड़ दिया धीर प्रमेरिका में धितवेत किया की यहूदी प्रकाशन संस्था के गाहिल्यन सचिव का कार्य धार संभाला। इस पर पर उन्होंने २१ बय तक कार्य किया। इस महत्त्वपूर्ण कार्य का सभी प्रकार निष्पादन करने की इच्छा से उन्होंने प्रमेरिका की पियामोदिकस सेमिनरी में अध्ययन किया। यह स्मरणीय है कि इस सेमिनरी में धार तक सभी विनी महिला को प्रबन्ध नहीं भिता था। एक तारी तागमय का अध्ययन कर रही थी—यह बस्तुतः विविध धरती थी। हैनरींग एक महानुभूति-युग घोडा धीर परामर्श दाता थी। उन्होंने 'यूइस इन्साइबलारीटिया' धीर धर्म मन्धीर पत्रों में लेख लिखे। १८६१ में शिकागो में धर्म की विरध पानियामेण में दो भाषण देने के लिए धार्मिक कर उनका सम्मान किया गया।

प्रतिदिन वह बीमार से सोलह घंटे काम करती थी। हर वर्ष वही भ्रम चलता रहा। आखिर वह बीमार हो गई और डॉक्टरों ने उन्हें विश्राम करने की सलाह दी। स्वास्थ्य धीरे-धीरे लौटा और प्रकाशन संस्था ने हीनरीटा की सलाहों के समान स्वल्प धनके लिए समुद्रीय यात्रा का पूरा कर्ष उठवाया। यह यात्रा यूरोप और फिनलैंड की थी। अपने पूर्वजों की भूमि के दर्शनों की उनकी चिर उत्कण्ठा थी। इस उद्देश्य की पूर्ति से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें उस समय इसका ठिकनी प्रभाव नहीं था कि वह इच्छाएक के पुनर्जीवन और विकास का नया इतिहास निर्माण करेंगी।

१९०९ में जब हीनरीटा फिनलैंड गई तो वह सम्यता का अवशेष मात्र था। वह थोटीमन साम्राज्य का संघ था और एक निरंकुश सुल्तान वहाँ शासन कर रहा था। उसके अधिकारी भ्रष्ट और कर्तव्य-शून्य थे। वह ऊँचे-ऊँचे कर और पूरा लेकर अपनी धन्य बड़ा रह था। भूमि ऊसर और बंजर थी। वहाँ के निवासी निरक्षर तथा निरपठ थे। वहाँ बसने वालों को अनुर्वर भूमि के अतिरिक्त प्लेन और रोमों का भी सामना करना पड़ रहा था। वहाँ के बच्चों की संकटापन्न स्थिति देख कर हीनरीटा के हृदय पर गहरी चोट लगी। तिबेरिया के रेतीले क्षेत्र में जाते हुए उसने और उसकी माता ने वहाँ बच्चों की प्रसन्न स्थिति देखी जिनकी गहरी मूर्छा घाँवें बीमारियों का घर हो रही थीं। सिफरिसिस से वह बच्चे प्रभावस्था को प्राप्त हो रहे थे। सफाई की स्थिति अत्यन्त खनीय थी। बाण-भुत्सु की संख्या पराकाष्ठा पर थी।

उस समय हीनरीटा की धाम्य जनजात वर्ष की थी। उसने सम्पूर्ण फिनलैंड के लिए—जिनमें गहरी और अरब बिना किसी भेदभाव के शामिल थे स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण-संस्थाओं के लिए एक आश्रम का मुद्रपात किया। यदि वह एक स्कूल में गठन हो सकता था तो कोई संभव नहीं कि यह योजना हर स्थान पर सफल हो सकती है। यह कार्य इतना महत्त्व नहीं था। अमेरिका लौटने पर उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ और उन्होंने पूरी लग्नता के साथ स्वयं को इस कार्य में मग्न किया।

उन दिनों 'शुमारक' में कुछ स्वानिस्ट स्त्रियों ने महाराणी ईम्पर के नाम से एक संस्था स्थापित कर रखी थी। इसका उद्देश्य रयोनिस्ट प्रयत्नों को उद्घाटन प्रदान करना था। यद्यपि संस्था का मूल उद्देश्य साहित्यिक कार्य-कलाप था। हीनरीटा ने इस संस्था को अपने कार्य से परिचित कराया। उसने इतने प्रभावशाली ढंग में अपने कार्य का वर्णन किया कि उसे तुरन्त ही संस्था का समर्थन

पुत्र तथा पश्चिम की सन्त महिम्नार्थ

प्राप्त हो गया। जब "हृदमाह" के नाम से यह संस्था काम करने लगी है। पञ्चाश बर्ष की धामु में संस्था के काम के लिए धन-संचय करना हैनरीटा के लिए कोई धाधान बात नहीं थी। वह अमेरिका के सब भाषा में धूमि। धनक समाप्तों में भाषण दिए। उसकी धीमी एक कॉमिन्स क प्रोपेटर की भावि थी। वह धामुर्ष से मुक्त बनता तो नहीं थी किन्तु उसके बोमन का इय प्रभावधामो बा। कभी-कभी वह धपने भाषण के बीरुत में रपीन स्साइडो का रोधानी की सहायता से प्रदर्शन करती थी।

किमस्तीन क धनेक भागो से भाषपरिपुल धपीमें हैनरीटा को निमी धीर १९१३ में उसने बहा दुध प्रधिक्षित नसे भकी। वह स्वयं अमेरिका में ही रही ठाकि धन-संचय होना रहे धीर इस कार्य का बढावा जा सक।

१९१६ में हैनरीटा की माता मर गई। मृत्यु क अन्तिम महीनो में हैनरीटा न धपनी माता की पर्याप्त सुधुधा की धीर धन्त तब उसके धाष प्रार्थना करती रही। हैनरीटा की धामु इस समय सगमय साठ बप की थी। उसके चिन्तितकों में परामर्श दिया कि बह इतना कठिन कार्य न करे क्योंकि उधका इयय यकाकट धनुमक कर रहा बा धीर स्वास्थ्य गिर रहा बा किन्तु हैनरीटा धपने कार्य में धनी रही। यधपि धब उधक कार्य की गति दुध धीमी हो गई थी। उसी वयं बह किम स्तीन के लिए रवाना हो गई। उस समय उसने युवा ध्यक्ति क समाप्त साहस बा। बह प्रारम्भ में दो बर्ष के लिए गई थी किन्तु मृत्यु-ययन्त सताईस बप तक बहाँ रही। इस धरणि में उसने किमस्तीन में सामाजिक स्वास्थ्य धवाधा के विकास एवं पर्यवधाय का काम किया। ह्वागो बन्धा को यातना क स्वामो से साकर उधके पुनर्वास एवं धिज्ञा की ध्यवस्था की।

प्रथम महापुत्र से किमस्तीन-बाधियो को अकबनीय कठिनायों का सामना करता पड़ा। इसी कष्टमय स्थिति में हैनरीटा दान्द किमस्तीन धा वहुंधी। उसने तुल्य ही बरिधता धीर बीमागो से त्तत तोया के लिए चिन्तना-महायता धीर धाषण का प्रबन्ध किया। उसी क प्रयत्न स्वरूप किमस्तीन मुत्र क रीगन में महामारी से बच गया। किन्तु धा नाय इतना ध्यागक धीर विशास बन गया बा कि धय इस धय की गति करना सुकर बा।

धमरिका में जा पन प्राप्त हो रहा बा बह धपर्याप्त बा। १९२० में बहा नयमय धार तो डाक्टर धीर नसे काम कर रही थी। धम का धीर धभाव बा। किमस्तीन की मर्यादा धमरिका गगो की भावि धाल नाम क प्रीट इतनी रहा धीर धनुसाधन-बन्ध नहीं थी। प्राय बह मरीशो का बरीर ध्यात गि धीर

कर बसी जाती थी। हैनरीटा ने धैर्य से काम लेकर उनमें अनुशासन की भावना उत्पन्न की। एक कठिनाई यह भी थी कि इतने समय हिंदू माया में नसिग-सम्बन्धी कोई पाठ्य-पुस्तक नहीं थी।

आपछ स प्रति सप्ताह तीन मी व्यक्ति था वह से और उनमें से कई मनेरिया स पीडित हा गण । हैनरीटा न पूर्ण नियोजन द्वारा रोग की भीषणता का सामना किया और कभी एक घण क सिध भी निगाह नहीं हुई। वहाँ सड़के नहीं थी घात हैनरीटा एक घाटी में घबका यध की पीठ पर बैठ कर देख के प्रत्येक माया से घूमी। एक पत्र में उन्होंने लिखा था—“यह सोप प्राथिम स्थिति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह जीवन के प्राथमिक विद्यालयों से जुध रहे हैं। मैं उनके जीवन की घाएँ सुधारन के मिठ पूर्वत प्रयत्नशील हूँ।” संगठन और सुधार काय स उसकी स्वभाविक प्रवृत्ति थी। इम पुराठन भूमि का पुनर्निर्माण करन में सवे हुए व्यक्तियों के प्रति उसको धट्ट भडा थी।

हेनरीटा ने एकता उत्पन्न की बन्न को संतुमित रूप प्रदान किया और स्कूलों में धाबुनिक पठन का विकास किया। प्रत्येक व्यक्ति ने उसके धमक परिधम और निष्ठाजनक कार्य के लिए उसका सम्मान किया। उसने स्कूलों में भोजन की व्यवस्था प्रारम्भ की और इस बाग का प्रयत्न किया कि बच्चों को दिन में कम से कम एक बार अच्छा भोजन मिल सके। १९२१ में उसने अंडमाल में एक स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना की और ठसप्रबोध में एक प्राथमिक धसपनाक बनाया। इस प्रकार हैनरीटा न स्वास्थ्य और निगा के दोनों काय एक साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न किए।

भूमि को हृदि धाय्य बनाने के लिए हैनरीटा उद्यत थी। वह उस बात ने पूर्ण धबगत थी कि किमस्तीन की प्रमुख समस्या धान की व्यवस्था नहीं प्रत्युत उस धेन का निर्माण करना है। उसमें एक धासा का प्रतिष्ठात्मक करता है। वह वेधनल एमेम्बली की सदस्या हो गई और उसमें इस बाग कार्य का धारम्भ किया।

पञ्चदशर रूप की व्यवस्था में पञ्च धाधिकार्य व्यक्ति धर्ष-भक्ति जीवन व्यतीत करने सपते हैं। हैनरीटा ने एक नवीन काय का धारम्भ किया। यह नावी प्रत्याधार का मुग था। हिन्दर क धापाधारों में गाठ माल स्वी-रुधय और बच्चे मर यध क। बच्चों को किमस्तीन धरने के लिए १९१४ में संगठन की स्थापना की गई और नगमण पाँच हजार बच्च यहाँ मर यध। हैनरीटा इन सब बच्चों की माता बनन को महमन थी। उनल यह मुझर उत्तराधिकार्य ममास। ‘यह सब मरे बच्च हैं वह किमोर हापर वह उर्य।’



### पुन तथा परिषद की सन्त महिलाएँ

फरवरी १९३४ में बच्चों का पहला दस धारा। उसकी उपस्थिति स बच्चों में विस्मास धीर धामा की नयी किरण उत्पन्न हुई धीर किसी प्रकार माता-पिता की बुझाई से धाकर नए बाजारबज में बच्चों ने स्वय को परिचित किया। इस काय की गति तेज होती गई धीर धधिक संख्या में बच्चे धाने लगे। धर धम्पूर्ण कार्य को जारी रखन के लिए सब धीर से सहायता प्राप्त होने लगी। यहुवी धाठि की उल्लूक निराशा रेल कर उसने निदधय कर लिया कि बहु ईश्वर द्वारा प्रदत्त धम्पूर्ण धक्ति के धाष धाजीबन उनके सुधार कार्य में सतम्न रहेगी। निदधय बच्चों की देलमास के लिए बहु पूर्ण रूप से उत्तरधायी थी।

बाद के धपों में वहाँ दुनिया के सब धामो से ६० हजार से धी धधिक बच्चे धाए। इन सबकी विस्मा धीर पुनर्वासि की ध्यवस्था की गई। उधैँ उपयोगी ध्यावसाधिक प्रसिधाय प्रदान किया गया धीर धन्तत के उपयोगी नागरिक बन सके। यह सब कार्य धकेने ध्यक्ति का नहीं था। ईनरीटा ने धनेक स्त्री धीर पुकधा का एक दल तैयार किया उसे नवीन धडा धीर धास्वा से पूरिठ किया धीर तब ईश्वर धीर मानव धानि के प्रति नवीन धावना से धनुधामित होकर उन सब ने यह कार्य प्रारम्भ किया।

धीबन की धन्तिम धवस्था तक बहु बच्चों के लिए नवीन गृह ना गधामन करती रही। माता की धाठि धानि को बाट पर बैठ कर बहु बच्चों की धारें सुनती थी। उन्हींने बाल धाम की स्थापना की धीर बच्चों को बुनना कातता तथा रंयना मिलायी। बहु इन कदाबत ना एक रूप बन गई थी—'बहु धाठ हजार बच्चों की माता थी।

धपने धीबनकाल में हडधालू धुनीबलिटी मेडिकल सेंटर की १९३६ म स्थापना का धेय ईनरीटा को प्राप्त हुआ। यह विज्ञ में निधान एवं धवैपमा का सब से बड़ा केन्द्र था। उवी समय ३५० नर्सों के लिए पहला नधिय स्कूल खोला गया। स्कूल केधाय ईनरीटा का नाम पुका हुआ था। लपधय पधाय धिमु रधा धीर पूर्व गर्भावस्था केन्द्र धी स्थापित किए जा चुके थे। मानव की मानव के प्रति निर्ममता से प्रसन्न ध्यक्तियों को धाठि एवं राहत प्रदान करने में प्रधिसित नर्सों को धार्य में संलम्न देखने का सौधाय्य धी ईनरीटा को धपने धीबन काल में प्राप्त हुआ। धयबानू ने धरपल्ल कृपा-पुवक उते बच्चों की सेवा करने का धनम्न धवधर प्रदान किया। "मै प्रपन्न हूँ" यह ईनरीटा के धन्तिम धाध्र थे। रबीन्द्रनाथ टैयोर ने लिखा है—"ओ मना करने की नामना करता है वह धरवाजा लटधधायी रहुता है, ओ प्रव करता है उसके लिए धार लुने है।"

हैनरीटा शील्ड को सेवा और भलाई से धनुराय था। उसने स्त्री पुरुष और बच्चों की सेवा में अपने जीवन के साठ वर्ष समा लिए। हैनरीटा ने संकीर्ण भृति प्रमाण अमानवीयता रोग और प्रताड़ना तथा मारी जाति के प्रति संकुचित प्रवृत्ति से संघर्ष किया और उन पर विजय प्राप्त की।

“बहु सदैव कष्ट, भय रक्तपात  
 और दुःखों से जूझने के लिए तत्पर  
 रहती थीं। उन्हें सदैव कीर्ति मिली  
 क्योंकि मानव जीवन की सर्वोच्च अवस्था  
 का उन्होंने सदैव सेवा कार्य में उपयोग किया।”

चौरासी वर्ष की आयु में हैनरीटा अचानक सप्टे में धात्मसात् हो गई। उनके अममय जीवन का बहु उपयुक्त परिणाम था कि बहु सदैव प्रेम और सम्मान प्राप्त करती रहीं।

महूषी धर्म अपने धनुषायियों को सन्त का विशेषण प्रदान नहीं करता है अन्वया हैनरीटा भी मात्र एक महूषी नाटि सन्त के रूप में प्रसिद्ध होतीं। वह मर चुकी हैं किन्तु फिर भी प्रबुद्ध हैं। अक्षय ब्रह्म से बहु मात्र भी बोस रही हैं। हैनरीटा के स्मरण से पापीबाद और प्रेरणा की अनुमति होती है। उनका कार्य चिरन्तन हैं।

## रबिया

(रबिया के जीवन की एक संक्षिप्त झंकी)

रबिया घटी जाति से सम्बन्ध होने के कारण रबिया अम-अब्राहिया के नाम से सुप्रसिद्ध है। उन्हें रबिया अम-असरिया के नाम से भी पुकारा जाता है। इसका कारण यह है कि उनका जन्म बसर (इराक) में ईसा की मृत्यु के ७१० वर्ष पश्चात् हुआ था। उनके माता-पिता अत्यन्त निधन थे किन्तु वे धार्मिक भावना से परिपूर्ण थे। उनके तीन पुत्रियाँ पहले ही थीं परन्तु इसका नाम रबिया अर्थात् 'बतुर्ब' रखा गया। छोटी भाग्य में ही रबिया के माता-पिता की मृत्यु हो गई। कुछ समय पश्चात् बसर में अकाल पड़ा और रबिया अपनी बहनों सहित मर गई। निर्धन एवं अमहाय अमस्या में वह जब एक दिन सड़का पर अकेली भूम रही थी एक कुष्ठ लड़के ने उसे पकड़ लिया और बोड़ी-सी रकम में उसे गुलाम के रूप में बेच दिया। उसका स्वामी एक बुरा व्यक्ति था। रबिया को अत्यन्त कठोर काम करना पड़ता था। किन्तु इन दुर्बटनाओं और कठिनाइयों की अमबरत श्रुतता से रबिया के साहस अहम निष्ठा उसकी तेजस्वी आत्मा विमुक्त हृदय अमक स्फूर्ति स्थिर और दुः सहन पर अनिक भी अमात्र नहीं पड़ा। मुलामी की अयावह और निर्धन याचना में भी उसने कभी एक अण के लिए भी धन नहीं लाया। अविष्य आगावाहित म कभी उसकी आस्था कम नहीं हुई। परमात्मा से आरक्त अम्मिलन और ईश्वरी एक पूर्ण जीवन के प्रति उसके अिश्वास में कभी लीनता नहीं आम पाई। प्रतिदिन कठिन कार्य में संलग्न रहने पर भी वह दिन भर उपवास रखती थी। सारी रक्त निर्वाप रूप से अयावद् अमिन में मीन रखती थी। एक रात जब वह अगवान् की अमिता में आगम अम्मल थी और दिन और रात्रि म निर्धन्य हाकर अगवान् की अमिता म कर पा अमने के लिए अमाय कर रही थी कि उसके स्वामी की मीद गुल गई। उसे अदभुत कर आाप्ये हुआ कि रबिया म गिर पर एक अीनक अटक रहा है। दीपक पर अमा अरार की अरार आवि का अरारा मरी था। सारा पर उससे अकागित हातर अगममा रग था। इस अितक्षण दृश्य म अमार्जित हाकर उत्तम अुमर दिन अगत नाम ही रबिया का अामना म जीवन स अगत कर दिया। अलरवान् वह रगिस्तामी अत्र में मय का जीवन अगीत करत अमी मई। कुछ समय बाद अट

बसरा सौट धार, वहाँ एक धार्मिक स्थापित किया और एक मस्जिद की भाँति धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगी ।

पुत्रान्त ही रबिया की स्थापित सन्त के रूप में सुदूर क्षेत्रों में फैलने लगी । तत्कालीन अनेक धनी एवं सुप्रसिद्ध व्यक्तियों ने रबिया के समस्त विवाह के प्रस्ताव रखे किन्तु उसने सब प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए और ब्रह्मचर्यपूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया । उसने यह निश्चय कर लिया कि वह केवल ईश्वर भक्ति और पूजा-अराधना में ही जीवन व्यतीत करेगी । जब एक अल्पवय की स्त्री—बसरा के गवर्नर मुहम्मद मुहम्मद ने शाही पहरे का प्रस्ताव रखा तो रबिया ने पुरापूर्वक अस्वीकार कर दिया । उसने कहा—“ईश्वर-भक्ति से मुझे एक क्षण के लिए भी विरत न करो ईश्वर मुझे वह सब दे सकता है जो तुम दे रहे हो वह शय्ये दुसरी सम्पत्ता दे सकता है ।” इसी प्रकार एक अन्य सुविख्यात बर्सेलैसक धर्म-मर्याद को बसरा के निकट प्रथम मठ का अधिष्ठाता या के प्रस्ताव को भी रबिया ने उसी णता के साथ अस्वीकार कर दिया ।

इस प्रकार सम्पूर्ण श्रौतिक मान-सामग्य से मुक्त होकर रबिया ने अनवरत भक्ति और धर्म-धिया का जीवन व्यतीत किया ।

प्रारम्भिक काल के सूफ़ी सन्तों में उनको यथमा प्रमुख रूप से की जाती है । उनके उपदेशों को सुनने के लिए दिन रात शिष्यों की भीड़ लगी रहती थी । उनको प्रारंभिक सभाओं में सम्मिलित होने एक आध्यात्मिक मामलों में पब-प्रदर्शन के लिए रबिया के पास सर्वैक मौकों का तावा लगा रहता था । किबदस्तियों के अनुसार अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों से उसका सम्बन्ध था । इन सबका पुष्टिकरण तो कठिन है किन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि रबिया की शिष्याओं से उस समय के अनेक साधुओं और विद्वानों ने साम उठाया और नारी होठ हुए भी उन सभों में उमे उपदेशक और धार्मिक पब-प्रदर्शक के रूप में मान्यता प्राप्त की । रबिया ने सर्वैक स्वयं को ईश्वर का एक बिनय सेवक माना तथा कभी भी उपदेशक या सभा के रूप में माने जाने का सम्म नहीं किया । धर्किलन सेवक के रूप में उनसे श्रुतों की सहायता करने के लत का पालन किया और अर्पनी सामर्थ्य के अनुसार श्रुतों की सहायता करने का अरसक प्रयत्न भी किया । ईश्वर की शो ने अथवा ईश्वर और प्राणी के माध्यम के रूप में मध्यस्थ बनने का कभी प्रयत्न नहीं किया । एक धार अत्र एक व्यक्ति ने उसकी ओर से रबिया से प्रार्थना करने के लिए कहा तो उसने तुरन्त उत्तर दिया—“मैं कौन हूँ ईश्वर से प्रार्थना करा और उसकी धारा का पालन करो । प्रार्थना करने पर ईश्वर अत्य ही लत प्रदान करेगा ।”

एक कट्टर सुफी के रूप में रबिया ने न केवल समय जीवन व्यतीत करने की सिखायी किन्तु स्वयं अपना जीवन भी उसी प्रकार कट्टर बामिफता के अनुसार बिताया। यही कारण है कि उनका जीवन विद्युत्ता निस्कार्यता और घातक बलिदान के रूप में आज भी हमारे सामने प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत है। जिस प्रकार उन्होंने बहादुर्य-पूर्वक जीवन व्यतीत किया उसी प्रकार जान-बूझ कर जोर निर्भरता एवं पूर्व छावनी एवं मिठप्यता के सिद्धांतों का भी पालन किया। अपने प्रारम्भिक जीवन में उन्होंने घसड़ा हासता का जीवन व्यतीत किया का बाद में महान् मन के रूप में प्यालि प्रविष्ट की और अपनेक पनी एवं समूह और प्रभावशाली व्यक्ति धार्मिक सहायता देने के लिए तैयार थे। किन्तु रबिया न कभी किसी परिस्थिति में कोई सहायता की भीख नहीं मांगी। कई मित्रों ने इस पर रोप प्रकट किया तब रबिया ने यह प्रभावशाली उत्तर दिया— 'सम्पूर्ण बराबर का जो स्वामी है उससे भौतिक वस्तुएं मागत में मुझे लगना अनुभव हावी है इसलिए जिन व्यक्तियों का इन वस्तुओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं है उनसे मैं क्या मांगू।'

रबिया ने अनुशासन-बद्ध छावनी और धर्मपरायणता का जीवन भोग ही सीखा था। उनकी जीवनी के मुख्य प्रतिष्ठ लेखक अतार ने एक अत्यन्त रोचक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है— 'एक बार रबिया ने बुरा लप्ताह बिना भोजन खाये पानी पिए और बिना सोये प्रार्थना में व्यतीत किया। तब उन्हें तेज झुन मगी। किसी ने एक प्याले में उह भोजन बटोया। उसी समय कही से बिस्ती ने धाकर प्याला उलट दिया। रबिया न जल पीने का प्रयत्न किया किन्तु नुराही उनके हाथ से पिए गई और बुर-बुर हो गई। भूख घसड़ा हो उठी। यह ईश्वर की निर्भरता के लिए कोसने लगी और बिनाप कर रही थी कि देवी स्वयं न रबिया को स्मरण कराया कि ईश्वर का प्राप्त करने की धमिलाया और भौतिक वस्तुओं की कामना कभी एक साथ नहीं रह सकती है। रबिया का मन घातक-स्तानि से जल गया और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वह साधारण इच्छाओं पर संयम रख कर प्रत्येक परिस्थिति में स्वयं पर निर्भर रहती। इस दृढ़ संकल्प का उन्होंने अपनी सरलतापूर्वक पालन किया कि बाद में गौरीक बाट और कष्ट का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। एक बार उनके घिर में बाट लगी और जोर से रक्त प्रवाह होने लगा किन्तु फिर भी उन्हें बर्न की अनुमति नहीं हुई। उनके मित्रों ने धारधर्म प्रकट किया। रबिया ने सरलता-पूर्वक उत्तर दिया— 'ईश्वर ने मेरा भौतिक वस्तुओं के धनिरक्षण जिन्हीं अन्य वस्तुओं का देह लगा दिया है।'

ईसा की मृत्यु के ८१ वर्ष पश्चात् रबिया ने इहसीसा समाप्त की। उन्हें बचपन में बफनाया गया। उनका अन्तिम काम प्रार्थना और ईस्वर-भक्ति में बीता जो उनके भक्तिमय जीवन के धनुष्य ही था। प्राप्त और निर्भीक रबिया ने स्वयं को प्रियतम के समस्त समर्पण कर दिया। उनकी धारणा परमात्मा में विभिन हो गई। उनकी बीबनी शेरकों के धनुषार अन्तिम समय में उनके ये शब्द पूज रहे थे—“परम धात्मा में लीन हो जाओ उसी से सन्तोष प्राप्त करो उसे ही सन्तोष प्रदान करो।” रबिया के कथानुसार—‘मृत्यु एक पुस की भाँति है जहाँ प्रिय और प्रियतमा का संगम होता है।’

यह संक्षिप्त कृतान्त किबयन्तियो पर भाषाच्छि है। किन्तु महान् सत्य की इस संक्षिप्त जीवन-गाथा से हमें उनके महान् व्यक्तित्व, सम्मोहक उनकी माधुर्य, पवित्र विष्यात्मा माधुर्य तथा सामुदाय और अहङ्कियता से अक्षेपित धात्मा की अलक मिभाठी है। प्रारम्भिक जीवन में उन्हें सामान्य सिखा का अध्मयन करने का भी अवसर नहीं मिसा और बाद में भी किसी बाल अध्मा भागिक उपदेशक से बिभिपूर्वक शिसा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिसा। किन्तु भगवान् जब किसी व्यक्ति पर कृपासु हों तो भला उसे उनके समागम से कौन रोक सकता है ? रबिया के साथ भी यही बात थी। उनकी गणना संसार की महान् संत मारियो में की जाती है। किसी पाठशाला में सिधाय न प्राप्त करके भी उन्होंने स्वयं ही सीखे ईस्वर से साभिष्प स्वाभित किया था। गुलामी और रैतीसे शेष में भी व्यस्त नगर में निर्धनता स प्रस्य जीवन में भी बहु उन्नत धाम्मात्मिक जीवन के लिए आवड थी। रबिया का जीवन सनस्य मारी समुदाय के लिए इस बात का अवसन्त उदाहरण है कि निष्ठा और लगन होने पर धाम्मात्मिक पूर्बता प्राप्त की जा सकती है।

### रबिया के उपरस

बैसा पहले बताया गया है रबिया प्रारम्भिक सूफी सन्तों में अग्रणी है। ईसा की मृत्यु के पश्चात् (७६७-८१२ के बीच) इब्राहीम इब्न भाबम तमी के धनु धनी ताकीब बाउर और फबाय-भयद इत्यादि सन्तों में बहु प्रमुज की।

प्रारम्भिक सूफी सम्प्रदाय धार्शनिक पद्धति का नहीं था अपितु बहु एक प्रकार की नैतिक व्यवस्था थी। अर्थात् उसमें ईस्वर, धात्मा मुक्ति ईस्वर में बिलय इत्यादि विषयों के बारे में चर्चा नहीं है किन्तु ईस्वर-प्राप्ति के लिए कुछ ध्याय हारिक धनुदेश दिए गए हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक सूफी सम्प्रदाय एक ध्यायहारिक धर्म और जीवन की एक विधि के रूप में है। जुनियद ने उसे धपनी प्रसिद्ध अक्ति में

महत्त्वपूर्ण घबस्वा है। विस्वात सूफी बयाजिद-यस-बिस्तामी ने सन्त की परिभाषा करते हुए कहा है—“कि वह सर्वत्र ईश्वर की इच्छा और धारण में बँधे रहता है। कलाबधि के अनुसार धर्म का धर्म कठिनाइया का सामना कर ईश्वर से धास्वासन प्राप्त करता है। समुद्रत घबस्वा में तो ईश्वरीय धास्वासन की स्वार्थजनक धासा भी घण्टर्भाज हो जाती है। रबिया का जीवन धर्म का उज्ज्वल उदाहरण है। बास्वाबस्वा में उसे माता-पिता का बिच्छाह रोम बासता और निर्बलता का सामना करना पड़ा। ईश्वर की बुद्धिमत्ता और वया में सन्देह करना मूर्खता और अविश्वास की चरम सीमा है। यदि मुझे किसी वस्तु की कामना है किन्तु ईश्वर को यह स्वीकार नहीं है तो निस्सम्बेह ही मैं घनास्वा की बोधिनी हूँ।

(३) कृतज्ञता—ईश्वर ने जो कुछ हमें दिया है उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना धर्म रखने से भी बड़ कर है। समृद्धि के लिए ही नहीं परन्तु दुःख के लिए भी परम पिता का कृतज्ञ होना चाहिए। रबिया ने अपने जीवन में सर्वत्र इसका ध्यान रखा। वह प्रसन्नता और समृद्धि के साथ-साथ दुःखों और यातनाओं के लिए भी कृतज्ञ थी। यह भी एक ईश्वरीय भेट है। मानव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना निरा धर्म है। हनाज ने कहा है—“हे ईश्वर! तुम्हारी समस्त कृपा व लिए मैं तुम्हारे प्रति पुत्र रूप से कृतज्ञता प्रकट करने में असमर्थ हूँ।”

रबिया के जीवन में चिरन्तन यही भावना मिलती है।

(४) धासा और भय—धासा और भय का सूफी बर्मानुयायियों के अनुसार जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ‘धासा’ का अर्थ है ईश्वर के साथ समय की धासा और ‘भय’ का अर्थ है भक्त का भगवान् व जुदा होने का भय। यह बातों धावनाएँ भक्ति का चिरन्तन स्रोत है जो व्यक्ति को मलय की धार प्रवृत्त होने व निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं। ये पसी व दो पंगो की भाति हैं जो सर्वत्र उस रूप की धोर से जात हैं।

रबिया ने इन दोनों भावनाया की मबीन रूप में मुत्तरित किया और दिष्काम प्रेम की भावना का सूत्रगत किया। सुखे सूफी के लिए स्वयं ध्यानध का स्थान नहीं है और न वह धाप्पारिमक प्रसन्नता का स्थान है किन्तु वह एक ऐसा स्थान है जहाँ ईश्वर व मिलन होता है। इसी प्रकार मरक कोई भावना एवं बह-शान नहीं है किन्तु ईश्वर ने बिगड़ की घबस्वा है। बयाजिद-यस-बिस्तामी ने टीक ही कहा है—“प्रेमियों के लिए स्वयं का कोई मूस्य नहीं है।” रबिया की उक्ति भी प्रतिबद्ध है—“पहले पढ़ोती फिर घर। धयन्त् बढोती मा ईश्वर घर धयदा रवर्ग स भी बड़ कर है।

(२) स्वैच्छिक निर्बलता मुझी मत का प्रमुख सिद्धान्त है इसका अर्थ है स्वार्थी भावनाओं से हृदय का परिष्कार कर उसे ईश्वर की धारा प्रवृत्त करना। रबिया उपदेशक ही नहीं थी परन्तु सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में भी प्रबन्धी थी।

(३) साधुता—यह मुझी सम्प्रदाय का मुख्य लक्ष्य है। इसका अर्थ है—भौतिक और निम्न जीव पर उच्चतर और धार्म्यात्मिक धारणा का निर्बलण। रबिया के मतानुसार धात्म-निर्यन्त्रण का अर्थ है मस्तिष्क को केवल ईश्वर पर केन्द्रित करना। रबिया सन्त कहलाने से भी डरती थी क्योंकि इस तरह सम्भवतः उसे ईश्वर के प्रतिरिक्त किसी अन्य विषय में संश्लेष होने समता। वह सबैव अपने ज्ञान एवं सक्ति के प्रदर्शन से दूर रहती थी।

(४) ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता उपरोक्त धार्म्याधो का परिणाम है। वह उत्सर्ग की पूर्ण धरणा है। स्वर्ग का सम्पूर्ण परिस्वाम। प्रसिद्ध मुझी सन्त हुआज न कितना सुन्दर कहा है—“हे भगवान् ! हे मेरे स्वामी ! तेरी इच्छा पूर्ण होयी। तू ही मेरा धर्मिप्राय है, तू ही निर्बलण है तू ही मेरे जीवन एवं धर्मित्व का सार है मेरी इच्छायों संभावना सकेत और भावनाओं का तू ही रूप है। तू मेरा सर्वस्व है मेरी सबब सक्ति और मेरी वृष्टि भी तू ही है। तू ही मेरा समग्र और अर्थ है।” रबिया के सिद्धान्त भी वस्तुतः यही है।

(५) प्रेम सक्ति अर्थसा है। रबिया के अनुसार प्रेम सभावैरूप्य और निष्काम होना चाहिए। तानु को कबल ईश्वर की धाराधना और भक्ति करनी चाहिए। ईश्वर ही एकमात्र प्रमी हो बहुत कितनी प्रतिबन्धी की मुजायस नहीं है। प्रेम की इस मझी भावना का स्वरूप रबिया से सम्बद्ध एक बटना में व्यक्त किया गया है—किसी ने उससे पूछा—“तुम्हें ईश्वर से प्रेम है?” रबिया ने बेचकड़ उत्तर दिया—“हां।” दूसरा प्रत्न था—“क्या तुम्हें पैगाल से मुजा है?” रबिया ने उसी निबड़कता से उत्तर दिया—“ईश्वर के प्रति मेरा प्रेम इतना व्यापक है कि उसमें पैगाल से मुजा अरन की कोई मुजाइस ही नहीं बनी है।”

### रबिया की रचनाएं

मुसलमान सन्त और बिडान् रबिया का बहुत धार्मिक सम्मान करते हैं। उत्तरवर्ती विभिन्न पुस्तकों और बीबनियों तथा अन्य धार्मिक रचनाओं में रबिया की अनेक कहावतों के उद्धरण मिलते हैं। समय-समय प्रसिद्ध मुझी लेखकों ने उसकी सिद्धांतों और कहावतों का उत्साह किया है। सटाज के चक्रवर्तन-याग ग्रन्थ *ताजिज*, बनारसी धरू पत्त-कुमायरी, अम यदती अम-मुहराबरी और हजरी न रबिया के



उपवेशों की चर्चा की है। यद्यपि रबिया के किन्तो पृथक् पृथक् के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है किन्तु उसके आवाक्य एवं बहानों प्रथमिष्ठ है उनसे उसकी चरम धीर वयार्थ बीसी की पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

शकु तामित्य ने रबिया के मत में प्रेम के दो विभिन्न प्रकारों का वर्णन उसकी निम्न प्रसिद्ध पंक्तियों में किया है—

मैंने तुझे जो इंसानों में प्यार किया  
स्वार्थमय प्रेम धीर बड़े प्रेम का उपदन्त है  
स्वार्थमय प्रेम के प्राणस में मैं तुझमें  
समाविष्ट हूँ और प्रेम काई न रहे बहा  
उपयुक्त प्रेम के क्षेत्र में—घनर म  
एक पृथक् है कि मैं तुझ देव पाठ  
पिर भी मेरी इममें प्रार्थना नहीं है  
प्रार्थना तेरी है हर रूप में।

पद्य की दृष्टि से उनकी निम्न प्रार्थना कितनी सामित्य-युक्त है। उनके प्रसिद्ध जीवनी-संग्रह अक्षर में इसका बचन किया है—“कि प्रभु यदि मैं मरने के समय से तेरी प्रार्थना कर तो मने बहा म बाहर कर दे किन्तु यदि मैं तेरी निष्काम प्रार्थना करूँ तो अपनी प्रार्थना मुख्यत्वा में मुझे दूर न रखे।”

रबिया के सम्पूर्ण पद्य धीर पद्य में बनी पुनीत कौतिल प्रस्फटित है भावनाओं की पहुराई धीर स्पर्श उनमें सब्ध स्पष्ट है। उनकी बाधो म प्रियतम का स्वर गुनाई बना है। यही कारण है कि उनकी कथाबज सीधे हृदय को छूकर उसे अंकुश कर बनी है।

### रबिया का महत्त्व धीर उनकी प्रार्थना

संस्कृत धीर उत्तरवर्ती विचारधारा पर रबिया का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। विद्वान् युग की प्रभु प्रवृत्तियाँ से प्रभावित रबिया का गिज्ञान् मृगत व्यावहारिक था। निष्ठा-पूर्वक भावना धीर शान्ति प्रियता के साथ ही उनमें भाव-संगमना धीर निष्ठा का अद्भुत सामंजस्य था। उनके विचारों में सुधीमत्त को एक नए विचार की धीर मोर दिया। उनकी कथाबज म शान्ति म सील मलिन्य धीर हृदय के दान होते हैं। जब में निष्ठा अपने दृष्टि भी उमान् धार्मिक विचारों का साह्य प्रमाण में स्या-वत्त बना दिया है। विचार धीर भावना गिज्ञान् धीर वयार्थ का यह महत्त्वपूर्ण सुनी विचारधारा की एक विचारणा है।





तत्कालीन पीढ़ी और भाषी विचारकों का रबिया की जा मूल्यांकन देन है वह है इस सत्य नारी का व्यक्तित्व—उसका मिथ्यात्मक जीवन सामुह्य से पूर्ण उमकी सरलता पुनीत भावना नि स्वार्थता और गहरी प्रकित । अपने उपवर्ता की वह स्वयं उज्ज्वल उदाहरण थी ।

सुर्वन्य विद्वान् फरीदुद्दीन अख्तर न इस परम सत्य और विचारक क लिए सर्वथा उपयुक्त कहा है— पवित्रता में समुपमेय इस नारी सत्य का जीवन धार्मिक मिष्ठा से श्रोत-श्रोत है । वह प्रेम और आकांक्षा की प्रग्नि से प्रज्वलित है प्रभु से समन्वय और उमकी महिमा में आत्मसत्त्वं होने के लिए खचीर है । वह एक एसी सत्य नारी है जो ईसी आरमा न बिलीन हो गई लोग उस द्वितीय पवित्र मेर। मानते हैं, रबिया अल-अदाबिया, ईश्वर उस अपनी अमम्य कृपा से आनन्द कर ।”